PDFaid.com
#1 pdf solutions online

प्रश्नो□ र संग्रह

भाग – 1

पं.रतनचन्द्र 'मु तार' : व्यक्तित्व और कृतित्व के आधार पर संकलित
करणानुयोग स बन्धी प्रश्नों का संग्रह

स पादन एवं संकलन
पं. रतनलाल बैनाड़ा
पं. महेश कुमार जैन

प्रकाशक
श्री दिग बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान
वीरोदय नगर, सांगानेर, जिला – जयपुर (राज.) पिन– 302029
फोन नं. 0141–2730552

कृति	:	प्रश्नो□ ार संग्रह : भाग 1
संपादन एवं संकलन	:	पं. रतनलाल बैनाड़ा पं. महेश कुमार जैन
अर्थ सौजन्य	:	सेठ सुगनचन्द चिमनलाल शाह (आंजनिया)
प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान	:	श्री दिग बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, वीरोदय नगर, सांगानेर–जयपुर 302029 फोन नं. क्ब्क–ख्त्त्रफ्भ्भ्ख
संस्करण	:	प्रथम, 1000 प्रतियाँ
प्रकाशन तिथि	:	23 मई, 2010
मूल्य	:	50 रुपये
मुद्रक	:	जयपुर प्रिंटिन्ग सेन्टर, मालवीय नगर – जयपुर

संपादकीय

करणानुयोग के बीसवीं शताŸदी के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् पं. रतनचन्द्र जैन 'मु तार' के अभिनन्दन में ''पं. रतनचन्द जैन मु तार : व्यक्तित्व और कृतित्व'' नामक ग्रन्थ सन् 1989 में प्रकाशित हुआ था जो अपने आप में अनूठा संकलन ग्रन्थ था। मु तार साहब ने षट्खण्डागम, कषायपाहुड एवं उनकी टीकाओं आदि सैकड़ों ग्रन्थों का गहनतम अध्ययन किया था और उसी के आधार से उन्होंने सन् 1956 से सन् 1978 तक, 23 वर्षों तक जैन गजट के 'शंका समाधान' स्त भ के अन्तर्गत भारतवर्ष के अनेक आचार्यों, आर्यिकाओं, व्रतियों, विद्वानों एवं जिज्ञासुओं के समाधान प्रकाशित किये थे। श्री मु तार साहब के अभिनन्दन में उनके अनन्य शिष्य पं. जवाहरलाल जी जैन सिद्धान्तशास्त्री, भीण्डर वाले (वर्तमान निवास : उदयपुर) द्वारा उन समस्त शंका-समाधानों का संग्रह करके पं. रतनचन्द्र मु तार : व्यक्तित्व और कृतित्व नाम से दो भागों में प्रकाशित किया गया था। जिसके प्रथम भाग में प्रथमानुयोग स बन्धी 45, करणानुयोग स बन्धी 869 तथा चरणानुयोग स बन्धी 231 इस प्रकार कुल 1145 शंकाओं का समाधान तथा द्वितीय भाग में द्रव्यानुयोग स बन्धी 401 तथा विविध विषयों पर 170 इस प्रकार कुल 571 शंकाओं के समाधान दिये गये थे। इसी ग्रन्थ का संशोधित द्वितीय संस्करण श्री शान्तिवीर दिग बर जैन संस्थान, श्री महावीर जी से 2006 में प्रकाशित हुआ।

उपर्युक्त दोनों भागों के शंका-समाधान, स्वाध्यायीजनों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण और उपयोगी हैं। परन्तु दोनों भागों के लगभग 1400 पृष्ठों को शिक्षण-शिविरों तथा श्री दिग बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर के छात्रों को आद्योपान्त पढ़ाना संभव नहीं हो पा रहा था। इस कठिनाई को सुलझाने के लिए तथा जिज्ञासुओं तक इन दोनों ग्रन्थों का मर्म पहुँचाने के लिए शिक्षण वर्ष 2009-10 में संस्थान के छात्रों को भाग एक के करणानुयोग स बन्धी प्रश्नों को सरल एवं संक्षेप करके पढ़ाया गया। शिक्षण पूर्ण होने पर यह अनुभव किया गया कि इसको ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित कर जन-जन तक पहुँचाने का प्रयत्न किया जाए। इसी आशय से इस ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है। इस प्रश्नोŸार संग्रह का प्रथम भाग, जिसमें मात्र करणानुयोग के शंका-समाधान दिये गये हैं, इस वर्ष प्रकाशित कर रहे हैं। अगले वर्ष इसका द्वितीय भाग भी, जिसमें शेष शंका-समाधानों का संक्षिप्त संकलन होगा, प्रकाशित करने का हमारा पूरा प्रयास है।

इस ग्रन्थ में अधिकांश प्रश्नोŸार तो पं. मु तार जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अनुसार ही संकलित किये गये हैं, साथ ही कुछ अन्य आवश्यक प्रश्नों को भी और जोड़ा गया है। विभिन्न प्रश्नों के उ ार में पूज्य आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के प्रवचनांश एवं उ ारों का भी समावेश किया गया है ताकि विषय की स पूर्णता एवं सरलता हो सके। जिन स्वाध्यायी महानुभावों को उक्त प्रश्न स बन्धी आगमप्रमाण देखने हों एवं पं. मु तार साहब का पूरा समाधान हृदयङ्गम करना हो, उनकी सुविधा के लिए व्यक्तित्व एवं कृतित्व के दूसरे संस्करण के अनुसार पृष्ठ क्रमाङ्क भी दे दिये गये हैं।

हमने तो मात्र विशालकाय दोनों भागों को, करणानुयोग प्रेमी स्वाध्यायी जनों के हितार्थ संक्षिप्त करके इस लघुकाय ग्रन्थ का स पादन किया है। विद्वत् जनों से निवेदन है कि यदि स पादन में कोई त्रुटि ज्ञात हो तो कृपया हमें अवश्य सूचित करने का कष्ट करें।

हम, पं. शिखर चन्द जैन (मालपुरा, जिला-टोंक, राज.) को विशेष धन्यवाद देते हैं जिन्होंने इस स पूर्ण ग्रन्थ के प्रकाशन एवं टङ्कण का कार्य स पन्न किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन का समस्त भार **सूरत निवासी श्री सुगनचन्द चिमनलाल शाह (आंजनिया) एवं उनके सरस्वतीभक्त पुत्रों** ने वहन किया है। उनको भी हम इस अनुपम सहयोग के लिए बहुशय धन्यवाद ज्ञापन करते हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि इस ग्रन्थ के माध्यम से पं. रतनचन्द्र जी मु तार द्वारा दिये गये अमूल्य शंका-समाधानों का अध्ययन कर जिज्ञासुओं को करणानुयोग स बन्धी विशेष ज्ञान सरलता से प्राप्त हो सकेगा।

दिनाङ्क
23-05-2010

पं. रतनलाल बैनाड़ा
पं. महेश कुमार जैन

प्रकरण-अनुक्रमणिका

प्रकरण		पृष्ठ सं या
0 1	गुणस्थान	*1*
0 2	समवसरण	*19*
0 3	जीवसमास	*20*
0 4	पर्याप्ति	*21*
0 5	प्राण	*23*
0 6	संज्ञा	*23*
0 7	मार्गणा	*23*
0 8	गति मार्गणा	*24*
0 9	इन्द्रिय मार्गणा	*28*
1 0	काय मार्गणा	*32*
1 1	योग मार्गणा	*34*
1 2	वेद मार्गणा	*39*
1 3	कषाय मार्गणा	*41*
1 4	ज्ञान मार्गणा	*41*
1 5	संयम मार्गणा	*50*
1 6	दर्शन मार्गणा	*53*
1 7	लेश्या मार्गणा	*53*
1 8	भव्यत्व मार्गणा	*56*
1 9	स य€त्व मार्गणा	*58*
2 0	संज्ञित्व मार्गणा	*74*
2 1	आहारक मार्गणा	*75*
2 2	बंध	*77*
2 3	उदय	*85*
2 4	स व	*94*
2 5	गुणश्रेणी, स्थिति, अनुभागकाण्डकघात	*96*

2 6	करण	*99*
2 7	भाव	*102*
2 8	पुद्गल वर्गणा	*105*
2 9	शरीर	*107*
3 0	समुद्घात	*110*
3 1	अकालमरण	*113*
3 2	कुल, योनि जन्म	*115*
3 3	गत्यागति	*116*
3 4	लोकरचना	*120*
3 5	काल	*129*
3 6	श्रेणी, मान	*131*

♦ ♦ ♦ ♦ ♦

प्रश्नानुक्रमणिका

क्र.	प्रश्न	पृष्ठ सं या
	गुणस्थान	
01	गुणस्थानों में आरोहण-अवरोहण का क्रम €या है ?	*1*
02	अपर्याप्त और पर्याप्त अवस्था में कौन-कौन से गुणस्थान होते हैं ?	*1*
03	पञ्चमकाल में कितने गुणस्थान स भव हैं और €यों ?	*1*
04	सातिशय एवं निरतिशय मिथ्यादृष्टि का या स्वरूप है ?	*2*
05	सासादन गुणस्थान असैनी और लŽध्यपर्याप्तक जीवों में होता है या नहीं ?	*2*
06	आयुबन्ध योग्य गुणस्थानों में ही मरण होता है। यदि ऐसा है तो श्रेणिक महाराज ने नरकायु का बन्ध तो प्रथम गुणस्थान में किया था तो मरण चतुर्थ गुणस्थान में €यों हुआ ?	*2*
07	दूसरे व तीसरे गुणस्थान में से किस गुणस्थान का काल ज्यादा है ?	*2*
08	मिथ्यात्व के कितने भेद हैं ?	*2*
09	एकेन्द्रिय जीवों में गृहीत मिथ्यात्व कैसे संभव है ?	*3*
10	तीनों करणों का €या स्वरूप है ?	*3*
11	जीवों के करण कब-कब होते हैं और कौन-कौन से होते हैं ?	*3*
12	स यग्मिथ्यात्व प्रकृति को जात्यन्तर सर्वघाती प्रकृति €यों कहा जाता है ?	*3*
13	€या तृतीय गुणस्थान में स य€त्व और मिथ्यात्व दोनों परिणाम पाये जाते हैं ?	*4*
14	स यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में कौनसा भाव है ?	*4*
15	स यग्मिथ्यात्व प्रकृति सर्वघाती है अत: उसके स्पर्धक भी सर्वघाती ही होने चाहिये ?	*4*
16	तृतीय गुणस्थान में कार्मण काय योग €यों नहीं होता है ?	*4*
17	तृतीय गुणस्थानवर्ती उपशम स य€त्व को प्राप्त कर सकता है या नहीं ?	*4*
18	औपशमिक स य€त्व से पूर्व मिथ्यादृष्टि जीव के पाँच लŽधयाँ कौन-कौन सी होती हैं ?	*4*
19	चतुर्थ गुणस्थान का जघन्यकाल कितना है ?	*5*
20	चतुर्थ गुणस्थान से आगे चारित्र में विशुद्धि होती है या स य€त्व में भी होती है ?	*5*
21	€या चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव के प्रतिसमय निर्जरा होती है ? पञ्चाध्यायी ग्रन्थ में तो चतुर्थ गुणस्थानवर्ती के प्रतिसमय निर्जरा कही है ?	*5*
22	क्षायिक स यग्दर्शन, क्षायोपशमिक स यग्दर्शन तथा द्वितीयोपशम स यग्दर्शन किन गुणस्थानों में उत्पन्न होते हैं ?	*5*
23	स्तिवुक संक्रमण किसे कहते हैं ?	*5*
24	अविरत स यग्दृष्टि जीव पञ्चेन्द्रियों के विषय भोग करता है या नहीं ?	*6*
25	असंयत स यग्दृष्टि जीव के लिए पुण्य हेय है या उपादेय ? आजकल कुछ लोग पाप व पुण्य दोनों को हेय बताने लगे हैं ?	*6*

26 प्रथमोपशम और द्वितीयोपशम स य€त्व में €या अन्तर है ? 6
27 कुछ स्वाध्यायी जन चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धोपयोग मानते हैं, उनका ऐसा मानना आगम स मत है या नहीं ? 6
28 द्रव्यानुयोग एवं करणानुयोग के अनुसार शुद्धोपयोग के गुणस्थानों में अन्तर है या नहीं ? 6
29 तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में शुद्धोपयोग तो नहीं कहा, उसका फल कहा है। 13–14 वें गुणस्थान में शुद्धोपयोग €यों नहीं माना ? 7
30 असंयत अवस्था का उत्कृष्ट अन्तर कितना है ? 7
31 चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सुखी है या दु:खी ? 7
32 अविरत स यग्दृष्टि जीव तथा मिथ्यादृष्टि जीव के सं€लेश परिणामों मे €या अन्तर होता है ? 7
33 चतुर्थ गुणस्थान में सुनते हैं कि अनन्तानुबन्धी कषाय के अभाव होने से स्वरूपाचरण चारित्र प्रकट होता है, फिर उसे चारित्र से रहित €यों कहा जाता है ? 7
34 चतुर्थ गुणस्थानवर्ती यदि व्रतों को धारण न करे और तपस्या करे तो उसकी तपस्या कार्यकारी है या नहीं ? 8
35 यदि नरकायु, तिर्यञ्चायु अथवा मनुष्यायु का बन्ध हो गया हो तो अणुव्रत या महाव्रत धारण कर सकते हैं या नहीं ? 8
36 चतुर्थगुणस्थानवर्ती क्षायिक स यग्दृष्टि जीव हो तथा अन्य कोई क्षायोपशमिक स यग्दृष्टि पञ्चम गुणस्थानवर्ती जीव हो, तो किसके बन्ध कम होगा, किसके निर्जरा ज्यादा होगी ? 8
37 पञ्चम गुणस्थान में कौनसा चारित्र होता है ? 8
38 संज्वलन कषाय के देशघाती स्पर्धकों के उदय से तो सकलसंयम हो जाना चाहिये, फिर वह □ यों नहीं हुआ ? 9
39 छठवें–सातवें गुणस्थान में असातावेदनीय की उदय और उदीरणा होती है या नहीं ? यदि होती है तो उन्हें दु:ख का अनुभव भी होता होगा ? 9
40 शास्त्रों में स्त्री के षष्ठम् गुणस्थान बताया है। वह कैसे ? 9
41 €या कोई मुनिराज छठवें गुणस्थान में ही रह सकते हैं, उनके सातवाँ गुणस्थान हो ही नहीं ? 9
42 कोई जीव अधिक से अधिक कितने समय तक सो सकता है या कितने समय तक जाग्रत रह सकता है ? 9
43 €या दिग बर मुद्रा धारण किये बिना सप्तम् गुणस्थान हो सकता है ? 10
44 पूरे संसार काल में कोई जीव भावलिङ्गी साधु कितनी बार बन सकता है ? 10
45 क्षपक और उपशमक की विशुद्धि में कुछ अन्तर होता है या नहीं ? 10
46 ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती मुनि से आठवें गुणस्थानवर्ती क्षपक की निर्जरा असं यातगुणी €यों ? 11
47 आठवें गुणस्थान में किसी भी कर्मप्रकृति का क्षय नहीं, फिर वहाँ निर्जरा कैसे संभव है ? 11
48 क्षपक श्रेणी और उपशम श्रेणी के काल में €या अन्तर है ? 11
49 चारित्र मोहनीय की 21 प्रकृतियों के उपशम से होने वाला औपशमिक चारित्र ग्यारहवें गुणस्थान में प्रकट होता है। फिर आठ, नौ व दसवें गुणस्थान में औपशमिक चारित्र €यों कहा गया ? 11

50 अनन्तानुबन्धी आदि कषायों के साथ नोकषायें नष्ट यों नहीं हो जाती हैं ? ये तो किञ्चित कषायें हैं ? *11*

51 ग्यारहवें गुणस्थान से गिरने के €या कारण हैं ? *12*

52 अभिन्नदशपूर्वी मिथ्यात्व में जाते हैं या नहीं ? *12*

53 उपशमश्रेणी चढ़ने वाले क्षायिक स यग्दृष्टि मुनिराज मरण करके असंयमरूप चतुर्थ गुणस्थान में जा सकते हैं या नहीं ? *12*

54 उपशांतमोह गुणस्थान से सासादन गुणस्थान में आना संभव है या नहीं ? *12*

55 ग्यारहवें गुणस्थान से गिरा हुआ जीव कितने काल तक संसार भ्रमण कर सकता है ? *12*

56 प्रार भ के दोनों शु€लध्यान किन-किन गुणस्थानों में होते हैं ? *13*

57 बारहवें गुणस्थान में निद्रा का उदय होता है तो उस काल में ध्यान कैसे रह सकेगा ? *13*

58 बारहवें गुणस्थान में कितना श्रुतज्ञान कहा गया है ? *13*

59 बारहवें गुणस्थान के अन्त में ज्ञानवरणी, दर्शनावरणी और अन्तराय इन तीनों का एक साथ क्षय होता है तो इन तीनों कर्मों की समान स्थिति किस गुणस्थान में होती है ? *13*

60 रत्नत्रय की एकता को मोक्षमार्ग कहा है तो तेरहवें गुणस्थान में रत्नत्रय की पूर्णता हो जाने पर भी आत्मा को मोक्ष €यों नहीं होता ? *14*

61 केवली के ज्ञान में नित्य, अनित्य, कालमरण, अकालमरण आदि का ज्ञान होता है या नहीं ? *14*

62 केवली भगवान सर्वज्ञ हैं या आत्मज्ञ ? *14*

63 अरहन्त भगवान के द्रव्य-गुण और पर्याय समझाएँ। *14*

64 केवली भगवान किसी का अपकार या उपकार करते हैं या नहीं ? *14*

65 केवली भगवान के विहार करने की, उपदेश देने की, खड़े होने या बैठने की इच्छा होती है ? यदि नहीं तो यों ? *15*

66 केवली भगवान के भावमन तो है नहीं, फिर मनोयोग कैसे माना जाये ? *15*

67 तेरहवें गुणस्थान में ईर्यापथ आस्रव है तो उनके कषाय नहीं होने से बन्ध होता है या नहीं ? *15*

68 अरिहन्त भगवान के किन वर्गणाओं का ग्रहण होता है और कौन-कौन से योग होते हैं ? *15*

69 तेरहवें गुणस्थान में असातावेदनीय का स्वमुख से उदय होता है या सातावेदनीयरूप संक्रमित होकर असातावेदनीय उदय में आती है ? *16*

70 उपसर्ग केवली और अन्तकृत् केवली में या अन्तर है ? *16*

71 सामान्य केवली की दिव्यध्वनि खिरती है या नहीं तथा उनके गणधर होते हैं या नहीं ? *16*

72 तीर्थङ्करों की दिव्यध्वनि एक दिन में कितनी बार और कब खिरती है ? *16*

73 शरीरघाती उपसर्ग सहन करके जो केवली बनते हैं उनका शरीर बाद में वैसा ही रहता है या सुन्दर बन जाता है ? *17*

74 जिन अन्तकृत् केवली का अङ्ग, भङ्ग या नष्ट हो गया है उनकी आत्मा का आकार सिद्धालय में कैसे रहता है ? *17*

75 सामान्य केवली के केवलज्ञान या मोक्ष होने पर कोई उत्सव मनाया जाता है या नहीं ? *17*

76 सयोगकेवली और अयोगकेवली को संसारी जीव माना जाये या मुक्त जीव माना जाये ? *17*
77 तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सŽव रहता है और उनका क्षय किस प्रकार होता है ? *18*
78 अयोगकेवली के शरीर होता है या नहीं ? *18*
79 चौदहवें गुणस्थान में कितने भाव होते हैं ? *18*
80 मुक्त होने के बाद सिद्धों का निवास कहाँ होता है और उनकी उत्कृष्ट और जघन्य अवगाहना कितनी होती है ? *18*
81 सिद्धालय में जो जीव विराजमान होते हैं, वे ऋजुगति से गमन करके जाते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्र या पर्वतों के ऊपर जो सिद्धालय का भाग है, वह खाली होगा। योंकि समुद्र या पर्वतों से या भोगभूमियों से कोई जीव सिद्ध नहीं होता ? *19*
82 मोक्ष प्राप्ति के लिए कौन-कौनसे गुणस्थान आवश्यक नहीं हैं ? *19*

समवसरण

83 समवसरण में अभव्य और मिथ्यादृष्टियों का प्रवेश होता है या नहीं ? *19*
84 समवसरण के विघट जाने पर सभी जीवों का €या होता है ? €या वे विहार के समय साथ-साथ चलते हैं ? समवसरण का €या होता है ? आदि बातें बतलाइये। *19*
85 समवसरण में जो अन्य सामान्य केवली विराजमान होते हैं, उनकी गन्धकुटी बनती है या नहीं तथा उनकी वाणी खिरती है या नहीं ? *20*
86 दिव्यध्वनि श्रवण के बाद मिथ्यात्व रह सकता है या नहीं ? *20*

जीवसमास

87 जीव समास के 98 भेद कौन-कौन से हैं ? *20*

पर्याप्ति

88 पर्याप्तक, अपर्याप्तक, निवृत्यपर्याप्तक तथा लŽध्यपर्याप्तक जीवों की परिभाषायें बतलाइये। *21*
89 षट् पर्याप्तियों का स्वरूप बतलाइये। *21*
90 अपर्याप्तक और साधारण में €या अन्तर है ? *22*
91 लŽध्यपर्याप्तक और निवृत्यपर्याप्तक में €या अन्तर है ? *22*
92 पर्याप्तक जीव गर्भ में ही पर्याप्तक हो जाता है या बाहर आने पर होता है ? *22*
93 अपर्याप्त मनुष्य के सैनीपना तो है योंकि मनुष्य असैनी नहीं होते तो उसके द्रव्यमन या भावमन होता है ? *22*
94 या ल ध्यपर्याप्तक जीवों के ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग होता है ? *22*

प्राण

95 द्रव्य प्राण और भावप्राण में €या अन्तर है ? *23*
96 मरण कितने प्रकार के होते हैं ? *23*

संज्ञा

97 सञ्ज्ञायें कितनी होती हैं और वह किस गुणस्थान तक होती हैं ? *23*

मार्गणा

98 मार्गणायें कितने प्रकार की होती हैं ? *23*

गति मार्गणा

99 नरकों में असुरकुमार देव नारकियों को आपस में पूर्वभव का वैर बतलाकर उनमें लड़ाई कराकर दु:ख देते हैं या स्वयं उनको मारते-पीटते भी हैं ? *24*
100 नरकों में पञ्च स्थावर पाये जाते हैं या नहीं तथा वहाँ अग्नि, धातु की पुतली, सेमरवृक्ष आदि स्वभाव से होते हैं या विक्रिया से ? *24*
101 नारकी अपना अगला भव जानते हैं या नहीं ? *24*
102 नरकों में तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध करने वाले जीव और क्षायिक स यग्दृष्टि जीव भी हैं, उन्हें कष्ट होता है या नहीं ? उन्हें आत्मतž व का श्रद्धान या ज्ञान होता है कि नहीं ? उन्हें स्वानुभूति होती है या नहीं ? *24*
103 तिर्यञ्चायु को आचार्यों ने शुभ कहा परन्तु तिर्यञ्च गति को अशुभ कहा। ऐसा यों ? *25*
104 ऐसा सुनते हैं कि अड़तालीस भव या सोलह भव मनुष्य के मिल जाने पर फिर नियम से निगोद में जाते हैं। या यह सच है ? *25*
105 या ल ध्यपर्याप्तक मनुष्य निगोदिया जीवों के जैसे होते हैं ? वे निगोदिया में आते हैं या *25*
106 मनुष्य और तिर्यञ्चों के शरीर में खून तथा अन्य कीड़े पाये जाते हैं। तो या खून और उन कीटाणुओं के शरीर में मनुष्य या तिर्यञ्च के आत्मा के प्रदेश रहते हैं या नहीं ? *26*
107 देवगति मिलना दुर्लभ है या मनुष्यगति ? *26*
108 कौन-कौन से देव एक भवावतारी होते हैं अर्थात् एक जन्म लेकर नियम से मोक्ष जाते हैं ? *26*
109 देवों में जन्म-मरण का विरहकाल कितना है ? *26*
110 स्वर्गों में देव और देवाङ्गनाओं, सभी की मरण से छ: माह पूर्व माला मुरझाती ही है या नहीं ? *26*
111 देवों के मरण हो जाने पर देवियों का €या होता है ? वे अपने आप को विधवावत् मानने लगती हैं या ? *27*

112 एक देव के कम से कम और अधिक से अधिक कितनी देवियाँ हो सकती हैं ? 27
113 देव, नारकी और भोगभूमियाँ जीवों में कौन असं यात वर्षायुष्क होते हैं और कौन सं यात वर्षायुष्क होते हैं ? 27
114 भवनत्रिक एवं सौधर्म, ऐशान स्वर्ग के देवों के शरीर में रक्त, शुक्र आदि नहीं होते। फिर भी मनुष्य या तिर्यञ्चों की तरह कामसेवन कैसे करते होंगे ? 27
115 संसारी जीवों की सं या में अल्प-बहुत्व किस प्रकार है ? 27
116 चारों गतियों में जीवों की उत्पZि निरन्तर होती रहती है या अन्तर भी पड़ता है ? 28

इन्द्रिय मार्गणा

117 इन्द्रिय और मन के स बन्ध में €या विशेषता है ? 28
118 एकेन्द्रिय जीवों के मन तो होता नहीं तो फिर वे अपने हित-अहित का ज्ञान कैसे करते हैं ? 28
119 इन्द्रियाँ वस्तुओं को स्पर्श करके ही जानती हैं या बिना स्पर्श के भी जान सकती हैं ? 28
120 जीव किन-किन कर्मों के उदय से एकेन्द्रिय होता है ? 28
121 निगोदिया जीव किन कायों में पाये जाते हैं और इनके कितनी इन्द्रियाँ होती हैं ? 29
122 एकेन्द्रिय जीवों में मोहनीय कर्म पाया जाता है तो उसकी स्थिति कितनी होती है ? 29
123 विभिन्न एकेन्द्रिय जीवों की आयु कितनी होती है ? 29
124 विज्ञान तो केवल वृक्षादि वनस्पतिकायिकों में जीव मानता है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु में जीव कैसे सिद्ध किये जायें ? 29
125 भावेन्द्रियाँ किसके आधार से होती हैं ? इनका आधार मन है या आत्मा ? 30
126 एकेन्द्रिय जीव कहाँ-कहाँ पाये जाते हैं ? सिद्धालय में एकेन्द्रिय जीव पाये जाते हैं या नहीं ? 30
127 या सर्प तीन इन्द्रिय जीव है ? विज्ञान तो कहता है कि उसके कान नहीं होते ? 30
128 विकलत्रय जीव लोक में कहाँ-कहाँ पाये जाते हैं ? 30
129 द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों में किनकी सं या ज्यादा और कम है ? 30
130 बादर और सूक्ष्म जीवों में या अन्तर है ? या बादर जीवों से सूक्ष्म जीव बड़ा हो सकता है ? 31
131 किस ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम को लZध कहा जाता है ? 31
132 चक्षुर्दर्शन होने पर चक्षु इन्द्रिय स बन्धी ज्ञान होता है या चक्षु इन्द्रिय से ज्ञान होने पर उससे पहले होने वाला दर्शन चक्षुर्दर्शन कहलाता है ? 31
133 भावेन्द्रिय और भावमन को पौद्गलिक कहने का €या कारण है ? 31
134 केवली भगवान को पञ्चेन्द्रिय जीवों में यों कहा जाता है ? 32
135 आ यन्तर निर्वृZिरूप जो आत्मप्रदेशों की रचना होती है, उसमें जो आत्मप्रदेश नियत हो जाते हैं, वे वहीं रहते हैं या अन्य-अन्य प्रदेश आते-जाते रहते हैं ? 32
136 एकेन्द्रिय जीवों के अङ्गोपाङ्ग नाम कर्म का उदय है या नहीं ? उसके अङ्गोपाङ्ग होते हैं या नहीं ? 32

काय मार्गणा

137 षट्काय के जीवों की अलग-अलग सं या कितनी है ? *32*
138 निगोदिया जीवों को किस काय में लेना चाहिये ? *32*
139 मन्दिर में विराजमान पाषाण की मूर्ति अथवा खान से टूटा पत्थर सचिž॥ है या अचिž॥ ? *33*
140 स्थावर और एकेन्द्रिय में या अन्तर है ? *33*
141 आचार्य कुन्दकुन्द महाराज ने पञ्चास्तिकाय गाथा 191 में वायुकायिक और अग्निकायिक जीवों को त्रस कहा है। वह किस प्रकार है ? *33*
142 बादर वायुकायिक पर्याप्तक जीव लोक के कितने भाग में पाये जाते हैं ? *33*
143 नित्य निगोद से निकला हुआ कोई जीव यदि पुन: निगोद में अर्थात् इतर निगोद में जन्म ले तो वह जघन्य और उत्कृष्ट से कितने समय तक निगोद में रह सकता है ? *34*
144 एक निगोद शरीर में अर्थात् साधारण शरीर में कितने जीव रहते हैं और उनकी विशेषतायें या- या हैं ? *34*
145 सुनते हैं कि निगोदिया जीव, जो बादर और पर्याप्तक हों वे निगोद पर्याय से मनुष्य बनकर मोक्ष जा सकते हैं तो इनके पुण्य बन्ध किस प्रकार से होगा ? *34*

योग मार्गणा

146 आत्म प्रदेश निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं या सोते समय रुक जाते हैं ? *34*
147 आत्मप्रदेशों के परिस्पन्दन से कर्म आते हैं तो जो आत्मा के मध्य के आठ प्रदेश हमेशा अचल रहते हैं, उनमें परिस्पन्दन न होने के कारण कर्मों का आस्रव नहीं होना चाहिये ? *35*
148 योग कौनसा भाव है और यों ? *35*
149 बादर योग तथा सूक्ष्म योग का कथन शास्त्रों में पाया जाता है। इससे €या समझना चाहिये ? *35*
150 योगों का परिवर्तन कैसे होता है ? *36*
151 कोई व्यक्ति सामान की चोरी हो जाने पर शोर करता हुआ दौड़ रहा है। उस समय उसका कौन सा योग माना जाये ? *36*
152 जिस समय जो योग होता है उस समय वही वर्गणा आती है या अन्य भी ? *36*
153 मन, वचन और काय की अधिक क्रिया से अधिक वर्गणायें आती हैं या कम क्रिया से कम, अथवा हमेशा समान वर्गणायें आती हैं ? *37*
154 आत्मप्रदेशों में शरीर के प्रमाण छोटा या बड़ा होना अर्थात् सङ्कोच या विस्तार होना किस कारण से होता है ? *37*
155 योग से प्रकृति और प्रदेश बन्ध ही होते हैं या स्थिति और अनुभाग बन्ध भी होते हैं ? *37*
156 औदारिक काययोग तथा काययोग का उत्कृष्ट काल कितना है ? *37*
157 औदारिक मिश्र काययोग में जघन्य अन्तर कितना मानना चाहिये ? *38*

158 आहारक काययोग का काल एक समय हो सकता है ? यदि हो सकता है तो कैसे ? *38*
159 निस्सरणात्मक अशुभ तैजस शरीर मुनिराज के बाँये कन्धे से निकलकर योजनों तक जलाने का काम करता है फिर भी उसे योग यों नहीं माना ? आचार्यों को तैजसकाययोग भी कहना चाहिए था ? *38*
160 कार्मण काययोग का उत्कृष्ट अन्तर कितना है ? *38*
161 कार्मणकाययोग में जब केवली भगवान होते हैं तब उनके औदारिक शरीर नामकर्म का उदय होता है या नहीं ? *39*

वेद मार्गणा

162 किस गति में कौन-कौन से वेद पाये जाते हैं ? *39*
163 एक जन्म में भाववेद बदलता रहता है या एक ही वेद रहता है ? *39*
164 हम तो ऐसा सुनते हैं कि कोई स्त्री, पुरुष बन गई या कोई पुरुष, स्त्री बन गया। इस तरह तो ऐसा लगता है कि द्रव्य वेद परिवर्तनशील है। स्पष्ट करें। *39*
165 पञ्चाध्यायी 2/ 1081 में असैनी पञ्चेन्द्रिय के मात्र नपुंसक वेद लिखा है। 2/ 1092 में कहा है कि किसी एक पर्याय में कोई जीव क्रम अनुसार तीनों वेद वाला हो सकता है। या पञ्चाध्यायी का यह कथन आगम स मत हैं ? *40*
166 वेदवैष य €या है और यह किन जीवों के होता है ? *40*
167 गो मटसार जीवकाण्ड में मनुष्यनी के 14 गुणस्थान कहे हैं। तिर्यञ्चनी शŽद भी दिया है और स्वर्गों में देवाङ्गना कहा है। इससे या अभिप्राय समझना चाहिये ? *40*
168 पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में नपुंसक जीव कौन-कौन होते हैं ? *40*
169 क्षपकश्रेणी वाले जीव के स्त्रीवेद या नपुंसकवेद कैसे संभव है ? *41*

कषाय मार्गणा

170 €या संज्वलन कषाय भी पत्थर की रेखा के समान होती है ? *41*
171 चारों कषायों में क्रोध, मान और माया को हेय कहा है परन्तु लोभ को कथञ्चित् हेय और उपादेय यों कहा है। *41*
172 अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना कैसे होती है ? *41*

ज्ञान मार्गणा

173 मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, केवलज्ञान के अंश हैं या नहीं ? *41*
174 पर्याय नाम का मतिज्ञान भी होता है या श्रुतज्ञान ही होता है या दोनों होते हैं ? *42*

175 तž वार्थसूत्र का एक सूत्र ''श्रुतमनिन्द्रियस्य'' अर्थात् श्रुतज्ञान मन का विषय है तो फिर असंयमी एकेन्द्रिय जीवों के श्रुतज्ञान होता है या नहीं ? 42
176 अङ्गपूर्व के ज्ञान होने का क्रम एवं नियम या है ? 43
177 ग्यारह अंग के पाठी मुनिराज उसी भव में मिथ्यात्व या असंयम को प्राप्त हो सकते हैं या नहीं ? 43
178 रुद्र कौन होते हैं ? 43
179 अभिन्नदशपूर्वी उसी भव में संयम और स य€त्व से च्युत होते हैं या नहीं ? €या गृहस्थ को अङ्ग अथवा पूर्व का ज्ञान हो सकता है ? 43
180 इस भव में हम जो ज्ञान प्राप्त करते हैं वह अगले भव में साथ यों नहीं जाता ? 44
181 राजवार्तिक 1/ 15 की बारहवीं वार्तिक में लिखा है कि अवग्रह के पश्चात् संशय होता है। 44 उसके बाद ईहा ज्ञान होता है। तो यह संशय, ज्ञान है या दर्शन ? 44
182 अनुगामी, अननुगामी आदि भेद क्षयोपशम निमिž ाक (गुणप्रत्यय) अवधिज्ञान के ही होते हैं या भवप्रत्यय के भी संभव हैं ? 44
183 €या देवगण किसी मनुष्यादि के मुख से किसी अन्य के स बन्ध में अगला भवादि बतला सकते हैं ? 44
184 पञ्चमकाल में अवधिज्ञान की उत्पž ा संभव है ? 44
185 अवधिज्ञान की यह परिभाषा भी सुनने में आती है कि जो अधिकतर नीचे के विषय को जानता हो। (सर्वार्थसिद्धि 1/9 की टीका) यहाँ अधिकतर नीचे के विषय से या समझना चाहिये ? 45
186 तीर्थङ्करों की माता को अवधिज्ञान होता है या नहीं ? 45
187 स्वर्ग में सूर्य चन्द्रमा आदि नहीं होते, फिर उनको अष्टाह्निका पर्व आदि का ज्ञान कैसे होता है ? 45
188 मनुष्य और तिर्यञ्च में कौनसा अवधिज्ञान किनको होता है और कौन-कौन से गुणस्थानों में होता है ? 45
189 अवधिज्ञानी और मन:पर्ययज्ञानी जीव अनन्त को जानते हैं या नहीं ? 46
190 अवधिज्ञान पूरे आत्मप्रदेशों से होता है या शरीर के कुछ चिह्नों से होता है ? 46
191 अवधिज्ञान स बन्धी चिह्नों में तथा इन्द्रियों में €या अन्तर है ? 46
192 अवधिज्ञान के द्वारा विग्रहगति में गमन करने वाली आत्मा देखी जा सकती है या नहीं ? 47
193 चौबीस ठाणा में अवधिदर्शन के गुणस्थान चार से बारह कहे गये हैं। ज्ञान तो दर्शन पूर्वक होता है तो कुअवधिज्ञान से पहले कौनसा दर्शन होता होगा योंकि कुअवधिदर्शन तो होता ही नहीं ? 47
194 चारों गतियों में विभङ्गज्ञान का काल कितना है ? 47
195 मनुष्य और तिर्यञ्चगति में विभङ्गज्ञान का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त €यों कहा ? 47
196 अपर्याप्तक अवस्था में विभङ्गज्ञान किन गतियों में पाया जाता है ? 48
197 मन:पर्ययज्ञान किस गुणस्थान में उत्पन्न होता है और किन-किन गुणस्थानों में पाया जाता है ? 48
198 मन:पर्ययज्ञान किस प्रकार जानता है और किन पदार्थों को जानता है ? 48
199 मन:पर्ययज्ञानी जीव कौनसी श्रेणी आरोहण कर सकता है और उसी भव से मोक्ष जा सकता है या नहीं ? 48
200 मन:पर्यय ज्ञान का विषय 45 लाख योजन गोल है या चौकोर ? 48

201 मन:पर्ययज्ञान का क्षेत्र कितना है ? €या यह मानुषोŽार के बाहर के भाग को भी जानता है ? *49*

202 अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान अणु को जानते हैं या नहीं ? *49*

203 केवलज्ञानी के द्वारा या समस्त जाना हुआ विषय दिव्यध्वनि में कहने में आता है या नहीं और द्वादशांग में कितना विषय निरूपण किया जाता है ? *49*

204 केवलज्ञानी की सामर्थ्य कितनी है ? €या केवलज्ञान में षट्गुणी हानिवृद्धि होती है ? *50*

205 केवलज्ञान में ज्ञेयों के अनुसार परिणमन होता है या नहीं ? *50*

206 विग्रहगति में कौनसे ज्ञान, दर्शन तथा गुणस्थान होते हैं ? *50*

संयम मार्गणा

207 संयम मार्गणा में असंयम को €यों लिखा गया ? *50*

208 संयत, असंयत और संयतासंयत की कितनी सं या है ? *51*

209 असंयम कितने प्रकार का होता है और उसका €या कारण है ? *51*

210 सामायिक और छेदोपस्थापना संयम में या भेद है ? *51*

211 तीर्थङ्करों के छेदोपस्थापना चारित्र होता है या नहीं ? *51*

212 परिहारविशुद्धि चारित्र कब और किन गुणस्थानों में होता है और इस चारित्र का धारी नीचे गिरता है या नहीं ? और यदि नीचे गिरता है तो कहाँ तक ? *52*

213 परिहारविशुद्धि चारित्र का परिचय एवं विशेषता बतायें। *52*

214 यथा यात चारित्र का उत्कृष्ट काल कितना है ? *52*

215 यथा यात चारित्र किन गुणस्थानों में होता है और इसके भेद होते हैं या नहीं ? *52*

दर्शन मार्गणा

216 लŽध्यपर्याप्तक और निवृत्यपर्याप्तक चार इन्द्रिय जीवों के चक्षुर्दर्शन या अचक्षुर्दर्शन है या नहीं ? *53*

217 चक्षुर्दर्शन व अचक्षुर्दर्शन का काल कितना है ? *53*

218 चक्षुर्दर्शन का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त कैसे बनता है ? *53*

लेश्या मार्गणा

219 लेश्या और कषाय में या अन्तर है एवं केवली के शु ल लेश्या यों है ? *53*

220 लेश्या के 6 ोद किस प्रकार बनते हैं ? *54*

221 जीवकाण्ड में लेश्याओं के मध्यम आठ अंश होने पर ही आयुबन्ध कहा गया है। इससे या समझा जाये ? *54*

222 कृष्ण लेश्या में कुछ कम 33 सागर प्रमाण अन्तर कैसे बनता है ? *54*

223 पीत लेश्या चतुर्थ स्वर्ग तक पायी जाती है और चौथे स्वर्ग की उत्कृष्टायु 7 सागर कही गयी है। देवों में लेश्या बदलती नहीं है इसलिए पीत लेश्या का उत्कृष्ट काल सात सागर होना चाहिये जबकि साधिक दो सागर कहा है। वह कैसे घटित होता है ? 55
224 नरकों में द्रव्यलेश्या और ाावलेश्या का वर्णन किस प्रकार है ? राजवार्तिक में 'षडपि' यह श द दिया है। अर्थात् उन्होंने नरकों में छहों लेश्या मानी हैं। इसको कैसे समझा जाये ? 55
225 विग्रहगति में नारकियों के शु ल लेश्या हो सकती है या नहीं ? 55
226 चारों गतियों के जीवों की द्रव्य लेश्या व भाव लेश्या समझाइये। 55
227 सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ पृष्ठ 174 में पं. फूलचन्द्र जी ने विशेषार्थ में ावनत्रिक देवों की अपर्याप्तक अवस्था में पीत तक चार लेश्यायें कही हैं परन्तु जीवकाण्ड गाथा 535 में तीन अशुभ लेश्या ही कही हैं ? 56
228 छठे-सातवें गुणस्थान में तीन शुभ लेश्या कही हैं परन्तु सर्वार्थसिद्धि 9/47 में अशुभ लेश्या भी कही है। तो €या छठवें-सातवें गुणस्थान में अशुभ लेश्या भी होती है और अशुभ लेश्या होने पर ाी गुणस्थान नहीं गिरता ? 56

भव्यत्व मार्गणा

229 भव्यत्व और अभव्यत्व यह जीव की कौन सी पर्याय है ? 56
230 या अभव्य जीव नौवें ग्रैवेयक तक जा सकते हैं ? 57
231 अभव्य जीव के स य€त्व होने से पूर्व होने वाली पाँच लŽिधयाँ होती हैं या नहीं ? उसके प्रायोग्यलि ध में कर्मों की स्थिति घटती है या नहीं ? 57
232 विदेह क्षेत्र को विदेह €यों कहते हैं ? €या वहाँ उत्पन्न होने वाले जीव भव्य ही होते हैं ? 57
233 भव्यजीवों के स य€त्व उत्पन्न हो जाने पर भव्यत्व भाव में कुछ परिवर्तन होता है या नहीं ? 57
234 अयोग केवली गुणस्थान के अन्तिम समय में भव्यत्व भाव का नाश €यों हो जाता है ? 58
235 अभव्यसम भव्य (दूरान्दूर भव्य) जीवों को कभी मोक्ष नहीं होगा। फिर ऐसे जीवों को भव्यों में यों शामिल किया गया ? या ये चारों गतियों में पाये जाते हैं ? 58
236 विकलेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीवों में अ ाव्य कितने होते हैं और ाव्य कितने ? 58

स य€त्व मार्गणा

237 अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को सर्वप्रथम उपशमस य€त्व होता है और फिर वह जीव मिथ्यात्व में आता है या नहीं ? 58
238 यदि कोई मुनि महाराज प्रथम गुणस्थान में उपशम स य€त्व प्राप्त करके सप्तम गुणस्थान में आये तो वे उसी प्रथमोपशम स य€त्व के काल में असंयमी बन सकते हैं या नहीं ? 59
239 क्षयोपशमलŽिध व विशुद्धिलŽिध के पूर्व आत्मबोध हो सकता है या नहीं ? तथा क्षयोपशमलŽिध और विशुद्धिलि ध में कर्मों का स्थितिबन्ध घटता है या नहीं ? 59

240 निसर्गज स य€त्व से पूर्व देशना लŽिध का होना आवश्यक है या नहीं ? 59

241 प्रथमोपशम स य€त्व को आर भ करते समय निद्रा, प्रचला आदि प्रकृतियों का उदय हो सकता है या नहीं ? 59

242 जो मिथ्यादृष्टि जीव प्रायोग्यलŽिध तक पहुँच गया है, €या उसके गृहीत मिथ्यात्व रह सकता है ? 60

243 प्रायोग्यलŽिध में 34 बन्धापसरण होते हैं परन्तु मिथ्यात्व का बन्ध €यों नहीं रुकता ? 60

244 बन्धापसरण में जिन प्रकृतियों का बन्ध रुकता है, €या हम उस अवस्था में उतनी प्रकृतियों का संवर मान लें योंकि इसी अवस्था को तो संवर कहते हैं ? 60

245 प्रथमोपशम स य€त्व से पूर्व ज्ञान एवं प्रशस्त आचरण होना आवश्यक है या पापाचरण की अवस्था में भी स य€त्व हो सकता है ? 61

246 कहीं पर तो स य€त्व के निश्चय और व्यवहार ये दो भेद किये हैं, कहीं पर सराग और वीतराग और कहीं पर औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक तीन भेद और कहीं आज्ञा, मार्गादि दस भेद किये हैं। इसका कारण €या है ? 61

247 हम स यग्दृष्टि हैं या नहीं या हमारे सामने वाला व्यक्ति स यग्दृष्टि है या नहीं। इसका अनुमान कैसे लगाया जाये ? 61

248 एक बार प्रथमोपशम स य€त्व होने के बाद पुन: प्रथमोपशम स य€त्व होने के बीच में जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कितना होता है ? 61

249 वेदक प्रायोग्य काल या होता है ? 62

250 प्रथमोपशम स यग्दृष्टि जीव के अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना स भव है या नहीं ? 62

251 सर्वोपशम और देशोपशम से €या तात्पर्य है ? 62

252 किस स य€त्व से कौनसा स य€त्व होना स   ाव है ? 62

253 €या प्रथमोपशम स य€त्व एक भव में कई बार हो सकता है ? 63

254 प्रथमोपशम स य€त्व प्राप्त करने वाले जीव की सžाा में 26, 27 या 28 कितनी प्रकृतियाँ होती हैं ? 63

255 प्रथमोपशम स य€त्व के काल में निर्जरा होती है या नहीं ? 63

256 देवगति में स यग्दर्शन की उत्पžाि के कौन-कौन से बाह्य कारण होते हैं ? 63

257 तिर्यञ्चों को जन्म के कितने समय बाद स यग्दर्शन हो सकता है ? 64

258 द्वितीयोपशम स य€त्वी जीव नियम से श्रेणी आरोहण करते हैं या नहीं ? 64

259 वेदक स य€त्व से पूर्व कितने करण होते हैं ? 64

260 स यग्मिथ्यात्व और स यक् प्रकृति की स्थिति प्रायोग्यलŽिध में मिथ्यात्व की स्थिति के अनुसार अन्त:कोडाकोडी सागर होती है। तो €या इन दोनों प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति इससे ज्यादा भी होती है ? 64

261 पं. श्री दौलतरामजी ने एवं पं. श्री बनारसीदास जी ने क्षायोपशमिक स य€त्व के सात भेद किये हैं, वे किस प्रकार हैं ? 65

262 वेदक स य€त्व में शङ्कादिक 25 दोष लगते हैं या नहीं और इसमें गुणश्रेणी निर्जरा होती है या नहीं ? 65

263 कोई विद्वान वेदक स य€त्व का उत्कृष्ट काल 132 सागर बताते हैं। वह कैसे घटित होता है ? *66*
264 कृतकृत्यवेदी स यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व में गिर सकते हैं या नहीं ? *66*
265 स य€त्व गुण और स यक् प्रकृति में €या अन्तर है ? *66*
266 वेदक स य€त्वी जीव के अनन्तानुबन्धी कषाय, मिथ्यात्व और स यग्मिथ्यात्व प्रकृति उदयावली में रहती हैं या नहीं ? *66*
267 दर्शनमोह की क्षपणा अर्थात् क्षय कौन मनुष्य कर सकता है ? *67*
268 यदि कोई जीव तीर्थङ्कर के रूप में जन्म ले और उसका स यग्दर्शन क्षायोपशमिक हो तो वह क्षायिक स यग्दृष्टि कैसे बनेगा €योंकि तीर्थङ्कर गृहस्थावस्था में किसी भी केवली या श्रुतकेवली के चरणों में नहीं जाते ? *67*
269 किसी जीव के क्षायिक स यग्दर्शन को पहचाना जा सकता है या नहीं ? *67*
270 €या क्षायिक स य€त्व स्त्रियों के हो सकता है ? €योंकि धवला पुस्तक-1 में मनुष्यनी के तीनों स य€त्व कहे हैं। *68*
271 क्षायिक स य€त्व वाले जीव किन नरकों में पाये जाते हैं और उनकी सं या कितनी है ? *68*
272 क्षायिक स यग्दृष्टि जीवों के कितने गुणस्थान होते हैं और इनकी उत्पŽि पञ्चमकाल में स भव है या नहीं ? *68*
273 विसंयोजना और क्षपणा अर्थात् क्षय में अन्तर है या नहीं ? *69*
274 उपशम स य€त्व और क्षायिक स य€त्व में कौन अधिक विशुद्ध है और €यों ? *69*
275 क्षायिक स यग्दृष्टि जीव जघन्य एवं उत्कृष्ट से कितने भव संसार में ले सकता है ? *69*
276 अमितगति श्रावकाचार तथा राजवार्तिक में क्षायिक स य€त्व को वीतराग स य€त्व कहा है जबकि समयसार आदि ग्रन्थों की टीका में वीतराग चारित्र से अविनाभूत वीतराग स य€त्व कहा है। यह दो प्रकार का कथन □ यों है ? *69*
277 क्षायिक स य€त्व चतुर्थ गुणस्थान में भी हो जाता है और केवली के भी होता है। तो इन दोनों के क्षायिक स य€त्व में कुछ अन्तर है या नहीं ? *70*
278 स य€त्व का जघन्यकाल कितना है ? *70*
279 सामान्य से स यग्दर्शन का उत्कृष्ट काल कितना है ? *70*
280 स यग्दर्शन के असं यात लोकप्रमाण और अनन्त भेद कैसे होते हैं ? *70*
281 संसार के छेद करने में कौन-कौन से कारण कहे गये हैं ? *71*
282 सर्वार्थसिद्धि और राजवार्तिक में काललर्ि□ ध के तीन भेद कहे हैं (2/3)-
1. जिसका अर्धपुद्गल परावर्तन काल मात्र शेष रह गया हो।
2. कर्मस्थिति अन्त:कोटाकोटी सागर प्रमाण हो।
3. संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, भव्य और सर्वविशुद्ध परिणाम वाला हो।
शंका- जिस जीव के ये तीनों काललŽध होती हैं उस जीव के प्रथम स य€त्व ग्रहण करने की योग्यता होती है। इसको समझाइये। *71*
283 अर्धपुद्गल परिवर्तन काल शेष रहने का तात्पर्य €या है ? *71*

284 अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल संसार शेष रहने पर स य€त्व होता है या स य€त्व होने पर अर्धपुद्गल परिवर्तन काल शेष रह जाता है ? यह ाी बताइये कि मिथ्यात्व के तीन टुकड़े अनिवृŽाकरण के अन्तिम समय में होते हैं या स य€त्व प्राप्ति के प्रथम समय में ? *72*
285 व्रती के शल्य नहीं होती □ योंकि *'निःशल्यो व्रती' कहा है*। तो □ या शल्य वाले जीव को स यग्दर्शन हो सकता है ? *72*
286 स यग्दृष्टि जीव मरण कर भाव स्त्रीवेद या द्रव्यस्त्रीवेद में जन्म ले सकता है या नहीं ? *72*
287 स्वयंभूरमण समुद्र में असं यात तिर्यञ्च संयमासंयमी हैं। उनको स यग्दर्शन या संयमासंयम कैसे प्राप्त होता है ? *73*
288 स यग्दृष्टि के जो नवीन कर्मों का बन्ध होता है, वह उसकी सŽा में उपस्थित कर्मों की स्थिति से कम होता है या अधिक ? *73*
289 अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना किन-किन गतियों में स भव है ? *73*
290 स यग्मिथ्यात्व और स यक्प्रकृति की सŽा वाले जीव कहाँ-कहाँ पाये जाते हैं ? *73*
291 सामान्य क्षायोपशमिक स यग्दर्शन अपर्याप्त अवस्था में होता है या नहीं ? यदि हाँ तो कहाँ ? *73*
292 प्रायोग्यलŽध के तथा प्रथम स य€त्व की उत्पŽा के समय स्थितिबन्ध में €या अन्तर है ? *74*
293 स यग्दर्शन गुण है या पर्याय ? *74*
294 तीनों ही स यग्दर्शनों के गुणस्थान बतलायें। *74*

संज्ञित्व मार्गणा

295 केवली भगवान को संज्ञी माना जाये या असंज्ञी ? *74*
296 असैनी जीवों के मन नहीं होता, फिर उनके प्रतिसमय बन्ध कैसे होता है ? *74*

आहारक मार्गणा

297 आहार किसे कहते हैं और इसके कितने भेद हैं ? केवली भगवान आहार लेते हैं या नहीं ? *75*
298 कोई जीव कितने समय तक अनाहारक रह सकता है ? उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल कितना है ? *75*
299 केवली भगवान प्रतर और लोकपूरण समुद्घात में, तथा विग्रहगति के जीव, कार्मणवर्गणाओं का ग्रहण तो करते हैं तो फिर उनको अनाहारक €यों कहा ? *75*
300 जीव ऊर्ध्वगमनस्वभावी है। इसलिए सभी जीवों को विग्रहगति के प्रथम समय में अर्थात् शरीर छोड़ने के बाद तुरन्त पहले समय में ऊपर ही जाना होगा। □ या ऐसा मानना ठीक है ? *76*
301 विग्रहगति में किन जीवों को कितने मोड़े लेने पड़ते हैं ? *76*
302 विग्रहगति में प्रतिसमय बन्ध होता है या नहीं ? यदि होता है तो □ यों ? *76*
303 आहारक शरीर और आहारक शरीराङ्गोपाङ्ग का बन्ध और उदय, उपशम-स य€त्व में होता है या नहीं ? *76*

बंध

304 निगोदिया जीवों की आयु तो बहुत थोड़ी होती है। तो या उसके भी आठ अपकर्ष काल बनेंगे ? 77
305 ए सीडेंट आदि से मरने वालों का आयुबन्ध कब होता है ? 77
306 गर्भस्थ शिशु गर्भावस्था में ही आयुबन्ध कर लेता है या जन्म लेने के बाद ? 77
307 देवों द्वारा मनुष्य और तिर्यञ्च की कितनी आयु का जघन्य बन्ध किया जाता है और उसका घात हो सकता है या नहीं ? 77
308 चारों गतियों में गति बन्ध का या नियम है ? 77
309 कौन जीव अपनी अगली आयु का बन्ध कब करते हैं ? 78
310 जीवों के अगली आयु का बन्ध एक ही अपकर्षकाल में होता है या अधिक में भी स ाव है ? 78
311 एक बार की बाँधी हुई आयु का उत्कर्षण या अपकर्षण स ाव है या नहीं ? 78
312 योगस्थान कितने प्रकार के होते हैं ? 79
313 आयु बन्ध होने के समय में तथा आयु बन्ध होने के बाद गतिबन्ध एकसा ही रहता है या बदलता रहता है ? 79
314 जब हमने पिछले भव में चारों गतियों का बन्ध किया है तो या चारों गतियों का उदय भी एक साथ होगा ? 79
315 आयुकर्म की उत्कृष्ट और जघन्य आबाधा कितनी होती है ? 80
316 प्रथम अपकर्ष काल में बँधी हुई नरकायु का, बाद में अच्छे परिणाम कर लेने पर दूसरी अन्य आयु में संक्रमण हो सकता है या नहीं ? 80
317 किस जीव के किस आयु का बन्ध स भव है ? 80
318 आत्मा और कर्म के बन्ध में €या होता है ? €या गाय और रस्सी का उदाहरण उचित है ? 80
319 तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध किन जीवों के होता है और कब होता है ? 81
320 तीर्थङ्कर प्रकृति का उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति बन्ध किस जीव के होता है ? 81
321 तीर्थङ्कर प्रकृति और आहारकद्विक का बन्ध एक साथ होना स भव है या नहीं ? 81
322 एक जीव के किन प्रकृतियों का बन्ध प्रतिसमय नियम से होता है ? 82
323 किन परिणामों के द्वारा जीव को स्त्री पर्याय में जन्म लेना पड़ता है ? 82
324 द्रव्यस्त्री के किन प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता ? 82
325 कर्मों का स्थिति बन्ध व अनुभाग बन्ध कम या ज्यादा किस प्रकार पड़ता है ? 82
326 किस गुणस्थान में कितने कर्म बन्धते हैं ? 83
327 सर्वबन्ध और नोसर्वबन्ध से या समझना चाहिये ? 83
328 पुण्य से सिर्फ आस्रव-बन्ध होता है या संवर-निर्जरा ी होती है ? 83
329 आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी ने समयसार में पुण्य-पाप दोनों को हेय कहा है। तो हमको कैसी मान्यता बनानी चाहिये ? 84
330 विस्रसोपचय किसे कहते हैं ? 84
331 किन प्रकृतियों का जघन्य स्थिति बन्ध किन गुणस्थानों में होता है ? 84

332 शुभ प्रकृतियों का अनुभाग घात कैसे होता है ? *85*
333 पुण्य प्रकृतियाँ और पाप प्रकृतियाँ किन्हें कहते हैं ? *85*

उदय

334 तीर्थङ्कर प्रकृति का स्वमुख उदय कब से प्रार भ मानना चाहिये ? *85*
335 साता वेदनीय और असातावेदनीय में से एक समय में दोनों प्रकृतियों का उदय स भव है या एक का ? *85*
336 हास्य और रति नोकषाय का उत्कृष्ट उदय–उदीरणा काल कितना है ? *86*
337 सर्वार्थसिद्धि के देवों को पीड़ारूप अनुभवन होता है या नहीं ? *86*
338 भगवान की दिव्यध्वनि होने में उपादान और निमिž। कारण €या है ? *86*
339 कर्मोदय से बाह्य सामग्री व अन्य जीवों में भी परिणमन होता है या नहीं ? *86*
340 कर्म का फल उदय होने पर ही देखा जाता है या उदय आने से पूर्व या उदय हो चुकने के बाद में भी देखा जाता है ? *87*
341 एक भव में किसी जीव का संहनन या संस्थान बदल सकता है या नहीं ? *87*
342 हमारे कौन सा संस्थान और कौन सा संहनन है ? *87*
343 आत्मा तो अमूर्तिक है। उसका मूर्तिक कर्मों के साथ बन्ध कैसे हो जाता है ? *88*
344 या कुछ प्रकृतियाँ ऐसी भी हैं जिनका उदय प्रतिसमय रहता है ? *88*
345 कर्म का उदय जिस डिग्री का होता है तो आत्मा के परिणाम उसी डिग्री के बनते हैं अथवा कम या अधिक ? *88*
346 €या आत्मा अपनी उपादान शक्ति से, बिना निमिž। मिले क्रोधादिकरूप परिणमन कर सकता है ? एकान्तवादियों की मान्यतानुसार निमिž। कुछ नहीं करता। स पूर्ण कार्य उपादान शक्ति से ही होते हैं तो फिर आत्मा में विभाव परिणमन का कारण €या है ? *88*
347 दर्शनमोहनीय कर्म चारित्र गुण का घात कर सकता है या नहीं ? *89*
348 या उपघात और परघात इन दोनों प्रकृतियों का उदय एक साथ हो सकता है ? *89*
349 बन्धन और संघात प्रकृति के कार्य में या अन्तर है ? *89*
350 निद्रादर्शनावरण कर्म के उदय में दर्शन और ज्ञान दोनों नहीं होते। €या ऐसा मानना ठीक है ? *90*
351 देव और नारकियों की अकालमृत्यु नहीं होती तो उनके आयुकर्म का उदय रहता होगा, परन्तु उदीरणा नहीं होती होगी। €योंकि उदीरणा होने पर अकालमरण हो जायेगा ? *90*
352 आयुकर्म का अनुभाग या होता है ? *90*
353 भुज्यमान आयु या बध्यमान आयु के निषेकों के उदय में कुछ अन्तर रहता है या नहीं ? *90*
354 स्त्री, पुत्र, धन आदि बाह्य सामग्री का संयोग किस कर्म के उदय से होता है ? *91*
355 शरीर नामकर्म के उदय में या– या कार्य होते हैं ? *91*
356 वृद्धावस्था तथा कमजोरी (शिथिलता) आने में कौन सा कर्म कारण होता है ? *91*
357 विग्रह गति में शरीर नहीं है फिर वहाँ स्थिर और अस्थिर, शुभ और अशुभ इन प्रकृतियों का

उदय या काम करता है ? योंकि आगम में इन प्रकृतियों को ध्रुवोदयी कहा है ? 92
358 अनन्तानुबन्धी के उदय के साथ 16 कषायों का उदय रहता है या मात्र अनन्तानुबन्धी का ही ? अर्थात् कषाय के उदय का क्रम या है ? कृपया समझाइये। 92
359 पहले तीन घातिया कर्मों के बीच में वेदनीय कर्म को यों रखा गया तथा घातिया कर्म होते हुये भी अन्तराय कर्म को सबसे अन्त में €यों रखा गया ? इसका कारण बताइये। 92
360 असंयत तिर्यञ्चों के या संयतासंयत तिर्यञ्चों के उच्च गोत्र का उदय होता है या नहीं ? 92
361 कौन-कौन से जीवों के उच्च गोत्र या नीच गोत्र का उदय होता है ? 93
362 उदयाभावी क्षय और अविपाक निर्जरा में या अन्तर है ? 94
363 सदवस्थारूप उपशम या होता है ? 94
364 देव और नारकियों के असाता या साता वेदनीय की उदय-उदीरणा उत्कृष्ट से कितने काल तक रह सकती है ? 94

सत्व

365 सप्तम नरक में 33 सागर की आयु सभी नारकियों के होती है या जघन्य आयु का भी विधान है ?94
366 या संज्वलन और नव नोकषायों में सर्वघाति या देशघाति दोनों प्रकार के स्पर्धक होते हैं ?94
367 अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना होती है, क्षय €यों नहीं ? यह किन गुणस्थानों में होती है और इसका उत्कृष्ट काल कितना है ? 95
368 मोहनीय कर्म का नाश दसवें गुणस्थान के अन्तिम समय में होता है या बारहवें गुणस्थान के प्रथम समय में ? 95

गुणश्रेणी, स्थिति, अनुभागकाण्डकघात

369 एकेन्द्रिय जीव के स्थितिकाण्डक घात और अविपाक निर्जरा होती है या नहीं ? 96
370 अनुभाग काण्डक घात में, नवीन बन्ध में अनुभाग घटता है या सžा में स्थित कर्मों में ही अनुभाग घटता है ? 96
371 स्थितिकाण्डक घात और अनुभागकाण्डक में ऊपर के प्रदेश नीचे आते हैं या नहीं तथा स्थितिकाण्डकघात के समय अनुभागकाण्डक घात होना आवश्यक है या नहीं ? 96
372 अवधिज्ञान के काल में और अवधिज्ञान के अभाव के काल में अवधिज्ञानावरण के सर्वघाति व देशघाति स्पर्धकों का या होता है ? 97
373 अविभागी प्रतिच्छेद किसे कहते हैं ? 97
374 एक वर्गणा में जितने वर्ग होते हैं, उन सब में अविभागी प्रतिच्छेद समान रहते हैं या कम-ज्यादा होते हैं ? 97
375 क्षयोपशम दशा में कर्म की देशघाति व सर्वघाति प्रकृतियाँ किस प्रकार कार्य करती हैं ? 97
376 कषायों की शक्ति की अपेक्षा कर्मकाण्ड, धवला आदि ग्रन्थों में चार भेद पढ़ने में आते हैं-

उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य, जघन्य। इनसे €या तात्पर्य है ? 98
377 जो कर्म उदयावली में प्रवेश कर चुके हैं, उनमें उत्कर्षण, अपकर्षण आदि स भव है या नहीं ? 98
378 चारों कषायों में किस कषाय का अनुभाग सबसे महान् (बड़ा) है ? 98
379 आबाधा किसे कहते हैं ? आयुकर्म की आबाधा में या विशेषता है ? 99

करण

380 कर्मों के दस करण में उपशम करण भी है। तो €या उपशम भाव और उपशम करण समान हैं या कुछ अन्तर है ? 99
381 उद्वेलना संक्रमण किसे कहते हैं और यह कितनी प्रकृतियों में होता है ? 99
382 तेरह उद्वेलित प्रकृतियों की उद्वेलना कब और कौन जीव करता है ? 100
383 स यग्दृष्टि जीव तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध करते हैं और उसकी स्थिति अन्त:कोडाकोडी सागर से अधिक नहीं होती। अत: राजा श्रेणिक के तीर्थङ्कर प्रकृति का उदय आना चाहिये था जबकि तीर्थङ्कर प्रकृति का उदय तो 13 वें गुणस्थान में होता है। इसका कारण €या है ? 100
384 अप्रशस्त उपशम और स्तिवुक संक्रमण में €या अन्तर है ? 100
385 आयु बन्ध के काल में समान स्थिति बन्ध होता है या अलग-अलग भी होता रहता है ? 101
386 परभव स बन्धी आयु के उत्कर्षण व अपकर्षण कब होते हैं ? 101
387 राजा श्रेणिक ने 33 सागर की आयु का अपकर्षण कब किया था ? 101
388 उदय और उदीरणा में €या अन्तर है ? 101
389 निधZाकरण और निकाचितकरण का €या स्वरूप है ? 102
390 गुणश्रेणी निर्जरा किसे कहते हैं ? 102
391 आयु कर्म के अपकर्षण को अवल बनाकरण €यों कहा जाता है ? 102

भाव

392 किसी एक जीव में कम से कम और अधिक से अधिक कितने भाव पाये जा सकते हैं ? 102
393 पाँच भावों में कौन-कौन से भाव बन्ध और मोक्ष में कारण होते हैं ? 103
394 क्षयोपशम लि ध और क्षयोपशम में या अन्तर है ? 103
395 जीव के जो पाँच भाव कहे गये हैं, उनमें से कोई भाव अन्य द्रव्यों में भी पाये जाते हैं या नहीं ? 103
396 औदयिक भाव तो कर्मोदय से होने वाले आत्मा के राग-द्वेष आदि परिणामों में माना जाना चाहिये था। गति तथा लिङ्ग रूप शरीर के चिह्नों में औदयिक भाव यों माना गया है ? 103
397 अहिंसादि व्रतों को औदयिक भाव मानें या क्षायोपशमिक भाव ? और यों ? 104
398 द्विसंयोगी आदि सान्निपातिक भाव €या है और वे किस गुणस्थान में होते हैं ? 104
399 पारिणामिक ावों में उत्पाद, व्यय होता है या नहीं ? अस्तित्व, वस्तुत्व आदि सामान्य गुणों में उत्पाद, व्यय होता है या नहीं ? बताइये। 104
400 €या सिद्धत्व पारिणामिक भाव है ? 105

पुद्गल वर्गणा

401 पुद्गल वर्गणा कितने प्रकार की होती है ? उनमें से कितने प्रकार की वर्गणा हमारे उपयोग में आती है ? *105*
402 धातु चार हैं – पृथ्वी, जल, अग्नि व वायु। इन चार धातुओं के परमाणु भिन्न-भिन्न होते हैं या एक ही प्रकार के ? *105*
403 कौन-कौन सी वर्गणा चक्षु इन्द्रिय या अन्य इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य है ? *105*
404 मनोवर्गणा के द्वारा जो द्रव्य मन बनता है उसका स्वरूप व कार्य €या है ? *106*
405 कार्मण वर्गणा में पुद्गल के कौन-कौन से गुण पाये जाते हैं ? *106*
406 कार्मण वर्गणा मूल में एक प्रकार की होती है या आठ प्रकार की होती है ? *106*
407 प्रत्येक समय में कोई जीव समान सं या में कर्म वर्गणा ग्रहण करता है या कम-ज्यादा ? *106*
408 महास्कन्ध या है ? *107*
409 €या कार्मणवर्गणा आहारवर्गणा रूप हो सकती है अर्थात् एक वर्गणा अन्य वर्गणारूप परिणमन कर सकती है ? *107*
410 स्वर्ण चाँदी रूप हो सकता है या नहीं ? *107*

शरीर

411 आगमानुसार लोक में औदारिक शरीरों की सं या असं यात ही है जबकि जीवों की सं या अनन्तानन्त है। ऐसा यों ? *107*
412 या कोई ऐसे भी जीव हैं जो निरन्तर औदारिक शरीर नामकर्म का ही बन्ध करते हों ? *108*
413 तीर्थङ्कर भगवान के शरीर में सप्त धातु होती है या नहीं €योंकि उनके सन्तानोत्पžा तो देखी जाती है। अत: हमें या मानना चाहिये ? *108*
414 किन शरीरों में सप्तधातु होती हैं और किनमें नहीं ? *108*
415 जो नोकर्म वर्गणायें हम प्रतिसमय ग्रहण करते हैं, वह कितने समय तक हमारी आत्मा के साथ बन्धी रहती है ? और उनकी स्थिति कितनी है ? *108*
416 वैक्रियिक शरीर इन्द्रियों के द्वारा जाना जाता है या नहीं ? *108*
417 विग्रहगति में तैजस शरीर नामकर्म का या कार्य है ? *109*
418 शुभ तैजस और अशुभ तैजस शरीर में या अन्तर होता है ? *109*
419 अशुभ तैजस का पुतला अग्नि जलाने के बाद जब लौटकर आता है तब उन मुनि को भी भस्म कर देता है या नहीं ? *109*
420 कार्मण शरीर की उत्पžा में कारण €या है ? *109*
421 €या पाँचों शरीर के योग्य वर्गणाओं को नोकर्म कहते हैं ? *110*
422 स्त्रियों में कितने संहनन पाये जाते हैं ? *110*

समुद्घात

423 शुभ लेश्याओं में भी वेदना, कषाय तथा मारणान्तिक समुद्घात संभव हैं या नहीं ? *110*

424 मारणान्तिक समुद्घात €या है ? कितने जीव मारणान्तिक समुद्घात करते है और यह किन-किन गुणस्थानों में होता है ? *110*

425 अशुभ तैजस समुद्घात में कषाय की तीव्रता होती है तो उन मुनिराज का गुणस्थान कौनसा होता होगा ? *111*

426 मनुष्यों के द्वारा जब विक्रिया की जाती है तब उनके औदारिक शरीर नामकर्म का उदय है या वैक्रियिक शरीर नामकर्म का ? *111*

427 सातों समुद्घातों में आत्मा के प्रदेश एक दिशा में जाते हैं या सर्वदिशाओं में ? *111*

428 किसी ग्रन्थ में केवली समुद्घात का काल आठ समय और किसी में सात समय बताया है। वास्तव में कितना समय लगता है ? अन्य समुद्घातों का समय भी बतायें। *111*

429 तेरहवें गुणस्थान के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में तीन अघातिया कर्मों की स्थिति आयु कर्म के बराबर कब होती है तथा योग निरोध कब किया जाता है ? *112*

430 सभी केवली, केवलीसमुद्घात करते हैं या नहीं ? केवली समुद्घात किस कर्मोदय से होता है ? *112*

431 केवली समुद्घात के समय आत्मप्रदेशों का शरीर से स बन्ध रहता है या नहीं ? *112*

432 केवली समुद्घात के समय अपर्याप्त अवस्था में अथवा कार्मण काययोग अवस्था में मूलशरीर के साथ कोई स बन्ध नहीं रहता फिर कायबल प्राण कैसे बताया गया है ? *113*

433 मनुष्यों के आत्म प्रदेश किन-किन अवस्थाओं में ढाई द्वीप से बाहर भी पाये जाते हैं ? *113*

अकालमरण

434 चरमशरीरी जीवों का अकालमरण होता है या नहीं ? *113*

435 परभव की आयु का बन्ध होने पर अकालमरण होता है या नहीं ? कृष्ण और पाण्डवों का अकालमरण कहें या नहीं ? *114*

436 आत्महत्या करने वालों को नरक ही मिलता है या स्वर्ग भी मिल सकता है ? *114*

437 €या सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों का भी अकाल मरण होता है ? *114*

438 निश्चय नय से अकालमरण नहीं होता। फिर अकालमरण €यों कहा जाता है ? सभी जीवों का मरण भगवान के ज्ञानानुसार ही तो होता होगा ? *115*

कुल, योनि, जन्म

439 मनुष्यों के 14 लाख योनियाँ तथा 12 ला ा कोटि कुल बताये हैं। इनको विस्तार से समझायें। *115*

440 तीर्थङ्कर भगवान का जन्म जरायुज होता है या पोत ? *115*

गत्यागति

441 सप्तम नरक से निकलकर, तिर्यञ्च बनकर पुन: सातवें नरक में जा सकता है या नहीं ? *116*
442 कौनसा जीव मरकर कहाँ उत्पन्न हो सकता है ? अर्थात् जीवों की गति अगति बतायें। *116*
443 नरक से निकले हुए जीवों के कौन-कौन से गुणस्थान स भव हैं ? *117*
444 पञ्चमकाल में मनुष्य का गमन स्वर्ग और नरक में कहाँ तक स भव है ? *117*
445 स यग्दृष्टि जीव की उत्पZ़ि कहाँ-कहाँ होती है ? यदि उन्होंने स य€त्व होने से पूर्व आयुबन्ध न किया हो तो ? *117*
446 €या नित्यनिगोद से निकलकर मनुष्य पर्याय प्राप्त कर जीव मोक्ष जा सकता है ? *117*
447 त्रेसठ शलाका पुरुष कौन होते हैं और ये मरकर कहाँ-कहाँ उत्पन्न होते हैं ? *118*
448 भरतक्षेत्र का मनुष्य किस भव से विदेह क्षेत्र में मनुष्य बन सकता है ? *118*
449 अभव्य और द्रव्यलिङ्गी मुनि स्वर्गों में कहाँ तक उत्पन्न हो सकते हैं ? *118*
450 लौकान्तिक देवों में कौन जीव जन्म ले सकते हैं ? *118*
451 या चक्रवर्ती की पटरानी नियम से नरक जाती है ? ऐसा सुनने में आता है। *118*
452 लेच्छखण्ड में उत्पन्न मनुष्य मुनि बन सकता है या नहीं ? मोक्ष जा सकता है या नहीं ? *119*
453 किसी जीव ने ल ध्यपर्याप्तक मनुष्य की आयु का बन्ध किया। या बाद में दान देने के प्रभाव से वह भोगभूमि में जा सकता है ? *119*
454 नरकायु का बन्ध करके जिस जीव ने सोलहकारण भावना भाकर तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध कर लिया हो, वह कौन से नरक तक जा सकता है ? *119*
455 सर्वार्थसिद्धि से आकर मनुष्यजन्म लेने वाले जीवों के अवधिज्ञान साथ आने का नियम है या नहीं ? *119*
456 जीवों का उत्पZ़ि स्थान कैसे और कब नियत होता है अर्थात् मरने के बाद या आयुबन्ध के समय ? *120*

लोकरचना

457 चित्रा आदि 16 पृथ्वियाँ कहाँ है ? मध्यलोक में या अधोलोक में ? *120*
458 भोगभूमि में भोजनसामग्री सचि ा होती है या अचि ा एवं अन्य व्यवस्थायें कैसी हैं ? *120*
459 ढाई द्वीप से बाहर के सूर्य चन्द्रमा स्थिर रहते हैं। तो कहीं रात्रि ही रहती होगी और कहीं दिन ही रहता होगा। सही स्थिति या है ? *121*
460 लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र की बनावट में €या अन्तर है ? *121*
461 नन्दीश्वर द्वीप की रचना किस प्रकार है ? *121*
462 ज बूवृक्ष और शाल्मलि वृक्ष कहाँ पर हैं ? *121*
463 ढाईद्वीप में कितने सूर्य एवं कितने चन्द्रमा हैं और उनका गमन किस प्रकार होता है ? *122*
464 पंचमेरु की रचना किस प्रकार है ? *122*

465 स्वर्गों में दक्षिणेन्द्र और उžरेन्द्र का अथवा पहले और दूसरे स्वर्गों का विभाजन किस प्रकार है ? *122*
466 सोलहवें स्वर्ग तक की देवियों की आयु कितनी-कितनी होती है ? *123*
467 लौकान्तिक देव कहाँ रहते हैं, उनकी आयु, अवगाहना तथा सं या कितनी है ? *123*
468 चारों गतियों के जीवों की अवगाहना कैसे नापी जाती है ? *123*
469 कुभोगभूमियाँ कितनी हैं ? उनमें जीवों की आयु तथा आहारव्यवस्था कैसी है ? *123*
470 देवों का आहार व श्वासोच्छ्वास कब होता है ? *124*
471 विजयार्ध पर्वत पर, लेच्छखण्डों में, कुभोगभूमियों में तथा अर्ध स्वय भूरमण द्वीप एवं स्वय भूरमण समुद्र में काल परिवर्तन कैसा होता है ? *124*
472 भगवान ऋषभदेव का निर्वाण कैलाश पर्वत से हुआ। वह कैलाश पर्वत कहाँ है ? बताइये। *124*
473 नारकियों के शरीर की ऊँचाई कितनी होती है और उनकी लेश्यायें कौन-कौन सी होती हैं ? *125*
474 सातों पृथ्वियों की मोटाई, बिलों की सं या एवं पटलों की सं या बतलायें। *125*
475 नरकों के पटलों में बिलों की रचना किस प्रकार है ? *126*
476 लोक का घनफल कितना है और तीनों लोकों का घनफल अलग-अलग कितना है ? *126*
477 चन्द्रमा के विमान में जिनबि ब विराजमान है तो अमावस्या के दिन या ग्रहण समय में वे जिनबि ब कहाँ रहते हैं ? *126*
478 सुमेरु पर्वत के ठीक ऊपर पहला इन्द्रक विमान है। उस विमान के ध्वजदण्ड का शिखर, सुमेरु पर्वत के शिखर से कितनी दूरी पर है अर्थात् प्रथम इन्द्रक विमान की कितनी ऊँचाई है ? *126*
479 तम:स्कन्ध कहाँ है और उसके कारण किन-किन स्वर्गों में अन्धकार पाया जाता है ? *127*
480 पाण्डुकशिला का आकार कैसा है और एक मेरु के पाण्डुकवन में कितनी शिलायें हैं ? *127*
481 सिद्धशिला कहाँ पर है और उसका आकार कितना बड़ा है ? *127*
482 सिद्धक्षेत्र तनुवातवलय के कितने भाग में है ? *127*
483 ऊर्ध्वलोक तथा अधोलोक सिद्ध कौन होते हैं और उनके सिद्धक्षेत्र कौन से होते है ? *128*
484 स मेदशिखर की एक-एक टोंक से करोड़ों-अरबों मुनिराज मोक्ष पधारे। इससे हमें €या तात्पर्य लेना चाहिये। *128*
485 लोक का आकार गोल है या चौकोर ? *128*
486 त्रस नाडी की ऊँचाई कितनी है ? *128*

काल

487 अर्धपुद्गलपरावर्तन काल किसे कहते हैं ? या अवधिज्ञानी इसको जानता है ? *129*
488 हुण्डावसर्पिणी काल की तरह हुण्डोत्सर्पिणी काल ाी होता है या नहीं ? *129*
489 कल्की और उपकल्की कौन होते हैं ? वे कब और कहाँ होते हैं ? *129*
490 प्रलय का होना किन क्षेत्रों में होता है ? प्रलय किस दिन से प्रार भ होती है इत्यादि विषय विस्तार से समझाइये। *130*
491 विजयार्ध पर्वत पर जो विद्याधर लोकों के निवास हैं, या वहाँ से जीव निरन्तर मोक्ष जाते रहते हैं? *130*

492 मुहूर्त, अन्तर्मुहूर्त, आवली आदि की परिभाषा बताइये ? *130*
493 जो जीव नित्य निगोद में हैं, €या उनका अभी तक एक बार भी पञ्चपरावर्तन नहीं हुआ ? *131*

श्रेणी, मान

494 आकाश की श्रेणी से €या अभिप्राय है ? अनुश्रेणी गति किस प्रकार होती है ? *131*
495 सं यात, असं यात और अनन्त से €या तात्पर्य है ? €या उत्कृष्ट सं यात 150 अङ्क प्रमाण होता है ? *131*
496 पल्य के असं यातवें भाग में तथा पल्य में कितने वर्ष होते हैं ? *132*
497 स्वर्गों में कितने पटल, कितने विमान, कितना क्षेत्र, कौनसी लेश्या और शरीर की उँचाई कितनी है ? *133*

♦ ♦ ♦ ♦ ♦

PDFaid.com
#1 pdf solutions online

गुणस्थान

प्रश्न किस गुणस्थान वाले जीव किन गुणस्थानों में आ-जा सकते हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 101)

उžार- गुणस्थान	किन गुणस्थानों में जाते हैं	किन गुणस्थानों से आते हैं
मिथ्यात्व	3,4,5,7	2,3,4,5,6
सासादन	1	4,5,6
मिश्र	1,4	6,5,4,1
अविरत स य€त्व	1,2,3,5,7	6,5,3,1
देशविरत	1,2,3,4,7	6,4,1
प्रम ाविरत	1,2,3,4,5,7	7
अप्रम ाविरत	6,8	1,4,5,6
अपूर्वकरण	9,7	7,9
अनिवृžाकरण	8,10	8,10
सूक्ष्म-सा पराय	9,11,12	9,11
उपशान्तमोह	9,10	10
क्षीणमोह	13	10
सयोगकेवली	14	12
अयोगकेवली	सिद्ध अवस्था में	13

सातवें से ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीव मरण की अपेक्षा चौथे गुणस्थान में ही गिरते हैं।

प्रश्न अपर्याप्त और पर्याप्त अवस्था में कौन-कौन से गुणस्थान होते हैं ?

उžार- अपर्याप्त अवस्था में 1,2,4,6 वाँ और 13 वाँ गुणस्थान होता है एवं पर्याप्त अवस्था में सभी गुणस्थान संभव हैं। विशेष यह है कि अपर्याप्त अवस्था में प्रथम, द्वितीय व चतुर्थ गुणस्थान मरण की अपेक्षा, 6 वाँ गुणस्थान आहारकमिश्र काययोग की अपेक्षा तथा 13 वाँ गुणस्थान कपाट, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात की अपेक्षा से है।

प्रश्न पञ्चमकाल में कितने गुणस्थान स भव हैं और €यों ?

उ ार- पञ्चमकाल में अन्त के तीन संहनन होते हैं और ये संहननधारी जीव संयम धारण करके सप्तम गुणस्थान तक ही जा सकते हैं। इससे ऊपर नहीं जा सकते। सप्तम गुणस्थान में भी स्वस्थान अप्रमžाविरत तक ही जाते हैं।

प्रश्न सातिशय एवं निरतिशय मिथ्यादृष्टि का या स्वरूप है ?

उ ार- जो मिथ्यादृष्टि जीव स यग्दर्शन के स मुख है, वह सातिशय मिथ्यादृष्टि है। उसके परिणामों में निरन्तर प्रतिसमय अनन्तगुणी विशुद्धि बढ़ती जाती है एवं वह गुणश्रेणी निर्जरा भी करता है।

साधारण मिथ्यादृष्टिजीव को निरतिशय मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

प्रश्न सासादन गुणस्थान असैनी और लŽध्यपर्याप्तक जीवों में होता है या नहीं ?

उ ार- सासादन गुणस्थानवर्ती सैनी पंचेन्द्रिय जीव मरण कर असैनी जीवों में उत्पन्न हो सकते हैं या नहीं ? इस स बन्ध में आचार्यों के दो मत हैं-

आचार्य पुष्पदन्त एवं भूतबली के मतानुसार असंज्ञी जीवों में सासादन गुणस्थान किसी भी अपेक्षा से स भव नहीं है परन्तु कर्मकाण्ड ग्रन्थ की अपेक्षा निवृत्यपर्याप्तक जीवों में सासादन गुणस्थान संभव है। और लŽध्यपर्याप्तक जीवों में सासादन गुणस्थान नहीं होता है। वे नियम से मिथ्यादृष्टि ही होते हैं।

what does it mean?

प्रश्न आयुबन्ध योग्य गुणस्थानों में ही मरण होता है। यदि ऐसा है तो श्रेणिक महाराज ने नरकायु का बन्ध तो प्रथम गुणस्थान में किया था तो मरण चतुर्थ गुणस्थान में €यों हुआ ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 103)

need to understand from Pt Mahesh Ji

ार- यह नियम नहीं है कि जीव जिस गुणस्थान में आयु बन्ध करे उसी में मरण हो। नियम यह है कि आयुबन्ध के अयोग्य तीसरे गुणस्थान में तथा जहाँ मरण नहीं होता उन गुणस्थानों में मरण नहीं होता है। इसके अलावा किसी ी गुणस्थान में मरण संभव है।

प्रश्न दूसरे व तीसरे गुणस्थान में से किस गुणस्थान का काल ज्यादा है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 104)

उ ार- दूसरे गुणस्थान का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल 6 आवली प्रमाण है, जबकि तीसरे गुणस्थान का जघन्य एवं उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। इस प्रकार दूसरे गुणस्थान से तीसरे गुणस्थान का काल सं यात गुणा मानना चाहिये।

प्रश्न मिथ्यात्व के कितने भेद हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 105)*

उ ार- मिथ्यात्व के दो भेद होते हैं- (1) मिथ्यादर्शन कर्म के उदय से त वों का विपरीत श्रद्धान होना अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (2) जो परोपदेश या खोटे शास्त्र पढ़ने से विपरीत श्रद्धान होता है, उसे गृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं। इसके चार तथा पाँच भेद भी हैं।

1. क्रियावादी 2. अक्रियावादी 3. वैनयिक 4. अज्ञानिक

1. विपरीत 2. एकान्त 3. विनय 4. संशय 5. अज्ञान

यह सभी प्रकार का मिथ्यात्व चारों गतियों में पाया जाता है।

प्रश्न एकेन्द्रिय जीवों में गृहीत मिथ्यात्व कैसे संभव है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 106)*

उžार– पूर्वभव के गृहीत मिथ्यात्व का संस्कार होने से एकेन्द्रिय जीवों में भी आचार्य वीरसेन महाराज ने गृहीत मिथ्यात्व माना है।

प्रश्न तीनों करणों का €या स्वरूप है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 107)*

उ□ ार– तीन करणों का स्वरूप इस प्रकार है–

1. जहाँ समान समयवर्ती जीवों के परिणाम तथा असमानसमयवर्ती जीवों के परिणाम अलग–अलग या एक जैसे होते हों उसे अध:करण कहते हैं।

2. जहाँ समान समयवर्ती जीवों के परिणाम समान और असमान दोनों प्रकार के होते हैं परन्तु भिन्नसमयवर्ती जीवों के परिणाम असमान ही होते हैं, उसे अपूर्वकरण कहते हैं।

3. जहाँ समानसमयवर्ती जीवों के परिणाम समान ही होते हैं और भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम असमान ही होते हैं, उसे अनिवृZाकरण कहते हैं।

प्रश्न जीवों के करण कब–कब होते हैं और कौन–कौन से होते हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 107)

उžार– कोई मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम स य€त्व सहित चौथे, पाँचवें या सातवें गुणस्थान में जाता है तब तीन करण होते हैं। यदि क्षायोपशमिक स य€त्व सहित पाँचवें या सातवें गुणस्थान में जाता है तब दो करण होते हैं अर्थात् क्षायोपशमिक स य€त्व, संयमासंयम अथवा क्षायोपशमिक चारित्र प्राप्त करने के लिए दो करण आवश्यक हैं अर्थात् उनके सिर्फ अध:करण और अपूर्वकरण होते हैं।

Need explaination

द्वितीयोपशम स य€त्व, क्षायिक स य€त्व, क्षायिक चारित्र तथा अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना से पूर्व तीन करण आवश्यक हैं।

प्रश्न स यग्मिथ्यात्व प्रकृति को जात्यन्तर सर्वघाती प्रकृति €यों कहा जाता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 112)

उžार– ज्ञानावरण की केवलज्ञानावरण, दर्शनावरण की केवलदर्शनावरण, पाँच निद्रा, मोहनीय कर्म की मिथ्यात्व और स यग्मिथ्यात्व ये 2, अनन्तानुबन्धी 4, अप्रत्या यानावरण 4 और प्रत्या यानावरण 4 इस प्रकार 1 + 6 + 14 = 21 सर्वघाती प्रकृतियाँ हैं अर्थात् इनके उदय में आत्मा के गुण का शत प्रतिशत घात होता है।

स यग्मिथ्यात्व का उदय होने से स य€त्व का एक देश अभाव हुआ, इसलिये यह सर्वघाति है परन्तु एकदेश का सद्भाव भी है इसलिए सर्वघाती नहीं भी है। अत: इसे सर्वघाती होते हुए भी जात्यन्तर विशेषण दिया है। ऐसा स्वभाव किसी अन्य प्रकृति में नहीं है।

प्रश्न €या तृतीय गुणस्थान में स य€त्व और मिथ्यात्व दोनों परिणाम पाये जाते हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 113)

उ□ ार- नहीं, ऐसा नहीं होता है। इस गुणस्थान में दोनों के मिले-जुले स यग्मिथ्यात्वरूप परिणाम का सद्भाव होता है।

प्रश्न स यग्मिथ्यात्व गुणस्थान में कौनसा भाव है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 113)*

उ□ ार- इस गुणस्थान में स य€त्व गुण का अंश होने के कारण क्षायोपशमिक भाव है।

प्रश्न स यग्मिथ्यात्व प्रकृति सर्वघाती है अत: उसके स्पर्धक भी सर्वघाती ही होने चाहिये ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 113)

उ□ ार- यद्यपि स यग्मिथ्यात्व के स्पर्धक सर्वघाती ही होते हैं परन्तु जब उनका उदय आता है तब स य€त्व का अंश विद्यमान रहता है, इसलिए सर्वघाति होते हुए भी उनका फल देशघातिरूप देखा जाता है।

प्रश्न तृतीय गुणस्थान में कार्मण काय योग €यों नहीं होता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 114)*

उ□ ार- कार्मण काय योग 'विग्रहगतौ कर्मयोग:' विग्रहगति में होता है। तृतीय गुणस्थान में मरण नहीं होता इसलिए विग्रहगति में तृतीय गुणस्थान न होने से वहाँ कार्मणकाययोग नहीं होता है।

प्रश्न तृतीय गुणस्थानवर्ती उपशम स य€त्व को प्राप्त कर सकता है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 114)

उ□ ार- उपशम स यग्दर्शन को मिथ्यादृष्टि जीव ही प्राप्त करता है, यह प्रथमोपशम स य€त्व की चर्चा है। तृतीय गुणस्थान वाला उपशम स य€त्व प्राप्त नहीं कर सकता। यदि तृतीय गुणस्थानवर्ती चतुर्थ गुणस्थान में आता है तो वह क्षायोपशमिक स यग्दर्शन प्राप्त करता है।

प्रश्न औपशमिक स य€त्व से पूर्व मिथ्यादृष्टि जीव के पाँच लŸधयाँ कौन-कौन सी होती हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 107)

उŽार- 1.जिस समय अशुभ कर्मों का अनुभाग अनन्त गुणा घटता हुआ उदय में आवे तब क्षयोपशम लŸध होती है।

2. प्रथम लŸध के कारण साता आदि शुभ प्रकृतियों के बन्ध योग्य शुभ परिणाम होना विशुद्धि लŸध है।

3. छ: द्रव्य और नौ पदार्थ के उपदेश का नाम देशना है। किसी आचार्य आदि के द्वारा ऐसी देशना के ग्रहण, धारण तथा विचारण को देशना लŸध कहते हैं।

4. कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति को घात करके अन्त:कोडाकोडी सागर तथा पाप कर्मों के उत्कृष्ट अनुभाग को घात

What does this mean?

करके द्विस्थानीय रूप परिणमन करना प्रायोग्यलŽिध है। अन्त: कोडाकोडी सागर का अर्थ होता है–एक करोड़ सागर से ज्यादा तथा एक कोडाकोडी सागर से कम।

5. जिन परिणामों के होने पर नियम से स य€त्व होता है उनको करणलŽिध कहते हैं।

पहली चार लŽिधयाँ तो भव्य तथा अभव्य दोनों के होती हैं जबकि करणलŽिध सातिशय मिथ्यादृष्टि जीवों के ही होती है जो भव्य होता है, अभव्य नहीं।

प्रश्न चतुर्थ गुणस्थान का जघन्यकाल कितना है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 115)*

उ ार– चतुर्थ गुणस्थान का जघन्यकाल क्षुद्र भव से कम (निगोदिया जीव का एक भव) अर्थात् 1/24 सैकण्ड से भी कम होता है।

प्रश्न चतुर्थ गुणस्थान से आगे चारित्र में विशुद्धि होती है या स य€त्व में भी होती है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 117)*

उžार– चतुर्थ गुणस्थान के बाद चारित्र प्रार भ हो जाता है, अत: जैसे–जैसे गुणस्थान बढ़ता जाता है वैसे–वैसे चारित्र में विशुद्धि बढ़ती जाती है। स य€त्व में विशुद्धि हो भी सकती है और नहीं भी।

प्रश्न €या चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव के प्रतिसमय निर्जरा होती है ? पञ्चाध्यायी ग्रन्थ में तो चतुर्थ गुणस्थानवर्ती के प्रतिसमय निर्जरा कही है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 117)*

उ ार– पञ्चाध्यायी अनार्ष ग्रन्थ है। यह पंडित राजमल जी ने 17 वीं शताŽदी में लिखा था। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव के करणलŽिध में प्रार भ किये गये परिणाम जब तक वृद्धिरूप रहते हैं, तब तक दर्शनमोहनीय के अलावा अन्यकर्मों की असं यात गुणश्रेणी कर्मनिर्जरा होती है। उसके बाद जब मन्द परिणाम हो जाते हैं, विशुद्धि घटने लगती है तब असं यात गुणश्रेणी निर्जरा बन्द हो जाती है। इस जीव के पूजा, जप, स्वाध्याय आदि काल में कभी–कभी निर्जरा हो सकती है परन्तु प्रतिसमय नहीं होती।

प्रश्न क्षायिक स यग्दर्शन, क्षायोपशमिक स यग्दर्शन तथा द्वितीयोपशम स यग्दर्शन किन गुणस्थानों में उत्पन्न होते हैं ?

उ ार– क्षायिक स यग्दर्शन और द्वितीयोपशम स यग्दर्शन 4 से 7 गुणस्थानवर्ती किसी भी क्षायोपशमिक स यग्दृष्टि के उत्पन्न होते हैं। क्षायोपशमिक स यग्दर्शन भी इन्हीं चार गुणस्थानों में उत्पन्न होता है।

प्रश्न स्तिवुक संक्रमण किसे कहते हैं ?

उ ार– उदय में आने से पूर्व, उदय में आने वाली प्रकृति का अन्य सजातीय प्रकृति रूप संक्रमित होकर उदय में आना स्तिवुक संक्रमण कहलाता है। जैसे– हमारे उदयावली में चारों गति हैं, उसमें से मनुष्यगति का स्वमुख व तीन शेष गतियों का स्तिवुक संक्रमण होकर मनुष्य गतिरूप ही उदय में आ रहा है।

प्रश्न अविरत स यग्दृष्टि जीव पञ्चेन्द्रियों के विषय भोग करता है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 119)

उ□ ार- उसके संवेग गुण प्रकट हो जाने से उसको संसार में या संसार के विषयों में आनन्द नहीं आता है। वह अनासक्त होकर विषयों का सेवन करता है अर्थात् उसे करने की इच्छा नहीं होती परन्तु पञ्चेन्द्रिय विषयों का उपभोग करना पड़ता है। जैसे- हम दवाई पीना नहीं चाहते परन्तु रोग होने पर पीनी पड़ती है।

प्रश्न असंयत स यग्दृष्टि जीव के लिए पुण्य हेय है या उपादेय ? आजकल कुछ लोग पाप व पुण्य दोनों को हेय बताने लगे हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 120)*

उ□ ार- शुद्धोपयोगी मुनिराजों के लिए पुण्य और पाप दोनों हेय हैं परन्तु शुभोपयोगी मुनि अथवा गृहस्थों के लिए पुण्य उपादेय है और पाप हेय। उसे शुद्धोपयोग तो होना नहीं है। यदि वह शुभोपयोग को भी हेय मानेगा तो फिर €या करेगा ? आचार्यों ने स यग्दृष्टि के पुण्य को मोक्ष का कारण कहा है अत: असंयत स यग्दृष्टि को पुण्यरूप परिणाम उपादेय है परन्तु वह पुण्य अर्थात् शुभोपयोग से मोक्ष नहीं मानता है। मोक्ष तो शुद्धोपयोग से ही मानता है।

प्रश्न प्रथमोपशम और द्वितीयोपशम स य€त्व में €या अन्तर है ?

उ□ ार- मिथ्यादृष्टि जीव को जो उपशम स य€त्व प्राप्त होता है वह प्रथमोपशम स य€त्व कहलाता है। क्षायोपशमिक स यग्दृष्टि जीव को उपशम श्रेणी चढ़ने से पूर्व 4-7 गुणस्थान तक जो उपशम स य€त्व प्राप्त होता है वह द्वितीयोपशम स य€त्व कहलाता है।

प्रश्न कुछ स्वाध्यायी जन चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धोपयोग मानते हैं, उनका ऐसा मानना आगम स मत है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 122)*

उ□ ार- तीव्र कषायरूप परिणाम को अशुभोपयोग, मन्दकषायरूप परिणाम को शुभोपयोग तथा कषायरहित परिणाम को शुद्धोपयोग कहते हैं। चतुर्थ गुणस्थान में अप्रत्या यानावरण कषाय का उदय होता है अत: उसके स य€त्व होने के कारण शुभोपयोग है परन्तु कषायों के उदय के कारण शुद्धोपयोग नहीं है।

किसी भी आचार्य ने चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धोपयोग नहीं कहा। बृहद्द्रव्यसंग्रह गाथा 34 की टीका में, प्रवचनसार की गाथा 9 व 181 की टीका में आचार्य जयसेन महाराज ने प्रथम, द्वितीय व तृतीय गुणस्थान में घटता हुआ अशुभोपयोग; चतुर्थ, पञ्चम व छठवें गुणस्थान में बढ़ता हुआ शुभोपयोग; सात से बारहवें गुणस्थान तक शुद्धोपयोग कहा है। यही मान्यता आगम स मत है।

प्रश्न द्रव्यानुयोग एवं करणानुयोग के अनुसार शुद्धोपयोग के गुणस्थानों में अन्तर है या नहीं ?

उ□ ार- उपर्युक्त द्रव्यानुयोग के शास्त्रों के प्रमाणों के अनुसार सात से बारहवें गुणस्थान तक शुद्धोपयोग होता है। द्रव्यानुयोग स्थूल वर्णन करता है। करणानुयोग के अनुसार कषायों का अभाव होने पर ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थानों में शुद्धोपयोग होता है। इससे आगे शुद्धोपयोग का फल है €योंकि करणानुयोग सूक्ष्म वर्णन करता है।

प्रश्न तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में शुद्धोपयोग नहीं कहा, उसका फल कहा है। 13-14 वें गुणस्थान में शुद्धोपयोग €यों नहीं माना ?

उ॰ र- जहाँ कषाय रहित होकर आत्मा में लीन हुआ जाता है उसे शुद्धोपयोग कहते हैं। तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान में आत्मा का ध्यान नहीं किया जाता इसलिए वहाँ शुद्धोपयोग नहीं है, शुद्धोपयोग के फलरूप केवलज्ञान है।

प्रश्न असंयत अवस्था का उत्कृष्ट अन्तर कितना है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 122)*

उ॰ र- असंयत का उत्कृष्ट अन्तर संयम या संयमासंयम धारण करने से आता है। कोई जीव अधिक से अधिक 8 वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटि काल तक संयमासंयमी या संयमी रह सकता है। अत: उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्व कोटि प्रमाण मानना चाहिये।

प्रश्न चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सुखी है या दु:खी ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 124)*

उ॰ र- चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव इन्द्रिय के विषयों से तथा हिंसादि पाँच पापों से विरक्त नहीं है। सांसारिक कार्यों में लगा हुआ है। उसके वैराग्य व स्वरूप में रमणता (शुद्धोपयोग) संभव नहीं। इसलिए वह सुखी कैसे हो सकता है ? उसके कर्म निर्जरा भी नहीं है। सांसारिक सुखों का पाने वाला सुखी नहीं कहलाता, अतीन्द्रिय सुख को प्राप्त करने वाला सुखी होता है।

प्रश्न अविरत स यग्दृष्टि जीव तथा मिथ्यादृष्टि जीव के सं€लेश परिणामों में €या अन्तर होता है ?

उ॰ र- श्री धवला पुस्तक 11 के अनुसार अविरत स यग्दृष्टि के तीव्र सं€लेश नहीं होता इसीलिए उसके जो भी कर्म बन्ध होता है उसकी स्थिति अन्त:कोडाकोडी सागर से अधिक नहीं होती जबकि मिथ्यादृष्टि जीव के तीव्र सं€लेश के कारण कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति का बन्ध होता है। मिथ्यादृष्टि जीव का जघन्य सं€लेश भी अविरत स यग्दृष्टि के उत्कृष्ट सं€लेश से असं यातगुणा होता है। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती का जघन्य सं€लेश भी पञ्चम गुणस्थानवर्ती के उत्कृष्ट सं€लेश से अनन्तगुणा होता है। इसी प्रकार पञ्चम गुणस्थानवर्ती का जघन्य सं€लेश भी छठे गुणस्थानवर्ती के उत्कृष्ट सं€लेश से अनन्त गुणा होता है।

प्रश्न चतुर्थ गुणस्थान में सुनते हैं कि अनन्तानुबन्धी कषाय के अभाव होने से स्वरूपाचरण चारित्र प्रकट होता है, फिर उसे चारित्र से रहित €यों कहा जाता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 128)*

उ॰ र- स्वरूपाचरण चारित्र का वर्णन किसी भी आचार्य ने बारहवीं शताŽदी तक के ग्रन्थ में नहीं किया है। यह शŽद आचार्य प्रणीत शास्त्रों में नहीं है, यह शŽद तो पञ्चाध्यायीकार पाण्डेय राजमलजी का कथन है।

यदि इसकी परिभाषा बनायें तो स्वरूप में आचरण करना स्वरूपाचरण चारित्र है। जो शुद्धोपयोग के साथ ही होता है। इसलिए चतुर्थ गुणस्थान में यह कदापि संभव नहीं है।

यदि अनन्तानुबन्धी के उपशम आदि से चारित्र प्रकट होना कहते हो तो भी गलत है, €योंकि

अनन्तानुबन्धी किसी चारित्र का घात नहीं करती है। वह तो चारित्र का घात करने वाली अप्रत्या यानावरण आदि कषायों के प्रवाह को अनन्तरूप बनाये रखती है। चारित्र का घात करने वाली तो अप्रत्या यानावरण आदि कषायें हैं।

यदि अनन्तानुबन्धी कषाय के अनुदय या उपशम से स्वरूपाचरण चारित्र मान लिया जाए तो तृतीय गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय नहीं है। अत: वहाँ भी स्वरूपाचरण चारित्र मानना होगा। एवं प्रथम गुणस्थान में गिरने वाले जिन जीवों के एक आवली काल तक अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय नहीं होता उनके भी स्वरूपाचरण चारित्र मानना होगा जो कि आगम से विपरीत मान्यता है।

प्रश्न चतुर्थ गुणस्थानवर्ती यदि व्रतों को धारण न करे और तपस्या करे तो उसकी तपस्या कार्यकारी है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 128)*

उ□ार- तप धारण करने का फल कर्म निर्जरा है परन्तु व्रत धारण किये बिना तपस्या निर्जरा का कारण नहीं है। इसलिए चतुर्थ गुणस्थानवर्ती का तप करना शुभोपयोग तो है परन्तु विशेष फलदायी नहीं।

प्रश्न यदि नरकायु, तिर्यञ्चायु अथवा मनुष्यायु का बन्ध हो गया हो तो अणुव्रत या महाव्रत धारण कर सकते हैं या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 131)*

उ□ार- श्री धवला पुस्तक 1 के अनुसार जिस जीव ने उपर्युक्त तीन आयु में से यदि किसी भी आयु का बन्ध कर लिया है, तो उसके अणुव्रत या महाव्रत धारण करने के विचार ही नहीं होते हैं। जैसे- राजा श्रेणिक ने गौतम गणधर से प्रश्न किया- मेरे व्रत लेने के भाव €यों नहीं होते ? गौतमस्वामी ने उ□ार दिया- तु हारे नरकायु का बन्ध हो चुका है। अत: व्रत धारण करने के भाव हो ही नहीं सकते हैं।

प्रश्न चतुर्थगुणस्थानवर्ती क्षायिक स यग्दृष्टि जीव हो तथा अन्य कोई क्षायोपशमिक स यग्दृष्टि पञ्चम गुणस्थानवर्ती जीव हो, तो किसके बन्ध कम होगा, किसके निर्जरा ज्यादा होगी ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 131)*

उ□ार- पंचम गुणस्थान में देशचारित्र होने के कारण प्रतिसमय असं यातगुणी निर्जरा होती है €योंकि निर्जरा का मु य कारण व्रत है। चतुर्थगुणस्थानवर्ती क्षायिकस यग्दृष्टि के प्रतिसमय निर्जरा नहीं होती €योंकि वह अव्रती है। पञ्चम गुणस्थानवर्ती के आस्रव बन्ध भी कम होता है और दो कषायों (अनन्तानुबन्धी व अप्रत्या यानावरण) का अनुदय होने से स्थिति अनुभाग भी कम पड़ता है। जबकि चतुर्थ गुणस्थानवर्ती क्षायिक स यग्दृष्टि के आस्रव बन्ध ज्यादा होता है तथा स्थिति-अनुभाग भी अधिक पड़ता है। मोक्षमार्ग प्रकाशक में भी ऐसा ही कथन है।

प्रश्न पञ्चम गुणस्थान में कौनसा चारित्र होता है ?

उ□ार- चारित्र के तीन भेद हैं-

औपशमिक चारित्र	8 से 11 गुणस्थान तक
क्षायोपशमिक चारित्र	6 से 7 गुणस्थान तक

क्षायिक चारित्र 8 वें गुणस्थान से सिद्धावस्था तक

अत: उपर्युक्त व्या यानुसार पञ्चम गुणस्थान में संयमासंयम है। कोई चारित्र नहीं है। इसलिए पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने तŽवार्थ सूत्र के प्रथम सूत्र का प्रवचन करते हुए क्षुल्लक व ऐलक को संयमासंयम होने के कारण मोक्षमार्गी नहीं मानते हैं, जो आगम स मत है।

प्रश्न संज्वलन कषाय के देशघाती स्पर्धकों के उदय से तो सकलसंयम हो जाना चाहिये, फिर वह यों नहीं हुआ ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 132)*

उ ार- आपका कहना ठीक है परन्तु संज्वलन के देशघाती स्पर्धकों का उदय होने से उत्पन्न होने वाले सकल संयम का प्रत्या यानावरण कषाय के उदय द्वारा घात कर दिया जाता है। अत: सकलसंयम उत्पन्न नहीं हो पाता परन्तु क्षायोपशमिक भाव घटित हो जाता है।

प्रश्न छठवें-सातवें गुणस्थान में असातावेदनीय की उदय और उदीरणा होती है या नहीं ? यदि होती है तो उन्हें दु:ख का अनुभव भी होता होगा ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 133)*

उ ार- असातावेदनीय की उदय-उदीरणा छठवें गुणस्थान तक होती है। सातवें गुणस्थान में असातावेदनीय की उदीरणा नहीं होती और सातवें एवं ऊपर के गुणस्थानों में ध्यान अवस्था रहती है, इन्द्रिय जनित सुख-दु:ख का बुद्धिपूर्वक वेदन नहीं होता। अत: वहाँ दु:खानुभव नहीं है।

प्रश्न शास्त्रों में स्त्री के षष्ठम् गुणस्थान बताया है। वह कैसे ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 134)*

उ ार- द्रव्यस्त्री के पाँचवा गुणस्थान तक हो सकता है, इससे ऊपर नहीं। परन्तु जो शरीर से तो पुरुष हो अर्थात् द्रव्य से पुरुष और स्त्रीवेद का उदय होने से भाव से स्त्री हो उनके ऊपर के सभी गुणस्थान हो सकते हैं। अत: स्त्री का छठा गुणस्थान, ावस्त्रीवेद वाले पुरुष की अपेक्षा कहा गया है।

प्रश्न €या कोई मुनिराज छठवें गुणस्थान में ही रह सकते हैं, उनके सातवाँ गुणस्थान हो ही नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 134)*

उ ार- मुनियों के संज्वलन का तीव्र व मन्द उदय घड़ी के दोलन की तरह बदलता रहता है। स्थूलरूप से छठे और सातवें गुणस्थान का उत्कृष्ट काल शास्त्रों में अन्तर्मुहूर्त बताया है। मु तार ग्रन्थ में गणित के अनुसार छठे गुणस्थान का काल तीन सैकण्ड से साठ सैकण्ड के बीच कहा गया है। अत: अन्तर्मुहूर्त से अधिक कोई भी मुनिराज छठे या सातवें गुणस्थान में नहीं रह सकते। मुनियों के रात्रि के विश्राम काल में भी छठा और सातवाँ गुणस्थान निरन्तर होता रहता है।

प्रश्न कोई जीव अधिक से अधिक कितने समय तक सो सकता है या कितने समय तक जाग्रत रह सकता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 135)*

उ ार- निद्रा दर्शनावरण कर्म का उदय अन्तर्मुहूर्त से ज्यादा नहीं रह सकता और अनुदय भी अन्तर्मुहूर्त से ज्यादा

नहीं रह सकता अर्थात् कोई भी जीव अन्तर्मुहूर्त से ज्यादा न तो सो सकता है और न ही जागृत रह सकता है।

अन्तर्मुहूर्त के बाद उसको एक समय के लिए निद्रा का उदय अवश्य आयेगा ही, परन्तु उसका अनुभव नहीं होगा, इसलिए हमें लगेगा कि वे घण्टों से जाग रहे हैं। परन्तु उस काल के बीच में निद्रा का उदय आना, हर अन्तर्मुहूर्त के बाद नियामक है।

प्रश्न दिग बर मुद्रा धारण किये बिना सप्तम् गुणस्थान हो सकता है या नहीं?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 137)

उ ार- यदि वस्त्र है तो संयम होगा ही नहीं। सातवें गुणस्थान वाला पहले द्रव्य से निर्ग्रन्थ होता है, बाद में भाव से निर्ग्रन्थ होकर अर्थात् तीन कषाय का अनुदय होने पर सप्तम गुणस्थान में आता है। अत: वस्त्र उतारे बिना सप्तम गुणस्थान संभव नहीं। जो जीव पहले गुणस्थान से सीधे सातवें गुणस्थान में आते हैं उनके द्रव्य मुनि अवस्था तो पहले से थी परन्तु भाव नहीं थे। भावों से निर्ग्रन्थ होते ही सप्तम गुणस्थान बन जाता है।

प्रश्न पूरे संसार काल में कोई जीव भावलिङ्गी साधु कितनी बार बन सकता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 139)

उ ार- छहढाला की ***'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो'*** इस पङ्क्ति के अनुसार द्रव्यलिङ्गी साधुपना तो अनन्तबार प्राप्त कर सकता है योंकि बिना मुनि मुद्रा धारे ग्रैवेयकों में जाना संभव नहीं, परन्तु भावलिङ्गी साधु अवस्था मात्र बŽीस बार धारण की जा सकती है। वह बŽीसवीं बार में नियम से मोक्ष प्राप्त करता है।

प्रश्न क्षपक और उपशमक की विशुद्धि में कुछ अन्तर होता है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 139)

उ ार- तŽवार्थसूत्र अध्याय नौ में **'स यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्तमोह-क्षपकक्षीणमोह-जिना: क्रमशोऽसं येयगुणनिर्जरा:।'** सूत्रानुसार निर्जरा के दस स्थान कहे हैं जिनमें उŽारोŽार अधिक विशुद्धि होने के कारण असं यात गुणी निर्जरा होती है।

1 करणलŽिध वाले मिथ्यादृष्टि से उपशम स यग्दृष्टि की।
2 इससे ज्यादा पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक की, यह प्रतिसमय होती ही है।
3 इससे षष्ठम् सप्तम गुणस्थानवर्ती मुनिराज की प्रतिसमय असं यात गुणी।
4 इससे अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना करने वाले चतुर्थ से सप्तम गुणस्थानवर्ती की।
5 दर्शन मोह की क्षपणा करने वाले चतुर्थ से सप्तम गुणस्थान तक के जीव की।
6 उपशमक आठ, नौ, दसवें गुणस्थान वाले उपशमश्रेणी में स्थित मुनिराज की।
7 ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती उपशान्तमोही मुनिराज की।
8 आठ,नौ व दसवें गुणस्थानवर्ती क्षपकश्रेणी में स्थित मुनिराज की।
9 क्षीणमोह अर्थात् बारहवें गुणस्थानवर्ती क्षपकश्रेणी स्थित मुनिराज की।

10 तेरहवें गुणस्थानवर्ती अरहन्त परमेष्ठी की।
इन सबकी आगे–आगे असं यात गुणी निर्जरा होती है €योंकि उŽारोŽार भावों की विशुद्धि अत्यधिक होती जाती है।

प्रश्न इस सारणी के अनुसार ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती मुनि से आठवें गुणस्थानवर्ती क्षपक की निर्जरा असं यातगुणी €यों ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 139)*

उ ार– उपशान्त मोह मुनि का चारित्र श्रेष्ठ है अर्थात् संयमलŽध स्थान अधिक है परन्तु आठवें गुणस्थानवर्ती क्षपक का विशुद्धिल ध स्थान अधिक होने से उसकी निर्जरा ज्यादा है।

प्रश्न आठवें गुणस्थान में किसी भी कर्मप्रकृति का क्षय नहीं, फिर वहाँ अंस यातगुणी निर्जरा कैसे संभव है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 140)*

उ ार– आठवें गुणस्थान में प्रतिसमय असं यात गुणी बढ़ती हुई निर्जरा है परन्तु किसी भी कर्मप्रकृति का संपूर्ण रूप से क्षय नहीं होता है। इसलिए निर्जरा होते हुए भी क्षय नहीं कहा।

प्रश्न क्षपक श्रेणी और उपशम श्रेणी के काल में €या अन्तर है ?

उ ार– श्री धवला पुस्तक 5 के अनुसार उपशमक काल से क्षपक का काल दुगना कहा गया है। यद्यपि दोनों का काल प्रत्येक गुणस्थान में अन्तर्मुहूर्त है फिर भी विवक्षित गुणस्थान में उपशमक को जितना काल लगता है उससे दुगना काल क्षपक का कहा गया है।

प्रश्न चारित्र मोहनीय की 21 प्रकृतियों के उपशम से होने वाला औपशमिक चारित्र ग्यारहवें गुणस्थान में प्रकट होता है। फिर आठ, नौ व दसवें गुणस्थान में औपशमिक चारित्र €यों कहा गया ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 140)*

उ ार– भावी अर्थ में भूतकालीन अर्थ के समान उपचार कर लेने से आठवें गुणस्थान वाले को औपशमिक चारित्र कहा गया है अर्थात् आठवें गुणस्थान में प्रवेश करने वाला उपशम श्रेणी का जीव नियम से ग्यारहवें गुणस्थान को प्राप्त करता ही है (यदि मरण न हो तो)। इस अपेक्षा से उसे औपशमिक चारित्री कहा गया है।

प्रश्न अनन्तानुबन्धी आदि कषायों के साथ नोकषायें नष्ट यों नहीं हो जाती हैं ? ये तो किञ्चित् कषायें हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 141)*

उ ार– जिन विशुद्ध परिणामों से मिथ्यात्व व अनन्तानुबन्धी कषाय का नाश होता है उससे अनन्तगुणे विशुद्ध परिणामों से अप्रत्या यानावरण और प्रत्या यानावरण कषायों का नाश होता है और उससे भी अनन्तगुणे विशुद्ध परिणामों से नव नोकषायों का नाश होता है। उससे भी अनन्तगुणे विशुद्ध परिणामों से क्रमश: संज्वलन क्रोध,

मान, माया व लोभ का नाश होता है। यद्यपि संज्वलन और नव नोकषाय देशघाती हैं परन्तु इनमें बहुत शक्ति है जिससे ये यथा यात चारित्र का घात करती हैं। इसलिए इनका घात करने के लिए अतिविशुद्ध परिणामों की आवश्यकता होती है।

प्रश्न ग्यारहवें गुणस्थान से गिरने के €या कारण हैं ?

उ ार- ग्यारहवें गुणस्थान से गिरने के दो कारण हैं। 1. भवक्षय 2. कालक्षय।

1. **भवक्षय**- मनुष्यभव का क्षय होने पर यह जीव नियम से चतुर्थगुणस्थान में गिरता है और वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है।

2. **कालक्षय**- ग्यारहवें गुणस्थान का अन्तर्मुहूर्त काल पूर्ण होने पर नियम से दसवें गुणस्थान को प्राप्त होता है।

प्रश्न अभिन्नदशपूर्वी मिथ्यात्व में जाते हैं या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 102)*

उ ार- क्रम से दशपूर्वों का अध्ययन करने पर समस्त विद्यायें उपस्थित होकर कहती हैं- हे स्वामिन्! हमें स्वीकार कीजिये।

मुनिराज यदि उनको स्वीकार कर लेते हैं तो भिन्नदशपूर्वी कहलाते हैं और मिथ्यात्व गुणस्थान में आ जाते हैं। यदि स्वीकार नहीं करते हैं तो अभिन्नदशपूर्वी कहलाते हैं। ऐसे मुनिराज कभी मिथ्यात्व में नहीं जाते हैं।

प्रश्न उपशमश्रेणी चढ़ने वाले क्षायिक स यग्दृष्टि मुनिराज मरण करके असंयमरूप चतुर्थ गुणस्थान में जा सकते हैं या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 102)*

उ ार- ऐसे मुनिराज मरण होने पर नियम से अविरत स य€त्व नामक चौथे गुणस्थान में आते हैं, यदि मरण न करें और नीचे गिरे तो भी श्री जयधवलाजी 10/121 के अनुसार चतुर्थ गुणस्थान तक आ सकते हैं।

प्रश्न उपशांतमोह गुणस्थान से सासादन गुणस्थान में आना संभव है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 102)*

उ ार- श्री षट्खण्डागमजी के अनुसार ग्यारहवें गुणस्थान से गिरकर दूसरे गुणस्थान में आना संभव नहीं है, परन्तु श्री जयधवला जी के अनुसार दूसरे गुणस्थान को प्राप्त कर सकते हैं, अत: इस स बन्ध में आचार्यों के दो मत प्रतिपादित होते हैं।

प्रश्न ग्यारहवें गुणस्थान से गिरा हुआ जीव कितने काल तक संसार भ्रमण कर सकता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 144)*

उ ार- ऐसा जीव उत्कृष्ट से कुछ कम अर्धपुद्गलपरावर्तन काल तक भ्रमण कर सकता है।

प्रश्न प्रार भ के दोनों शु€लध्यान किन-किन गुणस्थानों में होते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 145)*

उ□ ार- इस स बन्ध में आचार्यों के दो मत हैं।

अधिकांश आचार्य 8, 9, 10, 11वें गुणस्थान में पहला शु€लध्यान (पृथ€त्ववितर्कविचार) तथा बारहवें गुणस्थान में द्वितीय शु€लध्यान (एकत्ववितर्कअवीचार) मानते हैं।

आचार्य वीरसेन स्वामी दसवें गुणस्थान तक ध र्यध्यान, ग्यारहवें गुणस्थान और बारहवें गुणस्थान में पहला तथा दूसरा शु€लध्यान दोनों गुणस्थानों में मानते हैं। उनके कथनानुसार उपशमश्रेणी वाले ग्यारहवें गुणस्थान में दोनों शु€लध्यान होते हैं। €योंकि आचार्यों ने सूक्ष्मक्रिया के साथ अप्रतिपाति विशेषण जोड़ा है जो यह बता रहा है कि पहले दोनों शु€लध्यान प्रतिपाति हैं। यदि हम एकत्ववितर्क को मात्र बारहवें गुणस्थान में मानेंगे तो वह प्रतिपाति कैसे बनेगा ? €योंकि बारहवें गुणस्थान वाले तो नीचे गिरते ही नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि दूसरा शु€लध्यान प्रतिपाति भी है, इसी कारण ग्यारहवें गुणस्थान में भी होता है।

यदि हम प्रथम शु€लध्यान को मात्र ग्यारहवें गुणस्थान में ही मानें तो फिर वीरसेन स्वामी के अनुसार क्षपकश्रेणी चढ़ने वाले मुनिराजों के दसवें गुणस्थान तक तो धर्मध्यान होगा तो फिर प्रथम शु€लध्यान कब होगा। इससे यह सिद्ध हो रहा है कि प्रथम शु€लध्यान बारहवें गुणस्थान में भी होता है। अत: प्रार भ के दोनों शु€लध्यान ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थान में सिद्ध होते हैं।

प्रश्न बारहवें गुणस्थान में निद्रा का उदय होता है तो उस काल में ध्यान कैसे रह सकेगा ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 146)

उ□ ार- जैसे मुनियों के वेद का उदय तो है परन्तु मन्द उदय होने से उसका अनुभव नहीं होता उसी प्रकार बारहवें गुणस्थान में निद्रा का उदय तो है परन्तु अत्यन्त मन्द उदय होने से तथा अतिअल्पकाल होने से वह ध्यान में बाधक नहीं होता है। निद्रा के उदय का जघन्यकाल एक समय माना गया है।

प्रश्न बारहवें गुणस्थान में कितना श्रुतज्ञान कहा गया है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 147)*

उ□ ार- सर्वार्थसिद्धि टीका में बारहवें गुणस्थान के लिए उत्कृष्ट श्रुतज्ञान द्वादशांग का ज्ञान कहा गया है और जघन्यश्रुत अष्टप्रवचनमातृका अर्थात् पाँच समिति और तीन गुप्ति का ज्ञान होना कहा गया है।

प्रश्न बारहवें गुणस्थान के अन्त में ज्ञानवरणी, दर्शनावरणी और अन्तराय इन तीनों का एक साथ क्षय होता है तो इन तीनों कर्मों की समान स्थिति किस गुणस्थान में होती है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 147)

उ□ ार- सूक्ष्मसा पराय नामक दसवें गुणस्थान के अन्त समय में तीन घातिया कर्मों की स्थिति अन्तर्मुहूर्त रह जाती है किन्तु यह अन्तर्मुहूर्त बारहवें गुणस्थान के काल से अंस यात गुणा होता है।

फिर धीरे धीरे इन तीनों की स्थिति और कम करते हुए बारहवें गुणस्थान के अन्तिम समय में तीनों घातिया कर्मों का नाश हो जाता है।

प्रश्न रत्नत्रय की एकता को मोक्षमार्ग कहा है तो तेरहवें गुणस्थान में रत्नत्रय की पूर्णता हो जाने पर भी आत्मा को मोक्ष €यों नहीं होता ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 148)*

उ ार– बाधक कारण उपस्थित होने पर कार्य की सिद्धि नहीं होती है। अभी आयुकर्म तथा तीन अघातिया कर्म शेष हैं। आयु कर्म की तो निर्जरा होती नहीं, अन्य तीन अघातिया कर्मों की निश्चय से निर्जरा करने वाली जीव की शक्ति विशेष है। उसकी स्थिति को केवली समुद्घात तथा तीसरे शु लध्यान द्वारा आयु कर्म के बराबर करके, मोक्ष प्राप्ति में साक्षात् कारण चौथे शु€लध्यान के द्वारा केवली को मोक्ष प्राप्त होता है, ये उसके साधक कारण हैं। जब तक इनका सद्भाव न हो तब तक मोक्ष कैसे हो ?

प्रश्न केवली के ज्ञान में नित्य, अनित्य, कालमरण, अकालमरण आदि का ज्ञान होता है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 151)*

उ ार– नित्य–अनित्य आदि निश्चयनय और व्यवहारनय के विकल्प हैं। समस्त नयों के विषय श्रुतज्ञान के विकल्प हैं। केवली भगवान् के श्रुतज्ञान नहीं होता इसलिए श्रुत के विकल्परूप नय भी उनके नहीं होते। उनकी दिव्यध्वनि भी प्रमाणरूप उपदेश देती है, नयरूप नहीं। उसको सुनकर चार ज्ञान के धारी गणधर देव भव्य जीवों के स बोधनार्थ द्वादशांग की रचना करते हैं जो श्रुतज्ञानरूप है।

केवली के ज्ञान में हल्का, भारी, छोटा–बड़ा या पहले या बाद में ऐसा ज्ञान नहीं होता योंकि ये श्रुतज्ञान के विकल्प हैं।

प्रश्न केवली भगवान् सर्वज्ञ हैं या आत्मज्ञ ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 151)*

उ ार– निश्चयनय से तो केवली अपनी आत्मा को जानते हैं परन्तु व्यवहार नय से समस्त अन्य ज्ञेय पदार्थों को जानते और देखते हैं अर्थात् केवली में सर्वज्ञपना व्यवहारनय से और आत्मज्ञपना निश्चयनय से है। जो एकान्त मतवाले व्यवहारनय को झूठा मानते हैं, उनके मत से सर्वज्ञता का विरोध हो जायेगा योंकि सर्वज्ञपना तो व्यवहार नय से है और फिर वह सर्वज्ञ को मानने वाले कैसे कहे जा सकते हैं ?

प्रश्न अरहन्त भगवान् के द्रव्य–गुण और पर्याय समझाएँ। *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 152)*

उ ार– अरिहन्त भगवान् के केवलज्ञान, केवलदर्शन विशेष गुण हैं। अस्तिž व आदि सामान्य गुण हैं। परमौदारिक शरीर के आकार रूप से आत्म प्रदेशों का रहना द्रव्य व्यञ्जन पर्याय है। अगुरुलघुत्व गुण के द्वारा षट्गुणी हानि वृद्धिरूप जो प्रतिसमय परिणमन होता है वह शुद्ध अर्थ पर्याय है। उपर्युक्त गुण और पर्यायों के आधारभूत जो अमूर्त असं यात प्रदेश हैं, वे द्रव्य पर्याय हैं।

प्रश्न केवली भगवान् किसी का अपकार या उपकार करते हैं या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 152)*

उ ार– केवली भगवान् स्वयं न तो किसी को दु:ख देते हैं और न ही सुख देते हैं परन्तु उनकी वन्दना, पूजा करने वाले, उनके बताये मोक्षमार्ग पर चलने वाले मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं और जो उनकी निन्दा आदि के द्वारा पाप बन्ध करते हैं उनको स्वयमेव ही नरक, निगोद आदि के दु:ख प्राप्त होते हैं।

प्रश्न केवली भगवान् के विहार करने की, उपदेश देने की, खड़े होने या बैठने की इच्छा होती है या नहीं ? यदि नहीं तो □ यों ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 154)*

उ□ ार– केवली भगवान् के मोह नष्ट हो जाने से इच्छा नहीं होती। प्रवचनसार की गाथा 44 के अनुसार अरिहन्तों का खड़ा होना, बैठना, विहार करना और धर्मोपदेश देना औदयिकी क्रिया है अर्थात् कर्मोदय से स्वयं होती है। अरिहन्त प्रभु इनको इच्छा से नहीं करते।

प्रश्न केवली भगवान् के भावमन तो है नहीं, फिर मनोयोग कैसे माना जाये ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 157)*

उ□ ार– नोइन्द्रियावरण कर्म तथा वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से होने वाला भाव मन केवली के नहीं होता, □ योंकि इन दोनों कर्मों का क्षय हो चुका है। परन्तु अङ्गोपाङ्ग नामकर्म के उदय से बना हुआ द्रव्यमन केवली के होता है जिसके कारण मनोवर्गणाओं का ग्रहण होता है और उस ग्रहण के निमिžा से जो आत्मप्रदेशों में परिस्पन्दन होता है उसे मनोयोग कहते हैं।

प्रश्न तेरहवें गुणस्थान में ईर्यापथ आस्रव है तो उनके कषाय नहीं होने से बन्ध होता है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 158)*

उ□ ार– केवली भगवान् के तेरहवें गुणस्थान में योग होने के कारण कर्मों का आस्रव (ईर्यापथ) होता है। उनका सातावेदनीयरूप प्रकृति बन्ध और समयप्रबद्ध प्रमाण प्रदेशबन्ध होता है। अब प्रश्न यह रहता है कि स्थितिबन्ध और अनुभाग बन्ध कषाय से होते हैं और वहाँ कषाय है नहीं। तो फिर ये दोनों बन्ध कैसे ? इसका उ□ ार है कि जहाँ आस्रव होता है वहाँ चारों बन्ध होने का नियम है, इसलिए जितने कर्मों का आस्रव बन्ध होता है वे अगले समय में अपना फल देकर निर्जरित हो जाते हैं। इस प्रकार उनके स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध भी होते है।

प्रश्न अरिहन्त भगवान् के किन वर्गणाओं का ग्रहण होता है और कौन-कौन से योग होते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 160)*

उ□ ार– अरिहन्त भगवान् के उपर्युक्त कथनानुसार सत्य और अनुभय मनोयोग होता है, इसमें मनोवर्गणायें आती हैं। वचन वर्गणाओं का ग्रहण तथा उपदेश होने से सत्य एवं अनुभय वचनयोग होता है। परमौदारिक शरीर के योग्य सफेद रंग वाली, सुगन्धित, मधुर और मृदु नोकर्म वर्गणाओं का ग्रहण होने से आदारिक काय योग होता है। प्रतर और लोकपूरण समुद्घात में कार्मणकाययोग तथा प्रतिसमय कर्मवर्गणाओं का ग्रहण होता है। प्रतिसमय तैजस वर्गणाओं का ग्रहण होता ही रहता है। इस प्रकार केवली भगवान् के पाँचों प्रकार की वर्गणाओं का ग्रहण प्रतिसमय होता ही है। चौदहवें गुणस्थान में किसी भी वर्गणा का ग्रहण और योग नहीं होता इसी कारण वे अयोगकेवली कहलाते हैं।

प्रश्न तेरहवें गुणस्थान में असातावेदनीय का स्वमुख से उदय होता है या सातावेदनीयरूप संक्रमित होकर उदय में आती है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 163)*

उ ार- तेरहवें गुणस्थान में दोनों वेदनीय (साता और असाता)का निरन्तर उदय पाया जाता है, €यों कि साता वेदनीय तो प्रतिसमय उदय होकर निर्जरित हो ही रही हैं। परन्तु अत्यन्त अल्प अनुभाग वाली असाता वेदनीय का उदय भी स्वमुख से रहता है इसी उदय के कारण तž्वार्थ सूत्र में **'एकादश जिने'** केवली के ग्यारह परीषह कहे है। यदि असाता वेदनीय स्तिवुक संक्रमण द्वारा साता वेदनीय रूप उदय में आने का नियम होता तो निरन्तर साता का उदय रहने से ग्यारह परीषह नही माने जा सकते थे। अब प्रश्न यह है कि असाता के उदय में भगवान् को दु:ख होता है €या ? इसका उž्तर है कि अत्यन्त उत्कृष्ट अनु ााग वाली साता वेदनीय के साथ अत्यन्त क्षीण अनुभागवाली असाता वेदनीय, उदय में आने के बाद भी असत्व होने के कारण दु:ख देने में असमर्थ है, जैसे समुद्र में डाला हुआ एक बूंद विष। इसलिए उदय में आयी हुई असाता दु:ख देने में समर्थ नहीं रहती।

प्रश्न उपसर्ग केवली और अन्तकृत् केवली में या अन्तर है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 166)*

उ ार- जिन मुनियों पर उपसर्ग हुआ हो और बाद में केवलज्ञान हो गया हो वे उपसर्ग केवली हैं। जैसे- भगवान् पार्श्वनाथ, कुलभूषण मुनि, देशभूषण मुनि आदि।

जिन मुनियों पर शरीरघाती उपसर्ग हुआ हो, जिसके होने से शरीर का घात हो गया हो, उन्हें अन्तकृत् केवली कहते हैं। जैसे- गजकुमार, युधिष्ठिर, सुकौशल महाराज आदि।

प्रश्न सामान्य केवली की दिव्यध्वनि खिरती है या नहीं तथा उनके गणधर होते हैं या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 166)*

उ ार- सामान्य केवली (जैसे- बाहुबली, राम), मूक केवली तथा अन्तकृत् केवली, इनका समवसरण नहीं होता। मूककेवली और अन्तकृतकेवली की तो गन्धकुटी भी नहीं होती, सामान्यकेवली की गन्धकुटी होती है। उनका उपदेश भी होता है परन्तु गणधर नहीं होते हैं। उनके उपदेश को समझने वाले बुद्धि ऋद्धिधारी मुनिराज वहाँ रहते हैं। इनका उपदेश उस स्थान की भाषानुसार होता है। विहार आदि क्रियायें तथा इन्द्रादि के द्वारा वन्दना होती है। सामान्य केवली की सभा में स्थित सभी जीव प्रश्न पूछते हैं और उन्हें उ ार प्राप्त होता है जबकि तीर्थङ्कर केवली के समवसरण में प्रश्न पूछने का अधिकार मात्र गणधर, सौधर्म इन्द्र और चक्रवर्ती को ही होता है।

प्रश्न तीर्थङ्करों की दिव्यध्वनि एक दिन में कितनी बार और कब खिरती है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 172)*

उ ार- इस स बन्ध में आचार्यों के तीन मत पाये जाते हैं- (1 घड़ी = 24 मिनट)

1. 6-6 घड़ी चार बार खिरती है।
2. 6-6 घड़ी तीन बार खिरती है।
3. 9-9 घड़ी तीन बार खिरती है।

इसके अलावा चक्रवर्ती, सौधर्म इन्द्र तथा गणधर के प्रश्न होने पर अन्य समयों में कभी भी खिर सकती है। ये दिव्यध्वनि सूर्योदय, दोपहर, सूर्यास्त एवं मध्यरात्रि में खिरती है। विशेष यह है कि समवसरण में भगवान् के शरीर की प्रभा करोड़ों सूर्य और चन्द्रमा से भी अधिक होने के कारण रात्रि नहीं होती।

प्रश्न शरीरघाती उपसर्ग सहन करके जो केवली बनते हैं उनका शरीर बाद में वैसा ही रहता है या सुन्दर बन जाता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 167)*

उ ार- केवलज्ञान होने पर शरीर पर लगी हुई चोटों के निशान, वृद्धावस्था की झुर्रियाँ तथा गाल आदि के गड्ढे, ये सब ठीक हो जाते हैं, शरीर सुन्दर बन जाता है। परन्तु कोई हाथ-पैर आदि अङ्ग, नष्ट हो गये हों तो उनका पुन: निर्माण नहीं होता। ऐसे केवली अन्तकृत् केवली बनकर मोक्ष चले जाते हैं।

प्रश्न जिन अन्तकृत् केवली का अङ्ग, भङ्ग या नष्ट हो गया है उनकी आत्मा का आकार सिद्धालय में किस रूप रहता है ?

उ ार- पूज्य आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज एवं पं. माणिकचन्द्र जी कौन्देय के अनुसार तीर्थङ्करों पर शरीरघाती उपसर्ग हो ही नहीं सकता। वे योगनिरोध-काल में लगाये गये आसन के अनुसार ही सिद्धालय में विराजमान होते हैं परन्तु जिन पर शरीरघाती उपसर्ग हुआ हो और जो अन्तकृत् केवली बने हों, उनकी आत्मायें, उपसर्ग से पूर्व पद्मासन या खड्गासन में से जिस अवस्था में थीं उसी आसन से केवलज्ञान प्राप्त होते ही परिणमन कर जाती हैं और फिर उसी अवगाहना और आकार से सिद्धालय में विराजमान रहती हैं।

प्रश्न सामान्य केवली के केवलज्ञान या मोक्ष होने पर कोई उत्सव मनाया जाता है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 168)*

उ ार- कई शास्त्रों में सामान्य केवली के भी ज्ञान और मोक्ष कल्याणक होते हैं, ऐसा उल्ले ा पाया जाता है। तात्पर्य यह है कि सामान्य केवलियों के केवलज्ञान या मोक्ष होने पर स्थानीय देवों का हर्ष होना स्वाभाविक है और उन्हीं के द्वारा गन्धकुटी बनाना, देवकृत अतिशय आदि होना उसी का प्रतीक है। इनका मोक्षोत्सव भी देवों द्वारा मनाया जाता है पर उसका रूप तीर्थङ्करों की तरह बृहद् नहीं होता।

प्रश्न सयोगकेवली और अयोगकेवली को संसारी जीव माना जाये या मुक्त जीव माना जाये ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 168)*

उ ार- मोक्ष के दो भेद हैं- 1. द्रव्य मोक्ष 2. भाव मोक्ष।
सयोगकेवली को भावमोक्ष हो जाता है और द्रव्यमोक्ष 14 वें गुणस्थान के अन्त में होता है। इस अपेक्षा से इन दोनों को जीवनमुक्त भी कहा जाता है।
अभी इन दोनों के अघातिया कर्म हैं, आयु शेष है, गुणस्थान है अत: ये संसारी भी कहे जाते हैं।
श्लोकवार्तिक में सयोगकेवली को नोसंसारी कहा है अर्थात् ये किञ्चित् संसारी हैं योंकि अभी इनके आस्रव-बन्ध हो रहा है और अयोगकेवली को असंसारी कहा है योंकि उनके कर्म होने से संसारीपना है परन्तु आस्रव-बन्ध तथा योग न होने से वे असंसारी हैं।

प्रश्न तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का सžव रहता है और उनका क्षय किस प्रकार होता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 168)*

उ ार– अरिहन्त भगवान् के तेरहवें गुणस्थान में 148 प्रकृतियों में से 63 प्रकृतियों का नाश होने पर 85 प्रकृतियों की सžा होती है। तेरहवें गुणस्थान के अन्त में वेदनीय, नाम और गोत्र की स्थिति, समुद्घात तथा तृतीय शु लध्यान के द्वारा आयुकर्म के बराबर कर दी जाती है, परन्तु यहाँ किसी प्रकृति का क्षय नहीं होता है। चौदहवें गुणस्थान में चतुर्थ शु€लध्यान के द्वारा अन्त के समय से पहले समय में (उपान्त समय) 73 प्रकृतियों का क्षय होता है। शेष 12 प्रकृतियों का क्षय चौदहवें गुणस्थान के अन्त के समय में होता है और वे सिद्ध बन जाते हैं। सामान्य केवली के तीर्थङ्कर प्रकृति की स ा नहीं होती, अत: अन्तिम समय में ग्यारह प्रकृतियों का क्षय होता है जबकि तीर्थङ्करों के 12 प्रकृतियों का क्षय होता है। वे बारह प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं– कोई एक वेदनीय, मनुष्य गति, पञ्चेन्द्रिय, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यश:कीर्ति, तीर्थङ्कर, मनुष्यायु और उच्चगोत्र।

प्रश्न अयोगकेवली के शरीर होता है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 170)*

उ ार– सयोग केवली नामक तेरहवें गुणस्थान के अन्तिम समय में शरीर नामकर्म का उदय समाप्त हो जाने से, चौदहवें गुणस्थान में शरीर से स बन्ध नहीं रहता, परन्तु परमौदारिक शरीर का सžव तो रहता है। इसलिए उनके शरीर स बन्धी योग तो नहीं है परन्तु उनको अशरीरी नहीं कह सकते। जब तक आयुकर्म शेष है तब तक उस आत्मा को उस शरीर में रहना ही पड़ता है।

प्रश्न चौदहवें गुणस्थान में कितने भाव होते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 171)*

उ ार– तेरहवें गुणस्थान में चौदह भाव होते हैं। क्षायिक भाव 9, औदयिक भाव 3(मनुष्यगति, असिद्धत्व, शु€ललेश्या) तथा पारिणामिक भाव 2 (जीवत्व और भव्यत्व)। चौदहवें गुणस्थान में शु€ललेश्या न होने पर तेरह भाव रह जाते हैं।

प्रश्न मुक्त होने के बाद सिद्धों का निवास कहाँ होता है और उनकी उत्कृष्ट और जघन्य अवगाहना कितनी होती है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 174)*

उ ार– समस्त सिद्ध भगवान् लोक के अन्त में तनुवातवलय में निवास करते हैं। यह तनुवातवलय 1575 (बड़े प्रमाणाङ्गुल रूप) धनुष मोटा है। इसके 1500 वें भाग में उत्कृष्ट अवगाहना वाले सिद्ध भगवान् स्थित होते हैं। यह उत्कृष्ट अवगाहना 525 धनुष वाले सिद्ध परमेष्ठियों की है।

सिद्धों की जघन्य अवगाहना साढ़े तीन हाथ प्रमाण है। साढ़े तीन हाथ से कम की अवगाहना वाला जीव मोक्ष नहीं जाता है। सिद्धों के आसन के बारे में यह नियम है कि साढ़े तीन हाथ से सात हाथ तक की अवगाहना वाले जीव खड्गासन से ही मोक्ष जाते हैं। इससे बड़ी अवगाहना वाले पद्मासन या खड्गासन में किसी भी आसन से मोक्ष जा सकते हैं।

जिस प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना तनुवातवलय के 1500 वें भाग में रहती है उसी तरह साढ़े तीन हाथ की अवगाहना वाले जीव तनुवातवलय के नौ लाख वें हिस्से में रहते हैं।

प्रश्न सिद्धालय में जो जीव विराजमान होते हैं, वे ऋजुगति से गमन करके जाते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्र या पर्वतों के ऊपर जो सिद्धालय का भाग है, वह खाली होगा। योंकि समुद्र या पर्वतों से या भोगभूमियों से कोई जीव सिद्ध नहीं होता ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 179)*

उ ार– पूर्व भव के बैरी देवों के द्वारा उठाकर फेकें गये मुनिराज समुद्र या भोगभूमियों के ऊपर से सिद्ध हो जाते हैं।

इसी प्रकार सुमेरु, हिमवन् या महाहिमवन् आदि पर्वतों के अन्दर बनी हुई गुफाओं में प्रवेश कर जो मुनिराज ध्यान लगाते हैं उनकी आत्मायें मुक्त होने पर उनके ऊपर ही विराजमान हो जाती हैं। इस प्रकार 45 लाख योजन विस्तार वाले गोल और 525 धनुष मोटे सिद्ध क्षेत्र में ऐसा कोई भी प्रदेश नहीं हैं जहाँ मुक्त आत्मायें विराजमान न हों।

प्रश्न मोक्ष प्राप्ति के लिए कौन–कौनसे गुणस्थान आवश्यक नहीं हैं ?

उ ार– मिथ्यादृष्टि जीव संयम धारण कर सप्तम गुणस्थान को प्राप्त होते हैं। पुन: छठे गुणस्थान को प्राप्त होकर सहस्रों बार प्रमž ा–अप्रमž ा होकर क्षपकश्रेणी के आठवें, नवमें, दसवें एवं बारहवें गुणस्थान को प्राप्त होकर सयोगी और अयोगी गुणस्थान को प्राप्त होते हैं। मोक्षप्राप्ति के लिए द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम एवं ग्यारहवें गुणस्थान को प्राप्त करना आवश्यक नहीं है।

समवसरण

प्रश्न समवसरण में अभव्य और मिथ्यादृष्टियों का प्रवेश होता है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 180)

उ ार– इस स बन्ध में विभिन्न शास्त्रों में तीन मत मिलते हैं–

1 तिलोयपण्णž ा के अनुसार अभव्य और मिथ्यादृष्टि दोनों का गमन समवसरण में नहीं होता है।

2 हरिवंशपुराणानुसार मिथ्यादृष्टियों का गमन समवसरण में होता है।

3 उž ारपुराण के अनुसार मिथ्यादृष्टि तथा अभव्य दोनों का गमन समवसरण में होता है। नीच गोत्र वाले शूद्रों का गमन समवसरण में नहीं होता है।

प्रश्न समवसरण के विघट जाने पर सभी जीवों का €या होता है ? €या वे विहार के समय साथ–साथ चलते हैं ? समवसरण का €या होता है ? आदि बातें बतलाइये।

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 182)

उ ार– एक स्थान पर देशना का काल पूर्ण हो जाने पर सौधर्म इन्द्र भगवान् के विहार की घोषणा करता है, तब बहुत से जीव तो घर चले जाते हैं। कुछ मुनिराज वहीं रह जाते हैं। असं यात देव, गणधर, बहुत मुनि तथा अन्य गृहस्थ भगवान् के साथ विहार करते हैं। विहार का विवरण हरिवंशपुराण में अच्छी तरह वर्णित है। विहार के

लिए इन्द्र आकाश में मणिओं से बना हुआ मार्ग बनाता है। उस पर भगवान् का विहार होता है। इन्द्र भगवान् के चरणों के नीचे 15 × 15 = 225 कमलों की रचना करता है। भगवान् का विहार कमलों से चार अंगुल ऊपर कदम बढ़ाते हुए होता है। जहाँ अगले स्थान पर समवसरण लगना होता है वहाँ इन्द्र व कुबेर समवसरण को पहुँचा देते हैं। समवसरण अकृत्रिम होता है, मायामयी नहीं होता है।

प्रश्न समवसरण में जो अन्य सामान्य केवली विराजमान होते हैं, उनकी गन्धकुटी बनती है या नहीं तथा उनकी वाणी खिरती है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 183)*

उ ार- जिन मुनिराजों को समवसरण में ही केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है, उनकी न तो गंधकुटी बनती है और न ही उपदेश होता है। वे मात्र चार अंगुल ऊपर हो जाते हैं। ये केवली भगवान् के साथ ही रहें, यह आवश्यक नहीं। वे अन्यत्र विहार कर सकते हैं। अन्य सामान्य केवली भी भगवान् के समवसरण में आ सकते हैं। जैसे आदिपुराणानुसार बाहुबली केवली, भगवान् आदिनाथ के समवसरण में चलकर आये थे।

प्रश्न दिव्यध्वनि श्रवण के बाद मिथ्यात्व रह सकता है या नहीं ?

उ ार- दिव्यध्वनि सुनने के बाद स यग्दर्शन हो जावे, यह नियम नहीं है। जिनेन्द्र भगवान् की वाणी संशय, विपर्यय एवं अनध्यवसाय से रहित होती है परन्तु उसे सुनने वाले जो जीव अतिशय क्षयोपशम से रहित होने के कारण समीचीन श्रद्धा उत्पन्न नहीं कर पाते हैं उन्हें स यग्दर्शन नहीं हो पाता है। और जो संशय आदि नहीं करते हैं वे स यग्दर्शन को प्राप्त कर लेते हैं।

जीवसमास

प्रश्न जीव समास के 98 भेद कौन-कौन से हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 184)*

उत्तर- नारकी दो प्रकार के होते हैं- 1. पर्याप्तक 2. निवृत्यपर्याप्तक

देव दो प्रकार के होते हैं - 1. पर्याप्तक 2. निवृत्यपर्याप्तक

मनुष्यों के भेद - 1. आर्यखण्डी 2. लेच्छखण्डी 3. भोगभूमिज 4. कुभोगभूमिज। ये सभी पर्याप्त और निवृत्यपर्याप्त दो प्रकार के होते हैं। ये 8 हुए और इनमें स मूर्च्छन मनुष्य मिलाने पर कुल 9 भेद हुये।

विकलेन्द्रिय जीव = 1. द्वीन्द्रिय 2. तीन इन्द्रिय 3. चार इन्द्रिय। ये सभी पर्याप्तक, निवृत्यपर्याप्तक तथा ल ध्यपर्याप्तक होते हैं। (9)

एकेन्द्रिय जीव = 1. पृथ्वीकायिक 2. जलकायिक 3. अग्निकायिक 4. वायुकायिक 5. नित्यनिगोद 6. इतरनिगोद। इनमें सूक्ष्म और बादर होते हैं। (12) इनमें सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित भी होते हैं। (14)

पर्याप्तक, निवृत्यपर्याप्तक व लब्ध्यपर्याप्तक का गुणा होने पर (42)

तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय = 1. जलचर 2. थलचर 3. नभचर में सैनी और असैनी का गुणित (6) व पर्याप्तक, निवृत्यपर्याप्तक व लब्ध्यपर्याप्तक का गुणा करने पर (18)

कर्मभूमियाँ गर्भज तिर्यंच = 1. जलचर 2. थलचर 3. नभचर में सैनी व असैनी का गुणा करने पर (6) भोगभूमियाँ तिर्यंच नभचर व थलचर। (8) इनमें पर्याप्तक और निवृत्यपर्याप्तक का गुणित होने पर (16) भेद= 2+2+9+9+42+18+16 = 98

पर्याप्ति

प्रश्न पर्याप्तक, अपर्याप्तक, निवृत्यपर्याप्तक तथा लŽध्यपर्याप्तक जीवों की परिभाषायें €या हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 186)

उŽार– इन सबकी परिभाषायें नि नलिखित हैं–

पर्याप्तक– जिनके पर्याप्त नामकर्म का उदय हो, जिनकी शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो गयी हो वे पर्याप्त हैं।

अपर्याप्तक– जिनके अपर्याप्त नामकर्म का उदय है, जिनकी पर्याप्ति पूरी नहीं होगी तथा जो विग्रहगति में हैं वे अपर्याप्त हैं।

निवृत्यपर्याप्तक– जिनके पर्याप्त नामकर्म का उदय है परन्तु जिनकी अभी शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं हुई है वे निवृत्यपर्याप्तक हैं।

ल ध्यपर्याप्तक जिनके अपर्याप्त नामकर्म का उदय है, जिसके कारण एक भी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होगी। जो एक श्वास में अठारह बार जन्म–मरण करते हैं।

प्रश्न षट् पर्याप्तियों का स्वरूप बतलाइये। *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 187)*

उ ार– पर्याप्ति 6 होती हैं। उनका स्वरूप इस प्रकार है–

1. आहार पर्याप्ति– आहार वर्गणा के पुद्‌गल स्कन्धों को खल और रस रूप परिणत करने की आत्मशक्ति प्राप्त हो जाना।

2. शरीर पर्याप्ति– खल भाग को हड्डी आदि अवयवरूप और रस भाग को रक्त आदि रसरूप परिणत करने की शक्ति प्राप्त हो जाना।

3. इन्द्रिय पर्याप्ति– इन्द्रियों के अपने योग्य क्षेत्र में अपने–अपने विषयों को ग्रहण करने रूप शक्ति की प्राप्ति होना।

4. श्वासोच्छ्‌वास पर्याप्ति– आहार वर्गणा को श्वासोच्छ्‌वास में परिणत करने की शक्ति प्राप्त होना।

5. भाषा पर्याप्ति– भाषा वर्गणा को वचनरूप परिणत करने की शक्ति प्राप्त हो जाना।

6. मन: पर्याप्ति– मनोवर्गणा को द्रव्यमनरूप परिणत करने की शक्ति प्राप्त हो जाना।

पर्याप्तियाँ कारण होती हैं तथा प्राण कार्य होते हैं। जीव अपने योग्य पर्याप्ति को एक साथ प्रार भ करता है परन्तु उनकी पूर्णता क्रम से होती है। प्रत्येक पर्याप्ति की पूर्णता में अन्तर्मुहूर्त काल लगता है और सभी पर्याप्तियों की पूर्णता में भी कुल मिलाकर अन्तर्मुहूर्त काल लगता है। एकेन्द्रिय के चार पर्याप्ति तथा द्वीन्द्रिय से असैनी पञ्चेन्द्रिय तक के पाँच पर्याप्तियाँ तथा सैनी पंचेन्द्रिय जीवों के छ: पर्याप्तियाँ होती हैं।

प्रश्न अपर्याप्तक और साधारण में €या अन्तर है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 188)*

उ ार- **अपर्याप्तक**- अपर्याप्तक के अपर्याप्त नामकर्म का उदय होता है। इसके कितनी भी इन्द्रियाँ हो सकती हैं। इनकी आयु क्षुद्रभव (एक श्वास में 18 बार जन्म-मरण) प्रमाण होती है।

साधारण- इनके साधारण नामकर्म का उदय होता है। ये एकेन्द्रिय ही होते हैं तथा इनकी आयु क्षुद्रभव से अन्तर्मुहूर्त प्रमाण तक होती है। €योंकि वे पर्याप्तक और अपर्याप्तक दोनों प्रकार के होते हैं। ये एक शरीर में अनन्त जीव एक साथ मिलकर रहते हैं।

प्रश्न लŽध्यपर्याप्तक और निवृत्यपर्याप्तक में €या अन्तर है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 189)*

उ ार- लŽध्यपर्याप्तक जीवों के अपर्याप्तक नामकर्म का उदय होता है और उसकी एक भी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती है। जबकि निवृत्यपर्याप्तक जीवों के पर्याप्त नामकर्म का उदय रहता है पर जब तक उनकी शरीर पर्याप्ति पूर्ण न हो निवृत्यपर्याप्तक कहलाते हैं।

प्रश्न पर्याप्तक जीव गर्भ में ही पर्याप्तक हो जाता है या बाहर आने पर होता है ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 190)

उ ार- पर्याप्तक जीव जन्मस्थान पर पहुँचते ही अन्तर्मुहूर्त में, गर्भ में ही पर्याप्तक हो जाता है तथा इसकी आयु क्षुद्रभव प्रमाण कभी नहीं होती अपितु अधिक ही होती है।

प्रश्न अपर्याप्त मनुष्य के सैनीपना तो है योंकि मनुष्य असैनी नहीं होते तो उसके द्रव्यमन या भावमन होता है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 192)*

उ ार- लŽध्यपर्याप्तक मनुष्य के मन स बन्धी मतिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम तो होता है परन्तु मन:पर्याप्ति पूर्ण न होने पर न तो द्रव्यमन होता है और न ही भावमन। इतना विशेष है कि अपर्याप्त मनुष्य के भावेन्द्रिय होती है €योंकि तत्स बन्धी मतिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम है परन्तु द्रव्येन्द्रिय नहीं होती हैं।

प्रश्न या ल ध्यपर्याप्तक जीवों के ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग होता है ?

उ ार- श्री धवला पु. 2 में वीरसेन महाराज ने ल ध्यपर्याप्तक जीवों को भी ज्ञानोपयोगी और दर्शनोपयोगी कहा है अर्थात् जीव किसी भी दशा में हो, मतिज्ञानावरण और श्रुतज्ञानावरण का क्षयोपशम, अचक्षुर्दर्शनावरण का क्षयोपशम तथा वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम उसके हमेशा पाया जाता है। इन कर्मों के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय जीव के न तो आज तक कभी हुआ है और न अनन्तकाल तक संसारी अवस्था में होगा। योंकि इनके सर्वघाति स्पर्धकों का उदय होने पर जीव ज्ञान-दर्शन और शक्ति से रहित हो जायेगा जो स भव नहीं है।

प्राण

प्रश्न द्रव्य प्राण और भावप्राण में €या अन्तर है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 194)*

उ ार- पुद्गल द्रव्य से उत्पन्न द्रव्य इन्द्रियों की प्रवृ िरूप द्रव्यप्राण हैं तथा ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न जो आत्मा का व्यापार है वह भावप्राण है।

प्रश्न मरण कितने प्रकार के होते हैं ?

उ ार- मरण के पाँच भेद हैं।

1. पहले और दूसरे गुणस्थानवर्ती के मरण को **बाल-बाल मरण** कहते हैं।
2. चतुर्थ गुणस्थानवर्ती के मरण को **बालमरण** कहते हैं।
3. पाँचवें गुणस्थानवर्ती के मरण को **बालपण्डितमरण** कहते हैं।
4. भावलिङ्गी साधु के मरण को **पण्डितमरण** कहते हैं।
5. केवली के शरीर छोड़ने को **पण्डित-पण्डित मरण** कहते हैं।

संज्ञा

प्रश्न संज्ञायें कितनी होती हैं और वह किस गुणस्थान तक होती हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 197)

उ ार- संज्ञायें चार होती हैं।

1 आहार- छठवें गुणस्थान तक।

2 भय- आठवें गुणस्थान तक।

3 मैथुन- नवमें गुणस्थान के सवेद भाग तक।

4 परिग्रह- दसवें गुणस्थान के अन्त तक।

€योंकि दसवें गुणस्थान तक कषाय का उदय पाया जाता है।

मार्गणा

प्रश्न मार्गणायें कितने प्रकार की होती हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 197)*

उ ार- मार्गणाओं की अपेक्षा संसारी जीव के चौदह भेद हैं-

1.	गति	2.	इन्द्रिय	3.	काय
4.	योग	5.	वेद	6.	कषाय

7.	ज्ञान	8.	संयम	9.	दर्शन
10.	लेश्या	11.	भव्यत्व	12.	स य€त्व
13.	संज्ञित्व	14.	आहारक		

इन चौदह मार्गणाओं के द्वारा संसारी जीवों की खोज तथा संसारी जीवों का विभाजन होता है।

गति मार्गणा

प्रश्न नरकों में असुरकुमार देव नारकियों को आपस में पूर्वभव का वैर बतलाकर उनमें लड़ाई कराकर दु:ख देते हैं या स्वयं उनको मारते-पीटते भी हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 198)*

उ ार- अवधिज्ञानी होने के कारण असुरकुमार देव उन नारकियों के पूर्व भव बताकर लड़ाई कराकर पीड़ा देते हैं। इसके अलावा वे स्वयं उनके गले में बड़े-बड़े पत्थर बाँधकर नदी में फेंक देते हैं जिससे उन्हें अत्यधिक वेदना होती है। वे नारकियों को आरे से काटना आदि स्वयं भी बहुत पीड़ा देते हैं।

प्रश्न नरकों में पञ्च स्थावर पाये जाते हैं या नहीं तथा वहाँ अग्नि, धातु की पुतली, सेंमरवृक्ष आदि स्वभाव से होते हैं या विक्रिया से ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 198)*

उ ार- नरक में पञ्च स्थावर जीव पाये जाते हैं। वहाँ अग्नि से दहकती हुई गुफायें भी हैं। वैतरणी आदि नदियाँ भी हैं। अत्यन्त कठोर वायु भी चलती है, सेमर आदि वृक्ष हैं अर्थात् पञ्चस्थावर होते हैं। पूज्यपाद आचार्यानुसार वहाँ दहकती हुयी पुतलियाँ आदि कष्टकारक वस्तुएँ स्वभाव से पायी जाती हैं लेकिन तिलोयपण्णZी के अनुसार ये सब नारकियों की विक्रिया होती हैं। आगमानुसार नारकियों के पृथ€त्व विक्रिया नहीं होती, वे अपने हाथ आदि को तलवार आदि रूप बनाने रूप विक्रिया करते हैं। नरकों में विकलत्रय जीव नहीं पाये जाते हैं।

प्रश्न नारकी अपना अगला भव जानते हैं या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 199)*

उ ार- नारकियों के अवधिज्ञान का क्षेत्र इस प्रकार है- प्रथम नरक का चार कोश अर्थात् वे चार कोश से आगे की बात नहीं जानते। शेष नरकों में अर्ध-अर्ध कोश क्षेत्र कम है। सप्तम नरक में अवधिज्ञान का क्षेत्र एक कोश प्रमाण है। समस्त नारकी जीव अपनी आयु पूर्ण कर मध्यलोक में सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च या मनुष्य बनते हैं। ये कर्मभूमियाँ होते हैं। मध्यलोक की दूरी उनके नरक से अधिक होने के कारण वे अपना अगला भव नहीं जान सकते हैं।

प्रश्न नरकों में तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध करने वाले जीव और क्षायिक स यग्दृष्टि जीव भी हैं, उन्हें कष्ट होता है या नहीं ? उन्हें आत्मतžव का श्रद्धान या ज्ञान होता है कि नहीं ? उन्हें स्वानुभूति होती है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 200)*

उ□ ार- नरकों में हमेशा असं यात जीव तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध करने वाले पाये जाते हैं तथा असं यात जीव क्षायिक स यग्दृष्टि होते हैं। वे वहाँ द्रव्य, क्षेत्र, कालानुसार भयंकर दु:खों को प्राप्त होते हैं परन्तु स यग्दृष्टि होने के कारण उनमें व्याकुलता की कमी पायी जाती है। वे आत्मतŽव के श्रद्धानी व ज्ञानी तो होते हैं परन्तु संयमी व शुद्धोपयोगी न होने से उनमें शुद्धात्मानुभूति अर्थात् आत्म-रमण नहीं होता। यह भी विशेष है कि तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध करने वाले नारकियों को आयु समाप्ति के छ: माह पूर्व, देवों द्वारा वज्र के कोट आदि बनाकर उन्हें अन्य नारकी के दु:ख से बचाने के उपाय किये जाते हैं।

प्रश्न तिर्यञ्चायु को आचार्यों ने शुभ कहा परन्तु तिर्यञ्च गति को अशुभ कहा। ऐसा □ यों ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 200)

उ□ ार- राजवार्तिककार कहते हैं कि कोई भी जीव तिर्यञ्च नहीं बनना चाहता इसलिए तिर्यञ्चगति अशुभ है परन्तु जो जीव तिर्यञ्च पर्याय को धारण कर लेता है तो वह मरना नहीं चाहता है इसलिए तिर्यञ्च आयु शुभ है। जैसे- शुभ नाम के राजा ने अवधिज्ञानी मुनि से जान लिया था कि वह अगले जन्म में मरकर विष्टा में कीड़ा बनेगा तो उसने पुत्र से कहा कि तुम मुझे पकड़कर मार देना, परन्तु राजा के मरने के बाद जब उसका पुत्र मारने गया तो वह कीड़ा बार-बार विष्टा में घुस जाता अर्थात् मरना नहीं चाहता था। इसलिए विर्यञ्च आयु शुभ कही गयी है।

प्रश्न ऐसा सुनते हैं कि अड़तालीस भव या सोलह भव मनुष्य के मिल जाने पर फिर नियम से निगोद में जाते हैं। □ या यह सच है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 201)

उ□ ार- किसी भी शास्त्र में ऐसा उल्लेख नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि यदि कोई जीव निरन्तर मनुष्य बनता रहे तो 47 करोड़ पूर्व और तीन पल्य तक बन सकता है। इसके बाद मनुष्य नहीं बन सकता, परन्तु इसके बाद निगोद में जाए ऐसा नियम नहीं है। यह उत्कृष्ट काल इस प्रकार घटता है-

कोई जीव मनुष्य पर्याय में पूर्वकोटि की आयु सहित 8 पूर्वकोटी नपुंसकवेदी, 8 पूर्वकोटि स्त्रीवेदी, 8 पूर्व कोटि पुरुष वेदी मनुष्य बना। फिर स मूर्च्छन मनुष्य के 8 भव प्राप्त किये। उसके बाद आठ पूर्व कोटि नपुंसकवेदी, आठ पूर्व कोटि स्त्रीवेदी और सात पूर्व कोटि पुरुष वेदी बना। तत्पश्चात् 3 पल्य की आयु वाले उŽाम भोगभूमि में उत्पन्न हुआ। यह तो समझने का एक तरीका है, यह कोई नियम नहीं है कि 47 पूर्व कोटि 3 पल्य में 48 भव ही प्राप्त करें। वह अर्थात् एक जीव 47 पूर्व कोटि 3 पल्य में सं यात भव भी ले सकता है।

प्रश्न □ या ल□ ध्यपर्याप्तक मनुष्य निगोदिया जीवों के जैसे होते हैं ? वे निगोदिया में आते हैं □ या ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 202)

उ□ ार- ल□ ध्यपर्याप्तक मनुष्य निगादिया जैसे नहीं होते। निगोदिया जीव तो एकेन्द्रिय होते हैं जबकि इनके पञ्चेन्द्रिय और मन भी होता है। दूसरी बात निगोदिया पर्याप्तक और अपर्याप्तक दोनों प्रकार के होते हैं परन्तु ये मनुष्य तो अपर्याप्तक ही होते हैं। तीसरी बात है कि निगोदिया जीव एक शरीर में अनन्त पाये जाते हैं परन्तु मनुष्यों

का अलग-अलग शरीर होता है। ये लब्ध्यपर्याप्तक एक श्वास में 18 बार जन्म-मरण करते हैं अर्थात् इनकी आयु क्षुद्रभवप्रमाण है जो 1/24 सैकण्ड प्रमाण है। ये अन्तर्मुहूर्त में आठ भव से ज्यादा नहीं ले सकते हैं तथा आँखों से या यन्त्रों से देखने योग्य नहीं हैं। इनकी उत्पत्ति आर्यखण्ड की स्त्रियों के अङ्गों में मनुष्यों के कान, नाक, आँख आदि के मैल में होती है। ये म्लेच्छखण्ड में उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्रश्न मनुष्य और तिर्यञ्चों के शरीर में खून तथा अन्य कीड़े पाये जाते हैं। तो क्या खून और उन कीटाणुओं के शरीर में मनुष्य या तिर्यञ्च के आत्मप्रदेश रहते हैं या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 203)

उत्तर- मनुष्य व तिर्यञ्च के शरीर के खून में तो आत्मप्रदेश पाये जाते हैं लेकिन अन्य कीटाणुओं का शरीर प्रत्येक शरीर है, उनके शरीर में मनुष्य या तिर्यञ्चों के आत्म प्रदेश नहीं होते।

प्रश्न देवगति मिलना दुर्लभ है या मनुष्यगति ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 204)*

उत्तर- पञ्चपरावर्तन पूर्ण करने के लिए मनुष्यों की अपेक्षा देवों में असंख्यात गुणी बार जन्म लेना पड़ता है। देवों की संख्या भी मनुष्यों से असंख्यातासंख्यात गुणी है अर्थात् असंख्यात बार देव बनने पर एक मनुष्य पर्याय मिलती है। इससे स्पष्ट होता है कि मनुष्यगति का प्राप्त होना, देवगति की अपेक्षा अत्यन्त दुर्लभ है। अत: हमें अपनी पर्याय का पूर्ण सदुपयोग करना चाहिये।

प्रश्न कौन-कौन से देव एक भवावतारी होते हैं अर्थात् एक जन्म लेकर नियम से मोक्ष जाते हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 204)

उत्तर- त्रिलोकसार के अनुसार सौधर्म इन्द्र, उसकी शची नाम की पट्टदेवी, उसी के चारों लोकपाल, सभी लौकान्तिक देव, सनत्कुमारादि दक्षिणेन्द्र तथा सर्वार्थसिद्धि के देव। ये सभी देव आयु पूर्ण होने पर मरण करके मनुष्य बनकर नियम से मोक्ष जाते हैं।

प्रश्न देवों में जन्म-मरण का विरहकाल कितना है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 204)*

उत्तर- सौधर्म और ईशान स्वर्ग में जन्मान्तर-मरणान्तर का उत्कृष्टकाल सात दिन, इससे ऊपर के दो स्वर्गों में पन्द्रह दिन, इससे ऊपर चार स्वर्ग में एक माह, फिर चार स्वर्ग में दो माह तथा फिर चार स्वर्गों में चार माह और इसके ऊपर कल्पातीत देवों में छ: माह का विरहकाल है। सौधर्म आदि इन्द्र, सौधर्म इन्द्र की महादेवी शची और लोकपाल इनका उत्कृष्ट विरहकाल छ: माह है और विशेष विवरण धवल पुस्तक 7 से जानना चाहिये।

प्रश्न स्वर्गों में देव और देवाङ्गनाओं, सभी की मरण से छ: माह पूर्व माला मुरझाती ही है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 205)

उत्तर- सभी देव और देवियों की गले में पड़ी हुई मन्दारमाला मरण से छ: माह पूर्व मुरझा जाती है। परन्तु जिन देवों को अगले भव में तीर्थङ्कर बनना होता है उनकी माला नहीं मुरझाती। यह माला उनके गले में जन्म के समय

से ही रहती है। देवों को यद्यपि बुढ़ापा नहीं आता है परन्तु माला मुरझाते ही मिथ्यादृष्टि देव अत्यन्त दु:खी और वृद्ध से दिखाई देने लगते हैं जबकि अन्य स यग्दृष्टि देवों को दु:ख नहीं होता। वे तो और अधिक धार्मिक कार्यों में लग जाते हैं।

प्रश्न देवों के मरण हो जाने पर देवियों का €या होता है ? वे अपने आप को विधवावत् मानने लगती हैं□ या ?

उ□ ार- एक देव के मरण करने पर उसकी देवियाँ उस देव के स्थान पर जो दूसरा देव आता है उसको अपने पतिरूप से स्वीकार कर लेती हैं। स्वर्गों में विधवारूप से कोई विकल्प नहीं होता।

प्रश्न एक देव के कम से कम और अधिक से अधिक कितनी देवियाँ हो सकती हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 206)

उ□ ार- एक ज्योतिषी देव की कम से कम 32 देवियाँ होती ही हैं, अन्य देवों के पाँच-छ: तक भी होती हैं। इन्द्रादि के हजारों देवियाँ भी होती हैं।

प्रश्न देव, नारकी और भोगभूमियाँ जीवों में कौन असं यात वर्षायुष्क होते हैं और कौन सं यात वर्षायुष्क होते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 206)*

उ□ ार- जिन जीवों की आयु एक पूर्व कोटि से ज्यादा होती है वे असं यात वर्षायुष्क कहलाते हैं। एक कोटिपूर्व तक की आयु वाले सं यात वर्षायुष्क कहलाते हैं। देव और नारकियों की जघन्य आयु 10 हजार वर्ष तथा उत्कृष्ट आयु 33 सागर प्रमाण होती है। अत: जिन देव और नारकियों की आयु दस हजार वर्ष से लेकर एक पूर्व कोटि तक की होती है वे सं यात वर्षायुष्क हैं। एक कोटि पूर्व से अधिक आयु वाले देव तथा नारकी असं यात वर्षायुष्क हैं। किन्तु सभी भोगभूमियाँ जीवों की आयु एक पूर्व कोटि से अधिक होती है अत: समस्त भोगभूमियाँ जीव असं यात वर्षायुष्क होते हैं।

प्रश्न भवनत्रिक एवं सौधर्म, ऐशान स्वर्ग के देवों के शरीर में रक्त, शुक्र आदि नहीं होते। फिर वे मनुष्य या तिर्यञ्चों की तरह कामसेवन कैसे करते होंगे ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 207)*

उ□ ार- ये सभी देव सं€लेश परिणाम तथा कषाय की तीव्रता वाले होते हैं। इनके वेद नोकषाय का तीव्र उदय होता है इसलिए रक्त, शुक्र आदि न होते हुये भी शरीर द्वारा ये मनुष्य की तरह कामसेवन की क्रिया करते हैं और मैथुन सुख का अनुभव करते हैं।

प्रश्न संसारी जीवों की सं या में अल्प-बहुत्व किस प्रकार है ?

उ□ ार- श्री धवला पुस्तक-7 के अनुसार सबसे कम पर्याप्त मनुष्य हैं जो 29 अंक प्रमाण अर्थात् सं यात हैं। इनसे असं यातगुणे नारकी हैं, उनसे असं यातगुणे देव हैं, उनसे अनन्तगुणे मुक्तजीव हैं और उनसे अनन्तगुणे तिर्यञ्च गति के जीव हैं।

प्रश्न चारों गतियों में जीवों की उत्पत्ति निरन्तर होती रहती है या अन्तर भी पड़ता है ?

उत्तर- श्री महाधवला पुस्तक 7 के अनुसार तिर्यञ्चगति में जीवों की उत्पत्ति में अन्तर नहीं होता जबकि अन्य तीन गतियों में जीवों की उत्पत्ति का जघन्य अन्तर 1 समय और उत्कृष्ट अन्तर 24 मुहूर्त बताया गया है।

इन्द्रिय मार्गणा

प्रश्न इन्द्रिय और मन के सम्बन्ध में क्या विशेषता है ?

उत्तर- इन्द्रियों के सम्बन्ध में अपर्याप्तक या निवृत्यपर्याप्तक अवस्था में भी भावेन्द्रिय होती है द्रव्येन्द्रिय नहीं। पहले भावेन्द्रिय होगी, बाद में द्रव्येन्द्रिय। लेकिन मन के सम्बन्ध में अपर्याप्तक अथवा निवृत्यपर्याप्तक अवस्था में आचार्यों ने द्रव्यमन तथा भावमन दोनों ही नहीं माने हैं। पहले द्रव्यमन बनता है तत्पश्चात् भावमन होता है, यह विशेषता है।

प्रश्न एकेन्द्रिय जीवों के मन तो होता नहीं तो फिर वे अपने हित-अहित का ज्ञान कैसे करते हैं ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 207)

उत्तर- एकेन्द्रिय जीवों के मन नहीं होता परन्तु कुमति और कुश्रुत ये दोनों ज्ञान होते हैं। इन ज्ञानों के द्वारा उनमें हितरूप प्रवृत्ति और अहित से निवृत्ति देखी जाती है, ऐसा श्रीधवला पु. क में लिखा है। विज्ञान भी कहता है कि जब पेड़ के पास माली आता है तो पेड़ में हर्ष का भाव और जब लकड़हारा आता है तो दु:ख का भाव देखा जाता है। यह सब उन दोनों ज्ञानों का कार्य है।

प्रश्न इन्द्रियाँ वस्तुओं को स्पर्श करके ही जानती हैं या बिना स्पर्श के भी जान सकती हैं ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 208)

उत्तर- स्पर्शन, रसना, घ्राण और कर्ण इन्द्रिय तो वस्तु को प्राप्त करके तथा बिना प्राप्त किये दोनों प्रकार से जानती हैं परन्तु चक्षु इन्द्रिय और मन वस्तु को बिना प्राप्त किये हुए या बिना स्पर्श किये जानते हैं। हम ऐसा समझते हैं कि नीम का स्वाद रसना इन्द्रिय चखकर ही तो बताती है, बिना प्राप्त किये हुए कैसे बता पायेगी ? इसका उत्तर यह है कि जिन मुनिराजों के दूरास्वादन नाम की ऋद्धि होती है वे मुनिराज 9 योजन दूर रखी वस्तु का स्वाद कैसे बता सकेंगे ? जबकि वे बता देते हैं अन्यथा यदि स्पर्श करके ही बतायेंगे तो नौ योजन के मार्ग तक जो भी गन्दी वस्तु होगी उनका भी स्वाद उन्हें आने से बड़ा अनिष्ट हो जायेगा। अत: ये चार इन्द्रियाँ वस्तु को प्राप्त करके अथवा बिना प्राप्त किये ज्ञान करने में समर्थ होती हैं। इसी कारण इनको प्राप्यकारी और अप्राप्यकारी कहा जाता है।

प्रश्न जीव किन-किन कर्मों के उदय से एकेन्द्रिय होता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 209)*

उत्तर- जिस जीव के स्पर्शन इन्द्रिय सम्बन्धी मतिज्ञानावरण के देशघाती स्पर्धकों का उदय हो, अन्य चार इन्द्रिय और मन सम्बन्धी मतिज्ञानावरण कर्म के सर्वघाती स्पर्धकों का उदय हो, वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम हो और औदारिक शरीर नामकर्म का उदय हो वे जीव एकेन्द्रिय बनते हैं।

प्रश्न निगोदिया जीव किन कायों में पाये जाते हैं और इनके कितनी इन्द्रियाँ होती हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 210)

उ ार- निगोदिया जीवों के मात्र एकेन्द्रिय होती है। ये दो प्रकार के होते हैं- 1. बादर 2. सूक्ष्म। स पूर्ण लोकाकाश में सूक्ष्म निगोदिया जीव तो ठसाठस ारे पड़े हैं परन्तु बादर निगोदिया जीव पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुकायिक जीवों के शरीर में, आहारक शरीर में, केवली के शरीर में तथा देव, नारकियों के शरीर में नहीं पाये जाते हैं। ये वनस्पति तथा त्रस जीवों के शरीर में पाये जाते हैं। वनस्पति दो प्रकार की होती है- 1. सप्रतिष्ठित प्रत्येक 2. अप्रतिष्ठित प्रत्येक। इनमें से आलू, मूली आदि सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति में तो निगोदिया जीव सदैव पाये जाते हैं परन्तु अन्य वनस्पतियाँ जब अप्रतिष्ठित प्रत्येक हो जाती हैं तब उनमें निगोदिया जीव नहीं पाये जाते हैं।

प्रश्न एकेन्द्रिय जीवों में मोहनीय कर्म पाया जाता है तो उसकी स्थिति कितनी होती है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 210)

उ ार- यदि कोई देव सŽार कोडाकोडी सागर स्थिति वाला मोहनीय कर्म बांधकर मरण करे और एकेन्द्रिय में उत्पन्न हो जाये तो उन एकेन्द्रिय जीवों के एक समय कम सŽार कोडाकोडी सागर स्थिति वाला मोहनीय कर्म पाया जा सकता है परन्तु एकेन्द्रिय जीव मोहनीय कर्म का नवीन बन्ध करे तो एक सागर तक की स्थिति बांध सकता है इससे अधिक नहीं, €योंकि उसके कषाय की तीव्रता इससे अधिक स भव नहीं है।

प्रश्न विभिन्न एकेन्द्रिय जीवों की आयु कितनी होती है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 211)*

उ ार- एकेन्द्रिय जीवों के 28 भेद होते हैं। उनमें से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकायिक, नित्यनिगोद और इतरनिगोद ये छः हुये। इनके बादर और सूक्ष्म (12) तथा सप्रतिष्ठित + अप्रतिष्ठित = 12 + 2 = 14, इन चौदह प्रकार के लŽध्यपर्याप्तक जीवों की जघन्य व उत्कृष्ट आयु क्षुद्रभव प्रमाण है।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकायिक सूक्ष्म जीव और नित्य निगोदिया (सूक्ष्म व बादर) व इतर निगोदिया पर्याप्तक जीवों की उत्कृष्ट आयु अन्तर्मुहूर्त है। बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्तक की 22 हजार वर्ष, जलकायिक की 7 हजार वर्ष, अग्निकायिक की 3 दिन, वायुकायिक की 3 हजार वर्ष और दोनों प्रकार की प्रतिष्ठित वनस्पतियाँ, इनकी उत्कृष्ट आयु 10 हजार वर्ष है। सभी पर्याप्तक एकेन्द्रिय की जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।

प्रश्न विज्ञान तो केवल वृक्षादि वनस्पतिकायिकों में जीव मानता है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु में जीव कैसे सिद्ध किये जायें ?

उ ार- हम सभी लोग तुच्छज्ञानी हैं। हमारे थोड़ा सा मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान का क्षयोपशम है इसलिए हम तीन प्रकार के पदार्थों को जानने की शक्ति नहीं रखते।

1. दूरवर्ती- जो हमसे बहुत दूर हैं। जैसे नन्दीश्वर द्वीप, नरक, स्वर्ग आदि।
2. अन्तरित- जो भूतकालीन है। जैसे- भगवान् आदिनाथ, राम आदि।
3. सूक्ष्म- कार्मण वर्गणा आदि जो इन्द्रियों से ग्राह्य नहीं हो पाती।

उपर्युक्त तीन प्रकार के पदार्थ हमारे तुच्छज्ञान के विषय नहीं हैं। इनके जानने के लिए हमें प्रत्यक्ष ज्ञान चाहिये। इसीलिए इन तीन पदार्थों का ज्ञान आगम के प्रमाण से स्वीकार करना चाहिये €योंकि आगम सर्वज्ञ के वचन हैं और सर्वज्ञ का ज्ञान समस्त द्रव्य और उनकी अनन्त पर्यायों को जानता है।

प्रश्न भावेन्द्रियाँ किसके आधार से होती हैं ? इनका आधार मन है या आत्मा ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 212)

उ ार- मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम से जो इन्द्रिय जनित मतिज्ञान होता है उसका आधार आत्मा है। सभी भावेन्द्रियाँ आत्मा के क्षयोपशम रूप है अत: आत्मपरिणामस्वरूप हैं और इनका आधार द्रव्येन्द्रियाँ हैं जो पुद्गलरूप होती हैं।

प्रश्न एकेन्द्रिय जीव कहाँ-कहाँ पाये जाते हैं ? सिद्धालय में एकेन्द्रिय जीव पाये जाते हैं या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 213)

उ ार- सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव स पूर्ण लोक में व्याप्त हैं अर्थात् लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश में पाये जाते हैं। बादर एकेन्द्रिय जीव पृथ्वी, जल आदि के आधार से तथा त्रस जीवों के शरीर में रहते हैं। परन्तु मारणान्तिक समुद्घात, उपपाद आदि की अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय जीव भी स पूर्ण लोक में पाये जाते हैं। सिद्धालय में भी एकेन्द्रिय जीव भरे पड़े हैं।

प्रश्न या सर्प तीन इन्द्रिय जीव है ? विज्ञान तो कहता है कि उसके कान नहीं होते ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 214)

उ ार- शास्त्रों में सर्प को पञ्चेन्द्रिय कहा है तथा वह चतुर्थ नरक तक उत्पन्न होता है। नरकों में एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय का जन्म ही नहीं होता अत: आगम से सर्प पंचेन्द्रिय है। सच यह है कि अन्य जीवों की तरह सर्प के कर्ण इन्द्रिय दृष्टिगोचर नहीं होती। उसके फण के एक भाग में सुनने के योग्य छिद्र बना रहता है। वह उससे सुनता है। अन्यथा वह बीन के साथ-साथ यों नाचता ? इसलिए सर्प पंचेन्द्रिय है।

प्रश्न विकलत्रय जीव लोक में कहाँ-कहाँ पाये जाते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 215)*

उ ार- विकलत्रय जीव अढ़ाईद्वीप में तथा अन्तिम अर्धस्वय भूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र में पाये जाते हैं। अढ़ाईद्वीप में ोगभूमियों में भी नहीं पाये जाते परन्तु यदि कोई बैरी देवादिक किसी जीव को उठाकर अढ़ाईद्वीप के बाहर या अन्दर की भोगभूमि आदि में फेंक दे तो कदाचित् वहाँ भी पाये जाते हैं। मध्यलोक से ऊपर या नीचे विकलत्रय जीव नहीं पाये जाते अर्थात् स्वर्ग और नरकों में विकलत्रय नहीं होते।

प्रश्न द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों में किनकी सं या ज्यादा और कम है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 216)

उ ार– त्रस जीवों में पञ्चेन्द्रिय जीव सबसे कम, उससे चतुरिन्द्रिय जीव ज्यादा, उससे तीन इन्द्रिय ज्यादा और उससे द्वीन्द्रिय जीव ज्यादा हैं। यदि पर्याप्तक की अपेक्षा देखें तो चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक से पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक ज्यादा हैं, इनसे द्वीन्द्रिय पर्याप्तक ज्यादा हैं और तीन इन्द्रिय पर्याप्तक सबसे ज्यादा हैं।

प्रश्न बादर और सूक्ष्म जीवों में या अन्तर है ? या बादर जीवों से सूक्ष्म जीव बड़ा हो सकता है ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 217)

उ ार– जिनके सूक्ष्मनामकर्म का उदय हो और जो अन्य किसी से न रुकते हों और न ही रोकते हों उन्हें सूक्ष्म जीव कहते हैं तथा जिनके बादर नामकर्म का उदय है, जो रुकते हैं और रोकते हैं वे बादर जीव कहलाते हैं। शास्त्रों के आधाार से यह स्पष्ट है कि कुछ बादर जीवों से सूक्ष्म जीवों की अवगाहना असं यातगुणी होती है। जैसे– पञ्चेन्द्रिय बादर अपर्याप्त की जघन्य अवगाहना से सूक्ष्म निगोद निवृत्यपर्याप्तक जीवों की अवगाहना असं यातगुणी होती है।

प्रश्न किस ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम को लŽध कहा जाता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 217)*

उ ार– मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम को लŽध कहा जाता है। अन्य किसी भी ज्ञानावरण के क्षयोपशम को लŽध नहीं कहा जाता। यह तो भावेन्द्रिय का भेद है। भावेन्द्रिय की लŽध उस इन्द्रिय स बन्धी मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम की प्राप्ति को कहते हैं।

प्रश्न चक्षुर्दर्शन होने पर चक्षु इन्द्रिय स बन्धी ज्ञान होता है या चक्षु इन्द्रिय से ज्ञान होने पर उससे पहले होने वाला दर्शन चक्षुर्दर्शन कहलाता है ?

उ ार– दर्शनोपयोग इन्द्रियों से नहीं होता। आत्मा का उपयोग जब बाह्यपदार्थ को ग्रहण करने के अभिमुख होता है और अन्तरङ्ग प्रयासरूप रहता है तब तक दर्शन कहलाता है। उस दर्शन के पश्चात् यदि चक्षुइन्द्रिय से मतिज्ञान हुआ हो तो उस दर्शन को चक्षुर्दर्शन संज्ञा दी जाती है तथा यदि उस दर्शन के पश्चात् चक्षु इन्द्रिय के अलावा अन्य इन्द्रिय और मन से ज्ञान हुआ हो तो अचक्षुर्दर्शन की संज्ञा देते हैं। यदि दर्शन के पश्चात् अवधिज्ञान हुआ हो तो उस दर्शन को अवधिदर्शन की संज्ञा दी जाती है।

प्रश्न भावेन्द्रिय और भावमन को पौद्गलिक कहने का €या कारण है?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 218)

उ ार– यद्यपि भावेन्द्रिय और भावमन अशुद्ध जीव के परिणमन हैं इसलिए जीवात्मक हैं परन्तु अध्यात्म ग्रन्थों में जीव के रागद्वेषमोहादि विभाव परिणामों को पौद्गलिक माना गया है €योंकि ये जीव के स्व ााव नहीं हैं। ये पौद्गलिक कर्म के उदय के कारण होते हैं अत: कारण में कार्य का उपचार करके उनको पौद्गलिक कहा जाता है। जैसे– आत्मा में उत्पन्न क्रोध जीवात्मक है तो भी क्रोधकर्म के उदय के कारण उत्पन्न होने से उस विभाव परिणाम को पौद्गलिक कहा है।

प्रश्न केवली भगवान् को पञ्चेन्द्रिय जीवों में यों कहा गया है ?*(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 218)*
उ ार- आपकी बात सही है कि केवली के इन्द्रियप्राण और भावेन्द्रिय नहीं होतीं। लेकिन चौदहवें गुणस्थान के अन्त तक पञ्चेन्द्रिय जाति नामकर्म का उदय तो पाया ही जाता है जिसके कारण उनके पाँचों इन्द्रियाँ कार्यकारी नहीं होते हुये भी रहती तो हैं। अगर द्रव्येन्द्रिय नहीं मानेंगे तो उठना, बैठना, विहार करना कैसे संभव हो सकता है ? अत: इस कारण पञ्चेन्द्रिय जाति नामकर्म का उदय होने से उन्हें पंचेन्द्रिय कहा जाता है। वे पञ्चेन्द्रिय जीव ही हैं।

प्रश्न आ यन्तर निर्वृZिरूप जो आत्मप्रदेशों की रचना होती है, उसमें जो आत्मप्रदेश नियत हो जाते हैं, वे वहीं रहते हैं या अन्य-अन्य प्रदेश आते-जाते रहते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 220)*
उ ार- मु तारजी ने तो पृष्ठ 220 में इस प्रश्न के उZार में लिखा है कि इन्द्रियरूपी क्षयोपशम आत्मा के समस्त प्रदेशों में है इसलिए आत्मप्रदेशों की चंचलता के कारण आ यन्तर निर्वृZि के प्रदेश बदलते रहते हैं, वहाँ अन्य-अन्य प्रदेशों का जाना होता रहता है ऐसा धवल पु. 12 में पृ. 364-367 तक कहा है। परन्तु पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज का कथन इससे भिन्न है। उनका मत है कि प्रदेश बदलते रहते हैं तो रचना या हुयी ? इसलिए ऐसा मानें कि आ यन्तर निर्वृZिरूप जिन आत्मप्रदेशों की रचना होती है वे अपनी रचना के अन्दर ही भ्रमण करते रहते हैं परन्तु बदलते नहीं।

प्रश्न एकेन्द्रिय जीवों के अङ्गोपाङ्ग नाम कर्म का उदय है या नहीं ? उसके अङ्गोपाङ्ग होते हैं या नहीं ?
उ ार- श्री धवला पुस्तक 6 के अनुसार एकेन्द्रिय जीवों के हाथ-पैर आदि अङ्गोपाङ्ग नहीं होते हैं परन्तु **'वनस्पत्यन्तानामेकम्'** (तZवार्थ सूत्र 2/22) की टीका में राजवार्तिककार ने एकेन्द्रिय जीवों के अङ्गोपाङ्ग नाम कर्म का उदय माना है। इस प्रकार इस स बन्ध में आचार्यों के दो मत हैं।

काय मार्गणा

प्रश्न षट्काय के जीवों की अलग-अलग सं या कितनी है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 219)*
उ ार- एकेन्द्रियों में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों की सं या असं यातासं यात है अनन्त नहीं हैं। समस्त त्रस भी असं यातासं यात हैं। इन समस्त जीवों की जितनी सं या है उसके योग से अनन्तानन्तगुणे निगोदिया जीव कहे गये हैं अर्थात् निगोदिया जीवों की सं या अनन्तानन्त है।

प्रश्न निगोदिया जीवों को किस काय में लेना चाहिये ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 222)*
उ ार- निगोदिया जीवों को सामान्य से साधारण वनस्पतिकाय में लिया जाता है परन्तु धवलाकार ने वनस्पतिकाय के अन्तर्गत मानते हुए भी इनको अलग रखा है। हम देखते हैं कि जब वनस्पतिकायिकों के योनिस्थान की चर्चा

होती है तब निगोदिया जीवों के योनिस्थान अलग कहे हैं। इसी प्रकार जब कुलों की चर्चा होती है तब भी वनस्पतिकाय के कुल अलग कहे हैं और निगोदिया जीवों के अलग। इसी को आधार लेते हुए पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज निगोदिया जीवों को वनस्पतिकाय में मानते हुए भी अलग मानते हैं।

प्रश्न मन्दिर में विराजमान पाषाण की मूर्ति अथवा खान से टूटा पत्थर सचिŽा है या अचिŽा ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 222)

उ ार– आम धारणा यह है कि खान से टूटा पत्थर अजीव हो जाता है परन्तु यह धारणा ठीक नहीं है। सत्य यह है कि एक पृथ्वीकायिक जीव की अवगाहना अंगुल के असं यातवें भाग प्रमाण, सुई की नोंक से भी छोटी होती है। अत: खान से टूटा पत्थर और वायु के कण में असं यात जीव होते हैं अत: उसे सचिŽा मानना चाहिये। पाषाण की मूर्ति का ऊपरी भाग प्रतिदिन घिसने से गर्म हो जाता है तो वह ऊपर का हिस्सा अचिŽा कहा गया है। धातु की मूर्तियाँ गर्म करके बनायी जाती हैं अत: अचि ा ही हैं। ईंटें या अन्य कोयलादि अचि ा हैं। यह भी जानना चाहिये कि पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये पुद्गल के पिण्ड हैं। इनमें जो जीव इनको अपना शरीर बनाकर जन्म ले लेते हैं वे पृथ्वीकायिक आदि कहे जाते हैं।

प्रश्न स्थावर और एकेन्द्रिय में या अन्तर है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 223)*

उ ार– स्थावर से मतलब है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिकरूप होना और एकेन्द्रिय से तात्पर्य है कि मात्र स्पर्शन इन्द्रियावरण कर्म का क्षयोपशम होना। एकेन्द्रिय नामकर्म के उदय से उस जीव का जन्म एकेन्द्रिय में होता है। परन्तु वह जीव पृथ्वी आदि किस काय को धारण करेगा यह स्थावर नामकर्म का कार्य है।

प्रश्न आचार्य कुन्दकुन्द महाराज ने पञ्चास्तिकाय गाथा 191 में वायुकायिक और अग्निकायिक जीवों को त्रस कहा है। वह किस प्रकार है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 225)*

उ ार– जो चलते फिरते हैं उनको त्रस कहते हैं और जो स्थिर रहते हैं उनको स्थावर कहते हैं। इन परिभाषाओं के अनुसार आचार्य कुन्दकुन्द महाराज ने अग्निकाय और वायुकाय को चलने-फिरने वाला तो कहा है और इसी कारण त्रस भी कहा परन्तु यह नहीं कहा कि उनके दो या दो से अधिक इन्द्रियाँ होती हैं। इसीलिए जयसेन महाराज ने टीका में स्पष्ट कर दिया है कि यद्यपि इन दोनों जीवों के स्थावर नामकर्म का उदय है फिर ी उनमें चलन क्रिया होने के कारण शास्त्रों में उन्हें व्यवहार से त्रस कह दिया। वास्तव में वे एकेन्द्रिय जीव हैं।

प्रश्न बादर वायुकायिक पर्याप्तक जीव लोक के कितने भाग में पाये जाते हैं ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 225)

उ ार– धवला पु. 4 के अनुसार सुदर्शन मेरु के मूल से सहस्रार नामक बारहवें स्वर्ग तक अर्थात् पाँच राजु क्षेत्र में बादर वायुकायिक पर्याप्तक जीव पाये जाते हैं। यद्यपि इससे ऊपर भी वे होते तो हैं परन्तु उनकी सं या बहुत कम होती है।

प्रश्न नित्य निगोद से निकला हुआ कोई जीव यदि पुनः निगोद में अर्थात् इतर निगोद में जन्म ले तो वह जघन्य और उत्कृष्ट से कितने समय तक निगोद में रह सकता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 226)

उ ार- नित्य निगोद से निकलकर पुनः जाने वाला जीव अर्थात् इतर निगोदिया जीवों में कोई जीव जघन्य से क्षुद्रभव ग्रहण काल तक तथा उत्कृष्ट से निगोद में अढाई पुद्गल परावर्तनकाल तक रह सकता है।

प्रश्न एक निगोद शरीर में अर्थात् साधारण शरीर में कितने जीव रहते हैं और उनकी विशेषतायें ? या- या हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 228)*

उ ार- निगोदिया जीव एकेन्द्रिय होते हैं, उनकी तिर्यञ्चगति है। वे पर्याप्त और अपर्याप्त दो प्रकार के होते हैं। एक साधारण शरीर में आज तक हुये समस्त सिद्धों से अनन्तगुणे जीव पाये जाते हैं। उस साधारण शरीर में वे अनन्तजीव अपने-अपने तैजस और कार्मणशरीर सहित रहते हैं। निगोद और निगोद के बन्ध को धवला पु. 13 में जीवबन्ध कहा गया है। जब एक निगोदिया जीव को दुःख होता है तब अन्य को हो ऐसा नियम नहीं, योंकि सबका कर्मोदय भिन्न-भिन्न है। सभी जीवों का सुख दुःख का वेदन एक जैसा भी हो सकता है और भिन्न प्रकार का भी। सबके परिणाम अलग-अलग प्रकार के होते हैं। फिर ी वे समान आयु का बन्ध कर सकते हैं €योंकि असं यात लोकप्रमाण परिणामों से एक प्रकार की आयु का बन्ध हो सकता है। उन सबके ज्ञानादि गुणों की पर्याय एक सी होने का कोई नियम नहीं है। इनकी आयु (लŽध्यपर्याप्तक जीव) क्षुद्रभव प्रमाण अर्थात् 1/24 सैकण्ड होती है। फिर भी इनका अकालमरण संभव है। इन जीवों की नवीन आयु का बन्ध भी आठ अपकर्ष कालों में होता है। पर्याप्तक निगोदिया जीवों की चार पर्याप्तियाँ होती हैं और अपर्याप्तक के चार अपर्याप्तियाँ होती हैं। अपर्याप्तकों के श्वासोच्छ्वास नहीं होता। अपर्याप्तकों के तीन प्राण होते हैं- स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल व आयु। तीव्र सं€लेश होने के कारण उन सूक्ष्म जीवों का अकालमरण भी संभव है।

प्रश्न सुनते हैं कि निगोदिया जीव, जो बादर और पर्याप्तक हों वे निगोद पर्याय से मनुष्य बनकर मोक्ष जा सकते हैं तो इनके इतना पुण्य बन्ध किस प्रकार से होगा ?

उ ार- पण्डित श्री माणिकचन्दजी कौन्देय ने लिखा है कि जो बादर पर्याप्तक निगोदिया जीव ऋद्धिधारी मुनियों या केवली के शरीर से स्पर्श कर जाते हों तो उनके परिणामों में अतिविशुद्धि संभव है और उस समय आयु बन्ध का काल हो तो मनुष्यायु का बन्ध कर सकते हैं तथा उसी पर्याय से उनका मोक्षगमन भी संभव है।

योग मार्गणा

प्रश्न आत्मप्रदेश निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं या सोते समय रुक जाते हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 219)

उ ार- आत्मप्रदेशों की तीन अवस्थायें होती हैं- अचल, चल और चलाचल।

1. अचल- प्रत्येक आत्मा के जो मध्य के आठ प्रदेश होते हैं वे सदैव अचल रहते हैं। जब कोई जीव मरण करके

विग्रह गति से गमन करता है तब भी ये मध्य के आठ प्रदेश अचल ही रहते हैं। (किन्हीं विद्वानों ने किन्हीं ग्रन्थों में इन मध्य के आठ प्रदेशों को विग्रहगति में चल माना है। उनका यह कथन आगम स मत नहीं है। जैसे- जीवकाण्ड की केशववर्णी टीका में और टोडरमल स्मारक से प्रकाशित स यग्ज्ञान चन्द्रिका भाग एक में)

2. व्यायाम या खेलते समय हमारी आत्मा के समस्त प्रदेश चल रहते हैं।

3. अन्य समयों में अर्थात् सोते समय, पढ़ते समय आदि में कुछ प्रदेश चल तथा कुछ अचल रहते हैं।

ये आत्म प्रदेश घड़ी की तरह नीचे से ऊपर तथा ऊपर से नीचे की ओर भ्रमण करते रहते हैं।

प्रश्न आत्मप्रदेशों के परिस्पन्दन से कर्म आते हैं तो जो आत्मा के मध्य के आठ प्रदेश हमेशा अचल रहते हैं, उनमें परिस्पन्दन न होने के कारण कर्मों का आस्रव नहीं होना चाहिये ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 219)

उ ार- स पूर्ण आत्मप्रदेश एक है, टुकड़ेरूप नहीं। इसलिए आत्मप्रदेशों में जब भी कर्म का आस्रव होता है तब समस्त आत्मप्रदेशों में होता है। तŠवार्थसूत्र में भी प्रदेशबन्ध का वर्णन करते समय 'सर्वात्मप्रदेशेषु' यह शŠद दिया गया है। अत: मध्य के आठ प्रदेशों में भी कर्मग्रहण शक्ति रूप योग होने के कारण प्रतिसमय आस्रव होता रहता है।

प्रश्न योग कौन सा भाव है और यों ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 234)*

उ ार- योग की तीन परिभाषायें हैं-

1. शरीर नामकर्म के उदय से जीव की जो कर्मों को ग्रहण करने में कारणभूत शक्ति है वह योग है।
2. मन, वचन और काय की क्रिया को योग कहते हैं।
3. आत्मप्रदेशों में परिस्पन्दन होना योग है।

जीव के जो मध्य के आठ प्रदेश होते हैं उनमें प्रथम लक्षण पाया जाता है अर्थात् शरीर नामकर्म के उदय से उनमें कर्म ग्रहण करने की शक्ति का सद्भाव होने से योग है और आस्रव होता है। आचार्यों ने योग को औदयिक भाव ी माना है और क्षायोपशमिक भाव ी माना है €योंकि शरीर नामकर्म के उदय से योग होता है। इस कारण योग औदयिक भाव है तथा वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम के कारण होता है इसलिए क्षायोपशमिक भाव है। केवली में वीर्यान्तराय के क्षयोपशम की परिभाषा नहीं पायी जाती। परन्तु औदयिक भाव वाली परिभाषा पायी जाती है अर्थात् जब तक उनके शरीर नामकर्म का उदय है तब तक योग पाया जाता है। चौदहवें गुणस्थान में दोनों परिभाषायें नहीं पाये जाने से वे अयोग केवली कहलाते हैं। अत: योग को कथञ्चित् क्षायोपशमिक भाव तथा कथञ्चित् औदयिक भाव मानना चाहिये।

प्रश्न बादर योग तथा सूक्ष्म योग का कथन शास्त्रों में पाया जाता है। इससे €या समझना चाहिये ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 242)

उ ार- संसारी जीव के कर्म ग्रहण करने की शक्ति को योग कहते हैं। इस शक्ति का क्षीण हो जाना सूक्ष्म योग कहलाता है। इसके होने का क्रम इस प्रकार है- केवली भगवान् तेरहवें गुणस्थान के अन्त में बादर काययोग के द्वारा बादर मनोयोग, बादर वचनयोग तथा बादर श्वासोच्छ्वास का अभाव करते हैं। बाद में बादर काययोग ी

नष्ट हो जाता है। फिर सूक्ष्म काययोग के द्वारा सूक्ष्म मनोयोग, सूक्ष्म वचनयोग तथा सूक्ष्म श्वासोच्छ्वास का अभाव होता है तब सूक्ष्म काययोग में तीसरा शु लध्यान द्वारा उस सूक्ष्म काययोग को नष्ट करके वे योग रहित अर्थात् अयोग केवली बन जाते हैं।

प्रश्न योगों का परिवर्तन कैसे होता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 242)*

उ ार– कोई एक योग अन्तर्मुहूर्त से ज्यादा नहीं रह सकता, अन्तर्मुहूर्त से पूर्व ही वह बदल जाता है। इसके बदलने में मु य कारण तो आत्मा का निजी प्रयोग है अर्थात् आत्मा का जिस तरफ प्रयोग होता है तब उसके वही योग होता है। इसके अलावा शरीर को धक्का लगने पर या जोर की आवाज सुनने पर या चोट आदि लगने पर मनोयोग या वचनयोग पलटकर काययोग हो जाता है। इस क्रिया को व्याघात कहते हैं। परन्तु व्याघात के कारण काययोग पलटकर मनोयोग या वचनयोगरूप नहीं होता।

प्रश्न कोई व्यक्ति सामान की चोरी हो जाने पर शोर करता हुआ दौड़ रहा है। उस समय उसका कौन सा योग माना जाये ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 243)*

उ ार– नियम यह है कि मनोयोग, वचनयोग तथा काययोग में से एक समय में एक ही योग होता है। जिस समय आत्मा का प्रयोग जिस तरफ होता है उस समय वही योग माना जाता है। जैसे- जिस समय वह व्यक्ति जोर से शोर करता है तब वचन योग होता है और जब तेज दौड़ने रूप प्रयोग होता है तब काययोग और जब कुछ करने के लिए सोचता है तब मनोयोग। ये योग की पलटन हमारे ध्यान में नहीं आती परन्तु इसी प्रकार होती रहती है।

प्रश्न जिस समय जो योग होता है उस समय वही वर्गणा आती है या अन्य भी ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 243)

उ ार– जीवों के पुद्गल की तेईस वर्गणाओं में से मात्र पाँच वर्गणायें ग्रहण योग्य हैं।

1. मनोवर्गणा- इससे द्रव्य मन का निर्माण होता है।
2. भाषा वर्गणा- इससे शŸद बनते हैं।
3. नोकर्मवर्गणा- इससे औदारिक, वैक्रियिक तथा आहारक शरीर की रचना होती है।
4. तैजस वर्गणा- इससे तैजस शरीर बनता है।
5. कार्मणवर्गणा- इससे ज्ञानावरणादि कर्म बनते हैं।

हम सैनी पञ्चेन्द्रिय हैं। हमारे द्वारा प्रतिसमय पाँचों प्रकार की वर्गणाओं का ग्रहण होता है अत: पाँचों वर्गणायें प्रतिसमय ग्रहण की जाती हैं। यदि काययोग के समय मनोयोग नहीं होता है तो भी द्रव्यमन के निर्माण के लिए मनोवर्गणा प्रतिसमय आती रहती है पर उस तरफ आत्मा का प्रयोग नहीं होने से मनोयोग नहीं कहा गया है। केवली के भी प्रतिसमय पाँचों वर्गणायें आती हैं अत: उनके आने में परिस्पन्दन ही कारण होता है।

प्रश्न मन, वचन और काय की अधिक क्रिया से अधिक वर्गणायें आती हैं या कम क्रिया से कम, अथवा हमेशा समान वर्गणायें आती हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 243)*

उ□ ार– प्रत्येक जीव प्रतिसमय समयप्रबद्ध प्रमाण कार्मणवर्गणाओं को ग्रहण करता है। जब मन, वचन, काय की प्रवृZि अधिक होती है तो अधिक वर्गणायें आती हैं और जब कम होती है तब कम आती हैं परन्तु दोनों ही अवस्थाओं में वे समयप्रबद्ध प्रमाण ही कहलाती हैं €योंकि समयप्रबद्ध हीन या अधिकरूप से बहुत प्रकार का होता है। इसी प्रकार प्रतिसमय नोकर्म वर्गणा समयप्रबद्ध आती हैं। उनके द्वारा शरीर नाम कर्म के उदय से शरीर रूप रचना होती है। इन कर्मवर्गणाओं के आने पर आत्म परिस्पन्दनरूप योग होता है और कारण में कार्य का उपचार करके योग को आस्रव कहा गया है। योग में मोहनीय कर्म का उदय या अनुदय निमि□ ा नहीं है। केवल शरीर नामकर्म का उदय ही निमिžा है। शरीर नामकर्म का उदय तेरहवें गुणस्थान तक पाया जाता है अत: तेरहवें गुणस्थान तक योग और आस्रव है।

प्रश्न आत्मप्रदेशों में शरीर के प्रमाण छोटा या बड़ा होना अर्थात् संकोच या विस्तार, किस कारण से होता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 246)*

उ□ ार– शरीर नामकर्म के उदय से आत्मप्रदेशों में संकोच या विस्तार होता है अर्थात् वे शरीर प्रमाण सिकुड़ जाते हैं या विस्तृत हो जाते हैं। शरीर नामकर्म का उदय तेरहवें गुणस्थान के अन्तिम समय तक रहता है। अत: तेरहवें गुणस्थान के अन्तिम समय में आत्म–प्रदेश अन्तिम शरीर से कुछ कम आकाररूप हो जाते हैं। फिर उसके बाद चौदहवें गुणस्थान या सिद्ध अवस्था में न तो संकुचित होते हैं और न ही विस्तृत। €योंकि शरीर नामकर्म का उदय समाप्त हो चुका है।

प्रश्न योग से प्रकृति और प्रदेश बन्ध ही होते हैं या स्थिति और अनुभाग बन्ध भी होते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 247)*

उ□ ार– जिसका जो कार्य होता है वही उस कार्य को करता है। द्र.स. गाथा 33 के अनुसार 'जोगापयडि........' योग से प्रकृति और प्रदेश बन्ध होते हैं, स्थिति और अनुभाग बन्ध कदापि नहीं। उसी प्रकार कषाय के द्वारा स्थिति और अनुभाग बन्ध होते हैं प्रकृति और प्रदेश बन्ध नहीं होते। इसी तरह आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने जो चार प्रकार के बन्ध में मिथ्यात्व को अकिञ्चित्कर कहा है उसका मूल कारण यही है कि मिथ्यात्व का कार्य विपरीत श्रद्धान कराना है। वह न तो कषायरूप है न ही योगरूप, फिर उसके द्वारा न तो प्रकृति और प्रदेश बन्ध हो सकता है और न ही स्थिति और अनुभाग बन्ध। इसलिए पूज्य आचार्य श्री विद्यसागर जी महाराज का यह कथन परम सत्य है कि चारों प्रकार के बन्ध में मिथ्यात्व अकिञ्चित्कर है अर्थात् कुछ नहीं करता।

प्रश्न औदारिक काययोग तथा काययोग का उत्कृष्ट काल कितना है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 250)*

उ□ ार– त्रस जीवों के कोई भी एक योग अन्तर्मुहूर्त से ज्यादा नहीं रहता अत: त्रस जीवों की अपेक्षा योगों का

उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा औदारिक काययोग का उत्कृष्ट काल कुछ कम 22 हजार वर्ष है और काययोग का उत्कृष्ट काल अनन्तकाल है। €योंकि उनमें अन्य योग नहीं पाया जाता है। केवल काययोग के अलावा अन्य योग अन्तर्मुहूर्त से अधिक नहीं रह सकते।

प्रश्न औदारिक मिश्र काययोग में जघन्य अन्तर कितना मानना चाहिये ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 251)

उ ार- यदि कोई लŽध्यपर्याप्तक जीव ऋजुगति से मरण करके पुन: लŽध्यपर्याप्तक बन जाये तो कोई अन्तर नहीं बना और यदि वही जीव औदारिक मिश्रकाययोग में मरण करे और एक मोड़ा लेकर पुन: औदारिक मिश्रकाययोग में उत्पन्न हो तो जघन्य अन्तर एक समय बन जाता है अर्थात् एक मोड़े वाली विग्रहगति में एक समय तक कार्मणकाय योग हो गया। इस प्रकार औदारिक मिश्रकाययोग का जघन्य अन्तर एक समय बन जाता है।

प्रश्न या आहारक काययोग का काल एक समय हो सकता है ? यदि हो सकता है तो कैसे ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 251)

उ ार- किन्हीं मुनिराज के आहारक मिश्रकाययोग हुआ फिर एक समय के लिए आहारक काययोग होकर मनोयोग अथवा वचनयोग हो गया तो आहारक काययोग का काल एक समय बन जाता है अथवा आहारक शरीर के लौटते समय मनोयोग अथवा वचनयोग था। औदारिक शरीर में प्रवेश से एक समय पूर्व आहारक काययोग हो गया। इस तरह आहारककाययोग का काल एक समय बन जाता है। आहारक शरीर को जाकर लौटने में अन्तर्मुहूर्त समय लगता है। इसमें व्याघात नहीं होता है। हमेशा पहले आहारक मिश्रकाययोग होता है तदुपरान्त आहारककाययोग होता है।

प्रश्न निस्सरणात्मक अशुभ तैजस शरीर मुनिराज के बाँये कन्धे से निकलकर योजनों तक जलाने का काम करता है फिर भी उसे योग यों नहीं माना ? आचार्यों को तैजसकाययोग भी कहना चाहिए था ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 252)*

उ ार- पञ्चसंग्रह श्लोक क्रं.179 के अनुसार तैजसशरीर के द्वारा किञ्चित् ाी उपभोग नहीं होता है इसलिए इसके द्वारा न ही कर्म बँधते हैं और न ही कर्मनिर्जरा होती है। तैजस शरीर नामकर्म का उदय आत्मा की योगशक्ति में कारण नहीं होता है। इसलिए आचार्यों ने तैजसकाययोग नहीं कहा।

कोई विद्वान् ऐसा भी कहते हैं कि यह तैजस शरीर आत्मा के प्रयोग और प्रयत्न के बिना ही निकल जाता है। इसलिए आत्मा का प्रयोग न होने से इसके द्वारा योग नहीं कहा गया है।

प्रश्न कार्मण काययोग का उत्कृष्ट अन्तर कितना है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 254)*

उ ार- केवली समुद्घात के प्रतर और लोकपूरण में कार्मण काययोग होता है उसके बाद उन मुनिराजों के द्वारा कार्मण काययोग नहीं होता, इसलिए केवली समुद्घात की अपेक्षा कार्मण काययोग में अन्तर नहीं होता है। अन्य जीवों की अपेक्षा यदि कोई जीव ऋजुगति से जन्म-मरण करता रहे, उसके मोड़े वाली गति होवे ही नहीं ऐसा

असं यातासं यात कल्पकाल तक संभव है। इस प्रकार कार्मणकाययोग का उत्कृष्ट अन्तर असं यातासं यात काल मानना चाहिये। (एक कल्पकाल = एक उत्सर्पिणी का और एक अवसर्पिणी का काल)

प्रश्न कार्मणकाययोग में जब केवली भगवान् होते हैं तब उनके औदारिक शरीर नामकर्म का उदय होता है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 254)*

उ□ ार- कार्मण काययोग विग्रहगति में या केवली समुद्घात में होता है किन्तु उन समयों में औदारिक, वैक्रियिक या आहारक शरीर नामकर्म का उदय नहीं रहता जिसके कारण आहार वर्गणाओं का ग्रहण नहीं होता है मात्र कार्मणवर्गणाओं का ग्रहण होता है। अत: कार्मण काय योग के काल में औदारिक शरीर आदि नामकर्म का उदय नहीं होता।

वेद मार्गणा

प्रश्न किस गति में कौन-कौन से वेद पाये जाते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 254)*

उ□ ार- 1. नरकगति में मात्र नपुंसक वेद है।
2. स मूर्च्छन तिर्यञ्च अर्थात् एक से चतुरिन्द्रिय तक तथा पञ्चेन्द्रिय स मूर्च्छन तिर्यञ्च मात्र में नपुंसक वेद पाया जाता है।
3. गर्भस्थ तिर्यञ्च में तीनों वेद पाये जाते हैं।
4. कर्मभूमि स बन्धी आर्यखण्ड के मनुष्यों में तीनों वेद पाये जाते हैं।
5. कर्मभूमि के लेच्छखण्डों में नपुंसक वेद नहीं होता।
6. भोगभूमिज और कुभोगभूमिज मनुष्यों में स्त्री और पुरुष दो ही वेद होते हैं।
7. स मूर्च्छन मनुष्यों के मात्र नपुंसक वेद होता है।
8. देवों में मात्र पुरुष वेद और स्त्री वेद पाया जाता है।
9. मनुष्यों में नौवें गुणस्थान के सवेदभाग के बाद कोई भी वेद नहीं पाया जाता है।

प्रश्न एक जन्म में भाववेद बदलता रहता है या एक ही वेद रहता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 255)*

उ□ ार- जैसे कोई एक कषाय अन्तर्मुहूर्त से अधिक नहीं होती, उस तरह वेद को नहीं मानना चाहिये। जन्म के समय जो भाववेद होता है वही मरण तक पाया जाता है। द्रव्यवेद के स बन्ध में भी इसी प्रकार समझना चाहिये।

प्रश्न हम तो ऐसा सुनते हैं कि कोई स्त्री, पुरुष बन गई या कोई पुरुष, स्त्री बन गया। इस तरह तो ऐसा लगता है कि द्रव्य वेद परिवर्तनशील है। स्पष्ट करें। *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 255)*

उ□ ार- वेद परिवर्तन करने वाले डॉ□ टरों के अनुसार जिन जीवों का वेद अर्थात् लिङ्ग स्पष्ट नहीं होता उन्हीं जीवों के बारे में ऐसा सुना जाता है। जैसे- किसी जीव का लिङ्ग स्पष्ट नहीं था और वह पुरुष के नाम से तथा पुरुष के वेश में रहता था। जब वह बड़ा हुआ और उसके स्त्रीत्वपने के चिह्न स्पष्ट होने लगे तो डॉ€टरों ने

ऑपरेशन करके स्त्री घोषित कर दिया। ऐसे जीवों के बारे में अखबारों में समाचार दिये जाते हैं। डॉ€टरों के अनुसार ऐसी कोई भी सर्जरी नहीं है जो पुरुष को स्त्री तथा स्त्री को पुरुष बना सके। यदि कोई ऊपर से अङ्ग लगाकर या सर्जरी से दूसरे लिङ्गों को जोड़ लेता है। जैसे– टेनिस प्लेयर नवरातिलोवा ने पुरुष होने पर भी स्त्री के अङ्ग लगवा लिये थे और उसकी गणना स्त्रियों में होने लगी थी परन्तु ऐसी स्त्रियों के वास्तव में द्रव्य स्त्री वेद नहीं है €योंकि उनके पुत्र उत्पZि नहीं हो सकती।

प्रश्न पञ्चाध्यायी 2/ 1081 में असैनी पञ्चेन्द्रिय के मात्र नपुंसक वेद लिखा है। 2/ 1092 में कहा है कि किसी एक पर्याय में कोई जीव क्रम अनुसार तीनों वेद वाला हो सकता है। या पञ्चाध्यायी का यह कथन आगम स मत है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 256)*

उ ार– पञ्चाध्यायी अनार्ष ग्रन्थ है। उसको पहले कुछ लोग अमृतचन्द्र द्वारा रचित कहते थे परन्तु यह सिद्ध हो चुका है कि यह तो पण्डित राजमल की सत्रहवीं शताŽदी की रचना है। इसके उपर्युक्त कथन आगम स मत नहीं हैं। वास्तविकता यह है कि असैनी पञ्चेन्द्रियों में तीनों वेद पाये जाते हैं तथा एक पर्याय में भाववेद का परिवर्तन नहीं होता। इस प्रकार पञ्चाध्यायीकार का लिखना आगम स मत नहीं है।

प्रश्न वेदवैष य €या है और यह किन जीवों के होता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 257)*

उ ार– वेद की विषमता वैष य कहलाता है अर्थात् जहाँ द्रव्य वेद अलग हो और भाव वेद अलग हो उसे वेदवैष य कहते हैं। ऐसा €यों होता है ? €योंकि द्रव्यवेद नामकर्म के उदय से बनता है। इसका स बन्ध शारीरिक रचना से है और भाववेद नोकषाय कर्म के उदय से होता है। नारकियों में, देवों में, स मूर्च्छन जीवों तथा भोगभूमियाँ जीवों में वेदवैष य नहीं पाया जाता। गर्भ जन्म वाले मनुष्य और तिर्यञ्चों में वेदवैष य पाया जाता है। जैसे– कोई पुरुष द्रव्य से तो पुरुष हो और भाव से स्त्री या नपुंसकवेदी हो। इसका निर्णय हमारे मतिश्रुत ज्ञान से संभव नहीं होता है। अनुमानत: झाँसी की रानी, किरण बेदी आदि में वेदवैष य हो सकता है।

प्रश्न गो मटसार जीवकाण्ड में मनुष्यनी के 14 गुणस्थान कहे हैं। तिर्यञ्चनी श Žद भी दिया है और स्वर्गों में देवाङ्गना कहा है। इससे या अभिप्राय समझना चाहिये ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 257)

उ ार– मनुष्यनी से तात्पर्य उन पुरुषों से है जो द्रव्य से पुरुष, भाव से स्त्री होते हैं। तिर्यञ्चनी का कथन भी धवला आदि ग्रन्थों में या गो मटसार जी में द्रव्य से पुरुष और भाव से स्त्रीवेदी तिर्यञ्चों के लिए कहा गया है। इन शास्त्रों में एकशŽद और आता है 'तिर्यञ्चयोनिमति'। इससे तात्पर्य है जो द्रव्य और भाव दोनों से स्त्री है। देवाङ्गना से तात्पर्य द्रव्य एवं भाव से स्त्री वेद का है €योंकि देवों में वेदवैष य नहीं है।

प्रश्न पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में नपुंसक जीव कौन–कौन होते हैं ?

उ ार– पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्पन्न होने वाले स मूर्च्छन जीव नियम से नपुंसक ही होते हैं। जैसे– तन्दुल मच्छ, महामत्स्य आदि। कोई–कोई गर्भज तिर्यञ्च भी नपुंसकवेद वाले होते हैं।

प्रश्न क्षपकश्रेणी वाले जीव के स्त्रीवेद या नपुंसकवेद कैसे संभव है ?

उ□ ार- वेदवैष य के साथ कोई मिथ्यादृष्टि जीव मनुष्य पर्याय में उत्पन्न हुआ, फिर स य€त्व प्राप्त कर मुनि अवस्था धारण की। पुन: क्षायिक स य€त्व प्राप्त कर क्षपक श्रेणी आरोहण की। इस अपेक्षा से स्त्रीवेद या नपुंसक भाववेद वाले द्रव्यपुरुषवेदी मनुष्यों द्वारा क्षपक श्रेणी आरोहण की जा सकती है, अन्य किसी भी विवक्षा से यह कथन घटित नहीं होता अर्थात् क्षायिक स य€त्व के साथ मनुष्य पर्याय में उत्पन्न होने वाला नियम से द्रव्य और भाव दोनों से पुरुषवेदी ही बनता है, अन्य नहीं।

कषाय मार्गणा

प्रश्न €या संज्वलन कषाय भी पत्थर की रेखा के समान होती है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 257)*

उ□ ार- सर्वघाती स्पर्धकों की शक्ति को पत्थर की रेखा के समान कहा जाता है। यदि हमारा चतुर्थ गुणस्थान है तो हमारे अनन्तानुबन्धी का अनुदय तथा अप्रत्या यानावरण, प्रत्या यानावरण तथा संज्वलन के सर्वघाती स्पर्धकों का उदय, जो पत्थर की रेखा के समान होता है, विद्यमान है। इसलिए संज्वलन कषाय में भी पत्थर की रेखा के समान स्पर्धक होते हैं।

प्रश्न चारों कषायों में क्रोध, मान और माया को हेय कहा है परन्तु लोभ को कथञ्चित् हेय और उपादेय □ यों कहा है। *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 258)*

उ□ ार- क्रोध, मान और माया ये तीनों तो अशुभ ही होती हैं किन्तु लोभ कषाय शुभ रागरूप भी होती है। उसके दो भेद हैं-प्रशस्त और अप्रशस्त। धर्म, धर्म के आयतन तथा धार्मिक क्रियाओं में उल्लास होना अथवा राग होना प्रशस्त लोभ के अन्तर्गत आता है। इसके विपरीत सांसारिक वस्तुओं में राग या इच्छा होना अप्रशस्त लोभ है जो पाप का कारण है। इससे अशुभास्रव होता है जबकि प्रशस्त लोभ से शुभास्रव, पुण्यबन्ध तथा आत्मकल्याण होता है।

प्रश्न अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना कैसे होती है ?

उ□ ार- अनन्तानुबन्धी के स पूर्ण द्रव्य को अन्य कषाय और नव नोकषायरूप परिणमा देना विसंयोजना कहलाती है। इसमें अनन्तानुबन्धी की स□ ाा समाप्त हो जाती है। इसे चारों गतियों के सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक क्षायोपशमिक स य€त्वी जीव कर सकते हैं और उसका कारण परिणामों की विशुद्धि है।

ज्ञान मार्गणा

प्रश्न मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, केवलज्ञान के अंश हैं या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 258)*

उ□ ार- ज्ञान गुण है और मतिज्ञान आदि पाँच उसकी पर्यायें हैं। एक पर्याय अन्य पर्याय का अंश नहीं हो सकती तथा केवलज्ञान क्षायिक ज्ञान है, पूर्ण ज्ञान है और मतिश्रुतादि ज्ञान क्षायोपशमिक, अपूर्ण ज्ञान हैं तो क्षायोपशमिक

ज्ञान, क्षायिक ज्ञान की पर्याय कैसे हो सकता है ? यदि मति आदि ज्ञान केवलज्ञान के अंश होते तो योंकि केवलज्ञान की एक किरण भी स पूर्ण लोक को जानने की क्षमता रखती है इसलिए मतिश्रुत ज्ञान के द्वारा भी, किरण होने के कारण स पूर्ण लोक का ज्ञान होना चाहिये। परन्तु ऐसा नहीं होता अत: मति आदि ज्ञान केवलज्ञान के अंश नहीं हैं। पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज भी इसी मत का प्रतिपादन करते हैं। परन्तु एक मान्यता यह भी है कि ज्ञान सामान्य और केवलज्ञान ये एक ही तो वस्तु है। ज्ञान का आवरण रहित हो जाना ही तो केवलज्ञान है। ज्ञानगुण को केवलज्ञानावरण ने ढका है। उसके ढकने पर भी तो ज्ञानगुण प्रकट है। उसको चार आवरणों ने ढका है और उनके क्षयोपशम से जीवों को मति आदि चार ज्ञानों का क्षयोपशम होता है तो यह ज्ञान धवल जी पु. 1/ 37 के अनुसार कदाचित् केवलज्ञान के अंश हैं। मु तार साहब तथा पण्डित जवाहरलाल जी भीण्डर वालों ने बृहत् जिनोपदेश में दोनों मान्यतायें स्पष्ट की हैं अर्थात् एक अभिप्राय से मत्यादि केवलज्ञान के अंश हैं, एक अभिप्राय से नहीं भी।

प्रश्न पर्याय नाम का मतिज्ञान भी होता है या श्रुतज्ञान ही होता है या दोनों होते हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 260)

उ ार- पर्याय ज्ञान कहें या लŽध्यक्षरज्ञान कहें या निरावरण पर्यायज्ञान कहें या सर्वजघन्यश्रुतज्ञान कहें, ये सभी श द पर्यायवाची हैं। पर्यायज्ञान, श्रुतज्ञान का सर्वजघन्य भेद है अर्थात् कोई सूक्ष्म निगोदिया ल ध्यपर्याप्तक जिसको 6012 ाव लेने हों वह 6011 वाँ भव लेने के बाद तीन मोड़े द्वारा 6012 वाँ भव लेने जा रहा हो तो उसके विग्रह गति के पहले समय में यह सर्वजघन्य पर्यायश्रुतज्ञान होता है। इससे कम ज्ञान किसी जीव को नहीं होता। यद्यपि इसका आवरक श्रुतज्ञानावरण कर्म है परन्तु इसके सर्वघाती स्पर्धक का उदय किसी जीव के नहीं होता। अन्यथा उसके उदय होने से जीव, अजीव बन जायेगा। इस पर्याय ज्ञान के भी अनन्तानन्त अवि ागी प्रतिच्छेद अर्थात् श€त्यंश होते हैं। इस जीव के उस समय जो मतिज्ञान पाया जाता है वह भी सर्वजघन्य पर्याय मतिज्ञान कहलाता है।

जिन जीवों के पर्याय श्रुतज्ञान होता है उनके मतिज्ञान को भी पर्याय मतिज्ञान कहा जाता है। मतिज्ञान पूर्वक ही श्रुतज्ञान होता है अत: कारण में कार्य का उपचार करके पर्याय श्रुतज्ञान के कारण को पर्याय मतिज्ञान कहा जाता है। इसके भी अनन्तानन्त अवि ागी प्रतिच्छेद होते हैं। इस लŽध्यक्षर (पर्याय) मति या श्रुतज्ञान के आवरक, मतिज्ञानावरण या श्रुतज्ञानावरण के सर्वघाती स्पर्धकों का उदय किसी भी जीव के नहीं हो सकता योंकि सर्वघाती स्पर्धकों का उदय हो जाने पर फिर उस जीव के ज्ञान समाप्त हो जायेगा और वह अजीव हो जायेगा।

प्रश्न तŽवार्थसूत्र का एक सूत्र ''श्रुतमनिन्द्रियस्य'' अर्थात् श्रुतज्ञान मन का विषय है तो फिर असंयमी एकेन्द्रिय जीवों के श्रुतज्ञान होता है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 264)*

उ ार- इस सूत्र में स यग्दृष्टी जीव के श्रुतज्ञान से अभिप्राय अर्थात् सुश्रुतज्ञान से प्रयोजन है। इसके गुणस्थान 4-12 तक हैं अर्थात् सुश्रुत ज्ञान मात्र सैनी पञ्चेन्द्रिय जीवों के ही हो सकता है। एकेन्द्रिय से असैनी पञ्चेन्द्रिय

जीवों को कुश्रुतज्ञान ही होता है और उससे उन जीवों के हित में प्रवृ□ ा और अहित से निवृ□ ा देखी जाती है। जैसे- एक चींटी नमक और मिश्री के ढेले को सूंघकर नमक से दूर होती है। यहाँ गन्ध का ज्ञान होना तो कुमतिज्ञान है परन्तु निवृ□ ा की क्रिया कुश्रुतज्ञान है।

प्रश्न अङ्गपूर्व के ज्ञान होने का क्रम एवं नियम □ या है ?

उ□ ार- श्री धवला पुस्तक 13 के अनुसार यह आवश्यक नहीं है कि अङ्गपूर्व का ज्ञान क्रम से ही हो, यह ज्ञान अक्रम से भी होता है। साथ ही श्रुतज्ञानावरण कर्म के विशेष क्षयोपशम होने पर उपदेश के बिना भी हो जाता है।

प्रश्न ग्यारह अंग के पाठी मुनिराज उसी भव में मिथ्यात्व या असंयम को प्राप्त हो सकते हैं या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 265)

उ□ार- ग्यारह अंग के पाठी मुनिराज उसी ाव में मिथ्यात्व या असंयम को प्राप्त हो सकते हैं। ग्यारह अंग व दश पूर्व के ज्ञाता जो मुनिराज 500 महाविद्याओं तथा 700 लघुविद्याओं को ग्रहण कर लेते हैं उनका भी संयम और स य€त्व दोनों नष्ट हो जाते हैं। शास्त्रों में ग्यारह रुद्रों का वर्णन आता है वे सभी इसी प्रकार ्रष्ट होते हैं।

प्रश्न रुद्र कौन होते हैं ?

उ□ ार- शास्त्रों में 63 शलाका पुरुष, 24 तीर्थङ्करों के 48माता-पिता, 11 रुद्र, 9 नारद, 24 कामदेव तथा 14 कुलकर सब मिलाकर 169 उ□ ामपुरुष कहे गये हैं। इनमें रुद्र भी आते हैं। ये रुद्र, मुनि और आर्यिका के संयोग से उत्पन्न होते हैं। बाद में किसी आश्रम में बड़े होकर मुनि बनकर ग्यारह अंग व दश पूर्व के पाठी होकर सभी विद्याओं को स्वीकार कर संयम और स य€त्व से च्युत हो जाते हैं। विद्याओं के ग्रहण करने से वे अत्यन्त शक्तिशाली होने के कारण महान भोगी, कामी तथा अत्याचारी हो जाने से नियम से नरक जाते हैं।

प्रश्न अभिन्नदशपूर्वी उसी भव में संयम और स य€त्व से च्युत होते हैं या नहीं ? €या गृहस्थ को अङ्ग अथवा पूर्व का ज्ञान हो सकता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 265)*

उ□ ार- अभिन्नदशपूर्वी उसी भव में संयम से च्युत नहीं होते और आगे भी स य€त्व से च्युत नहीं होते। ये तो महान् मुनिराज होते हैं और कुछ ही भवों में नियम से मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

किसी गृहस्थ को, प्रतिमाधारी को या ऐलक और क्षुल्लक को एक भी अङ्ग का ज्ञान नहीं होता। आर्यिकाओं को ग्यारह अङ्ग तक का ज्ञान हो सकता है परन्तु पूर्व का ज्ञान संभव नहीं। आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के अनुसार अङ्ग और पूर्व में इतना अन्तर है जितना तालाब और समुद्र में। अभव्य जीव को मुनि अवस्था प्राप्त कर ग्यारह अङ्ग तक का ज्ञान संभव है। भव्यमुनि को, जिसको बाद में मिथ्यात्वी बनना है, उन्हें ग्यारह अंग-दस पूर्व तक का ज्ञान संभव है तथा महान स य€त्वी और संयमी मुनिराजों को द्वादशांग का ज्ञान हो सकता है।

प्रश्न इस भव में हम जो ज्ञान प्राप्त करते हैं वह अगले भव में साथ क्यों नहीं जाता ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 265)

उत्तर– मृत्यु के समय अत्यन्त वेदना और संक्लेश होने से ज्ञानावरणादि कर्मों का तीव्र उदय हो जाता है जिससे इस भव में प्राप्त ज्ञान अन्त समय में नष्ट हो जाता है। वृद्धावस्था में मन और इन्द्रियों के शिथिल हो जाने से भी ज्ञान विस्मृत हो जाता है। जिन जीवों को मृत्यु के समय वेदना नहीं होती और जो ऋजुगति से अगले भव में उत्पन्न होते हैं उनके प्राय: पूर्वभव का ज्ञान नष्ट नहीं होता। देखा भी जाता है कि कोई–कोई बालक छोटी सी उम्र में ही अनेक भाषाओं या कलाओं का जानकार हो जाता है। इसमें उपर्युक्त कारण मानना चाहिये। तीसरे नरक से नीचे, जहाँ धर्मोपदेश नहीं मिलता वहाँ भी पूर्व भव के संस्कार के कारण सम्यग्दर्शन हो जाता है।

प्रश्न राजवार्तिक 1/ 15 की बारहवीं वार्तिक में लिखा है कि अवग्रह के पश्चात् संशय होता है। उसके बाद ईहा ज्ञान होता है। तो यह संशय, ज्ञान है या दर्शन ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 265)

उत्तर– संशय भी ज्ञान तो है पर प्रमाण नहीं है क्योंकि यह पदार्थ के दो विशेषों के बीच डावांडोल रहता है तथा संशय में न तो किसी एक का निश्चय रहता है न ही किसी एक के प्रति झुकाव होता है। संशय के बाद विशेष के निर्णय की जिज्ञासा का होना ही ईहा है। संशय में जिज्ञासा नहीं होती अत: वह प्रमाण ज्ञान नहीं है।

संशय को दर्शन भी नहीं माना जा सकता क्योंकि यह अवग्रह के बाद होता है जबकि दर्शन होता तो अवग्रह से पूर्व होना था।

प्रश्न अनुगामी, अननुगामी आदि भेद क्षयोपशम निमित्तक (गुणप्रत्यय) अवधिज्ञान के ही होते हैं या भवप्रत्यय के भी संभव हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 266)*

उत्तर– तत्वार्थसार ग्रन्थानुसार ये छहों भेद दोनों प्रकार के अवधिज्ञान में पाये जाते हैं परन्तु तत्वार्थसूत्र और उनकी टीकानुसार ये छहों भेद गुणप्रत्यय अवधिज्ञान के हैं न कि भवप्रत्यय के। जो देव सर्वार्थसिद्धि से आते हैं वे अवधिज्ञान सहित जन्म लेते हैं। उनका अवधिज्ञान भवप्रत्यय है परन्तु किन्हीं आचार्यों ने उस भवप्रत्यय अवधिज्ञान को भी अनुगामी कहा है।

प्रश्न क्या देवगण किसी मनुष्यादि के मुख से किसी अन्य के सम्बन्ध में अगला भवादि बतला सकते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 267)*

उत्तर– देवों के द्वारा कुछ भी बताने की चर्चायें वर्तमान में सुनने को मिलती हैं। इन सब प्रसङ्गों में देव लोग अन्य के मुख से ही अपनी मन चाही बात कहलवाते हैं। वे स्वयं इस पञ्चमकाल में सामने आकर बताते हुये नहीं देखे जाते अत: अन्य के मुख से कुछ भी कहलवाना देवों के लिए संभव है।

प्रश्न पञ्चमकाल में अवधिज्ञान की उत्पत्ति संभव है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 268)*

उत्तर– कल्की के समय (जैनधर्म विध्वंसक राजा) में विद्यमान मुनिराज के अन्तर्मुहूर्त के लिए अवधिज्ञान की उत्पत्ति होना शास्त्रों में कहा है अर्थात् इनके अलावा अन्य किसी को अवधिज्ञान होने का प्रमाण शास्त्रों में नहीं

है। पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज का कहना है कि किसी भी शास्त्र में पंचमकाल में अवधिज्ञान पाये जाने का निषेध नहीं पाया जाता। इससे ध्वनित होता है कि पंचमकाल में जीवों के किञ्चित् क्षयोपशम वाला अवधिज्ञान संभव है।

प्रश्न अवधिज्ञान की यह परिभाषा भी सुनने में आती है कि जो अधिकतर नीचे के विषय को जानता हो। (सर्वार्थसिद्धि 1/9 की टीका) यहाँ अधिकतर नीचे के विषय से या समझना चाहिये ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 269)*

उ ार- आचार्य वीरसेनस्वामी के अनुसार अवधिज्ञान का मु य विषय पुद्गल है। पुद्गल भारी होने के कारण नीचे कहा जाता है। अत: नीचे का विषय अर्थात् पुद्गल द्रव्य समझना चाहिये। तžवार्थवृŽि में इस स बन्ध में यह कहा गया है कि देवगण ऊपर तो अपने ध्वजदण्ड तक ही जानते हैं जबकि उनका अवधिज्ञान नीचे की अपेक्षा सातवें नरक तक जानता है। अत: नीचे का क्षेत्र अधिक होने से 'नीचे का विषय' ऐसा कहा गया है।

प्रश्न तीर्थङ्करों की माता को अवधिज्ञान होता है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 269)*

उ ार- महापुराणादि शास्त्रों में माता के द्वारा सोलह स्वप्नों का फल पूछने पर भगवान् के पिता द्वारा अवधिज्ञान से फल जानकर बताने का प्रसङ्ग पढ़ने में आता है। यदि तीर्थङ्कर की माता को अवधिज्ञान होता तो फिर इस प्रकार यों पूछतीं अर्थात् तीर्थङ्कर के पिता को अवधिज्ञान होता है, माता को नहीं।

प्रश्न स्वर्ग में सूर्य चन्द्रमा आदि नहीं होते, फिर उनको अष्टाह्निका पर्व आदि का ज्ञान कैसे होता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 269)*

उ ार- यह सच है कि मनुष्यलोक में ही सूर्यादि के गमनानुसार दिन-रात आदि का विभाग होता है। देव अवधिज्ञानी होते हैं। वे अवधिज्ञान के द्वारा तिथि आदि का ज्ञान करके अष्टाह्निकादि पर्व में नन्दीश्वर द्वीपादि जाकर पूजा विधान आदि बड़े भक्ति ाव से करते हैं।

प्रश्न मनुष्य और तिर्यञ्च में कौनसा अवधिज्ञान किनको होता है और कौन-कौन से गुणस्थानों में होता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 270)*

उ ार- अवधिज्ञान तीन प्रकार का होता है-

1. देशावधि 2. परमावधि और 3. सर्वावधि।

देशावधि ज्ञान चारों गतियों के जीवों को होता है। यह चतुर्थ से द्वादश गुणस्थान तक होता है। परमावधि और सर्वावधिज्ञान मनुष्य पर्याय में चरमशरीरी मुनिराजों के होता है और इनके गुणस्थान छ: से बारह तक होते हैं। विभङ्गज्ञान चारों गतियों के जीवों के होता है और यह पहले व दूसरे गुणस्थान में होता है। नारकियों के देशावधि

और विभङ्गज्ञान और इसी तरह अन्य गतियों में भी दोनों प्रकार के अवधिज्ञान पाये जाते हैं। अवधिज्ञानी के तीसरा गुणस्थान होने पर मिश्र अवधिज्ञान होता है।

प्रश्न अवधिज्ञानी और मन:पर्ययज्ञानी जीव अनन्त को जानते हैं या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 271)

उ ार- अवधिज्ञान में सबसे बड़ा अवधिज्ञान सर्वावधि है। वह भी उत्कृष्ट असं यातासं यात तक जानता है। परन्तु जघन्य अनन्त को नहीं जानता। तात्पर्य यह है कि अवधिज्ञान एवं मन:पर्ययज्ञान उत्कृष्ट असं यातासं यात तक जानते हैं। अनन्त का ज्ञान तो मात्र केवलज्ञान से ही होता है।

प्रश्न अवधिज्ञान पूरे आत्मप्रदेशों से होता है या शरीर के कुछ चिह्नों से होता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 272)

उ ार- अवधिज्ञान का क्षयोपशम तो आत्मा के समस्त प्रदेशों में होता है। नारकी, देव, तीर्थङ्कर गृहस्थ तथा परमावधि और सर्वावधि वाले मुनिराज, स पूर्ण आत्मप्रदेशों से अवधिज्ञान द्वारा जानते हैं। परन्तु देशावधि वाले मनुष्य नाभि से ऊपर के भाग में बने हुए शंख, कमल, स्वस्तिक, कलश आदि शुभ चिह्नों में स्थित आत्मप्रदेशों से जानते हैं। ऐसे जीवों के यदि स य€त्व नष्ट होकर मिथ्यात्व हो जाये तो नाभि के भाग से ऊपर बने हुए उपर्युक्त चिह्न मिट जाते हैं। उनके स्थान पर नाभि के नीचे के स्थानों पर शूकर, नेवला आदि अशुभ चिह्न बन जाते हैं और विभङ्गज्ञान वाले मनुष्य उन अशुभचिह्नों में स्थित आत्मप्रदेशों द्वारा कुअवधिज्ञान से जानते हैं। जिन जीवों के एक से अधिक चिह्न होते हैं वे कभी एक चिह्न से जानते हैं कभी दो अथवा तीन या अधिक चिह्नों से जानते हैं। परन्तु जानना एक सा ही होता है अर्थात् अधिक चिह्नों से जानने पर जानना अधिक नहीं हो जाता। शरीर में आत्मप्रदेश घड़ी की सुई की तरह नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे घूमते रहते हैं। आत्मा के जो प्रदेश उन चिह्न वाले स्थानों पर आते-जाते हैं वे ही प्रदेश अवधिज्ञान के द्वारा जानते हैं।

प्रश्न अवधिज्ञान स बन्धी चिह्नों में तथा इन्द्रियों में €या अन्तर है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 273)*

उ ार- इन दोनों में बहुत अन्तर है-

1 इन्द्रियों की सं या नियत होती है परन्तु चिह्नों की सं या नियत नहीं होती।

2 इन्द्रियों का आकार नियत होता है परन्तु चिह्नों का आकार नियत नहीं होता है।

3 इन्द्रियों की रचना अङ्गोपाङ्ग नामकर्म के उदय से होती है जबकि चिह्नों की रचना शरीर नामकर्म के उदय से होती है।

4 इन्द्रियाँ ज्ञान में सहायक होती है परन्तु ये चिह्न ज्ञान में सहायक नहीं होते हैं।

5 द्रव्येन्द्रिय में जो आ यन्तर निवृ‍ि होती है उसमें आत्मप्रदेशों में इन्द्रियरूप रचना होती है अर्थात् वे ही प्रदेश वहाँ नियत होते हैं। जबकि चिह्नों में आत्मप्रदेश बदलते रहते हैं, इन चिह्नों को शास्त्रों में करण कहा है। करण उसे कहते है जिसके द्वारा कार्य किया जाता है।

प्रश्न अवधिज्ञान के द्वारा विग्रहगति में गमन करने वाली आत्मा देखी जा सकती है या नहीं ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 274)

उ ार– आत्मा जब कर्ममल से रहित होती है तब अमूर्तिक होती है। जब कर्ममल से सहित होती है तब मूर्तिक होती है। इस तरह आत्मा के अमूर्तिकपने में अनेकान्त है। अत: जब कोई आत्मा शरीर छोड़कर विग्रहगति से गमन करती है तब उसके साथ कार्मण शरीर और तैजस शरीर तो रहता ही है। ये दोनों शरीर पौद्गलिक वर्गणाओं से निर्मित हैं अत: इन दोनों शरीरों से आत्मा भी मूर्तिक है। अवधिज्ञान मूर्तिक पदार्थों को जानता है इसलिए विग्रहगति स्थित आत्मा, अवधिज्ञान तथा मन:पर्ययज्ञान दोनों के द्वारा जानने योग्य है।

प्रश्न चौबीस ठाणा में अवधिदर्शन के गुणस्थान चार से बारह कहे गये हैं। ज्ञान तो दर्शन पूर्वक होता है तो कुअवधिज्ञान से पहले कौनसा दर्शन होता होगा योंकि कुअवधिदर्शन तो होता ही नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 275)*

उ ार– धवलाकार ने विभङ्गज्ञान से पहले भी अवधिदर्शन कहा है। उनके अनुसार विभङ्गदर्शन का अवधिदर्शन में अन्तर्भाव हो जाता है। तात्पर्य यह है कि चौबीस ठाणा लिखते समय हम अवधिदर्शन के गुणस्थान 4 से 12 ही लिखेंगे। परन्तु वि ाङ्गज्ञान से पहले विभङ्गदर्शन मानेंगे तो सही, परन्तु उसका अवधिदर्शन में अन्तर्भाव मानेंगे।

प्रश्न चारों गतियों में विभङ्गज्ञान का काल कितना है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 275)*

उ ार– नरक गति में विभङ्गज्ञान का उत्कृष्टकाल 33 सागर प्रमाण।

तिर्यञ्च और मनुष्यगति में विभङ्गज्ञान का उत्कृष्ट और जघन्य काल अन्तर्मूहुर्त।

देवगति में विभङ्गज्ञान का उत्कृष्टकाल 31 सागर प्रमाण है €योंकि इससे अधिक आयु वाले देव नियम से स यग्दृष्टि ही होते हैं।

प्रश्न मनुष्य और तिर्यञ्चगति में विभङ्गज्ञान का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त €यों कहा?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 276)

उ ार– मनुष्य और तिर्यञ्च में विभङ्गज्ञान की उत्पŽि दो तरह से होती है।

1. जब किसी अवधिज्ञानी जीव का स य€त्व नष्ट हो जाता है तब उसका ज्ञान विभङ्गज्ञान हो जाता है और वह अन्तर्मुहूर्त से अधिक नहीं रह पाता। उसके बाद वह ज्ञान नष्ट हो जाता है।

2. प्रश्न है €या मनुष्य वा तिर्यञ्च के विभङ्गज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता ? इसका उŽार यह है कि शरीर को अत्यन्त कष्ट देने वाले द्रव्य संयम आदि के द्वारा भी विभङ्गज्ञान उत्पन्न हो सकता है। परन्तु इस विभङ्गज्ञान का काल भी उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त है इससे अधिक नहीं। उस कष्टकारी द्रव्यसंयम के द्वारा अवधिज्ञानावरण का क्षयोपशम होने से विभङ्गज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

प्रश्न अपर्याप्तक अवस्था में विभङ्गज्ञान किन गतियों में पाया जाता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 276)

उ ार- किसी भी गति में अपर्याप्तक अवस्था में विभङ्गज्ञान नहीं पाया जाता। यह तो पर्याप्तक अवस्था में ही संभव है। कोई मिथ्यादृष्टि जीव विभङ्गज्ञान लेकर अगले भव में नहीं जा सकता, विभङ्गज्ञान पर्याप्त अवस्था में ही उत्पन्न होता है।

प्रश्न मन:पर्ययज्ञान किस गुणस्थान में उत्पन्न होता है और किन-किन गुणस्थानों में पाया जाता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 277)

उ ार- मन:पर्ययज्ञान की उत्पZा अप्रमžा गुणस्थान में होती है। उसके पश्चात् वह प्रमžाविरत गुणस्थान में भी रहता है। इसके गुणस्थान 6 से 12 तक है। मन:पर्यय ज्ञान की उत्पZा के योग्य विशेष तरह के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव चाहिये। इनके बिना किसी भी मुनिराज के ये ज्ञान नहीं होता। छठवें गुणस्थान के नीचे यह कदापि नहीं पाया जाता है।

प्रश्न मन:पर्ययज्ञान किस प्रकार जानता है और किन पदार्थों को जानता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 278)

उ ार- मन:पर्ययज्ञानी मुनिराज विशिष्ट ईहा मतिज्ञान के द्वारा दूसरे के मन को पहले जानते हैं। तदुपरान्त मन:पर्यय ज्ञान के द्वारा उस मन में चिन्तित पदार्थ को जानते हैं। वे अमूर्तिक पदार्थों को नहीं जानते है और यदि वह चिन्तित पदार्थ मुनिराज के ज्ञान की सीमा के अन्दर है तब ही जानते हैं। मन में चिन्तित जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, सुख-दु:ख, देश-विदेश, रोग-विनाशादि को भी मन:पर्ययज्ञानी जानते हैं।

प्रश्न मन:पर्ययज्ञानी जीव कौनसी श्रेणी आरोहण कर सकता है और उसी भव से मोक्ष जा सकता है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 278)

उ ार- ऋजुमति मन:पर्ययज्ञानी जीव दोनों श्रेणी आरोहण कर सकते हैं तथा उसी भव से मोक्ष भी जा सकते हैं अथवा उत्कृष्ट से कुछ कम अर्द्धपुद्गलपरावर्तन काल में अवश्य ही मोक्ष जाते हैं। विपुलमति मन:पर्ययज्ञानी मुनिराज वर्धमान चारित्री ही होते हैं अत: वे क्षपक श्रेणी ही आरोहण करते हैं, उपशम श्रेणी नहीं तथा चरमशरीरी होते हैं।

प्रश्न मन:पर्यय ज्ञान का विषय 45 लाख योजन गोल है या चौकोर ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 279)

उ ार- आगम में मनुष्य लोक प्रमाण 45 लाख योजन गोल, मन:पर्ययज्ञान का विषय कहा है। वही सत्य है। जीवकाण्ड की केशववर्णी टीका में मन:पर्ययज्ञान का विषय 45 लाख योजन चौकोर कहा है जो उचित नहीं है तथा आगम स मत भी नहीं है। €योंकि एक कोने से दूसरे कोने की दूरी 45 लाख योजन से अधिक बन जाती

है। टोडरमल स्मारक से छपी हुई स यग्ज्ञान चन्द्रिका (पं.टोडरमल कृत) में भी मन:पर्ययज्ञान का विषय चौकोर कहा है। वह भी आगम स मत नहीं है।

प्रश्न मन:पर्ययज्ञान का क्षेत्र कितना है ? €या यह मानुषोŽार के बाहर के भाग को भी जानता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 279)*

उ ार- मन:पर्ययज्ञान 45 लाख योजन व्यास प्रमाण क्षेत्र को जानता है अर्थात् इतने क्षेत्र में स्थित जीव के मन की बात और इतने क्षेत्र में स्थित पदार्थ को जानता है। तात्पर्य यह है कि यदि मन:पर्ययज्ञानी जीव मानुषोŽार पर्वत के निकट विराजमान हों तो वे साढ़े बाइस लाख योजन मानुषो ार से बाहर और साढ़े बाइस लाख योजन अन्दर तक के क्षेत्र में स्थित जीवों के मन की बात जान सकते हैं और यदि चिन्तित पदार्थ भी 45 लाख योजन में है तो उसे भी जानकर बता सकते हैं। ऊँचाई में मन:पर्ययज्ञान का क्षेत्र सुदर्शन मेरु प्रमाण अर्थात् 1 लाख 40 योजन प्रमाण है।

प्रश्न अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान अणु को जानते हैं या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 282)*

उ ार- इस स बन्ध में आगम की दो पर परायें हैं।

तŽवार्थसूत्र और उनकी टीकानुसार सर्वावधि ज्ञान भी अणु को नहीं जानता बल्कि अनन्त परमाणु के स्कन्ध तक ही जानता है तथा मन:पर्यय ज्ञान भी अवधिज्ञान के द्वारा जाने गये स्कन्ध के अनन्तवें भाग तक को जानता है। कहा भी है- 'तदनन्तभागे मन:पर्ययस्य।' अर्थात् अनन्त के अनन्त भेद होने से मन:पर्यय ज्ञान का विषयभूत पदार्थ भी अनन्त परमाणु वाला स्कन्ध होता है। अर्थात् विपुलमति मन:पर्ययज्ञान भी परमाणु को नहीं जानता, स्कन्ध को ही जानता है।

धवला पुस्तक 9 पृ. 48 तथा गो मटसार जीवकाण्ड के अनुसार सर्वावधिज्ञान का विषय अणु कहा गया है। परन्तु मन:पर्ययज्ञान का विषय उन्होंने अणु को नहीं कहा, विपुलमति मन:पर्ययज्ञानी भी स्कन्ध तक को ही जानता है, इसलिए धवलाकार ने 'तदनन्तभागे मन:पर्ययस्य' सूत्र को नहीं माना है।

प्रश्न केवलज्ञानी के द्वारा ा या समस्त जाना हुआ विषय दिव्यध्वनि में कहने में आता है या नहीं और द्वादशांग में कितना विषय निरूपण किया जाता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 284)*

उ ार- स पूर्ण ज्ञानावरण कर्म के नष्ट होने से होने वाला केवलज्ञान समस्त ज्ञेय पदार्थों को जानता है। कोई ज्ञेय ऐसा नहीं है जो केवलज्ञान का विषय न हो। यह केवलज्ञान किसी इन्द्रिय, प्रकाशादि की सहायता की अपेक्षा नहीं रखता तथा क्रम से न जानकर एक साथ जानता है। जो पदार्थ केवलज्ञान के द्वारा जाने जाते हैं उनके अनन्तानन्त होने से उन सब का दिव्यध्वनि में निरूपण स भव नहीं है। अत: जाने गये अनन्तानन्त पदार्थों के अनन्तवें भाग को दिव्यध्वनि में कहा जाता है। जितना दिव्यध्वनि में कहा जाता है उसके अनन्तवें भाग को जानकर गणधरदेव द्वादशांग में निरूपण करते हैं। उस द्वादशांग का एक भी अङ्ग वर्तमान में नहीं है अर्थात् वर्तमान में अङ्गप्रविष्ट उपलŽध नहीं है। वर्तमान में उपलŽध सभी षट्खण्डागम, समयसार आदि ग्रन्थ अङ्गबाह्य

हैं अर्थात् आचार्यों ने द्वादशांग के आधार पर इन ग्रन्थों की रचना की है। श्वेता बरों में जो अङ्गपूर्व पाये जाते हैं वे सब कल्पित रचना हैं अत: मान्य नहीं है।

प्रश्न केवलज्ञानी की सामर्थ्य कितनी है ? €या केवलज्ञान में षट्गुणी हानिवृद्धि होती है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 286)

उ□ ार- केवलज्ञानी की सामर्थ्य अनन्तलोकों को एक साथ जानने की है अर्थात् जैसे विद्यमान लोक है वैसे अनन्तलोकों को तथा उन सबको एक साथ जानने की सामर्थ्य एक किरण में है। यह केवलज्ञान अनादि को अनादिरूप व अनन्त को अनन्तरूप में जानता है और इसीलिए किसी भी द्रव्य की प्रथम व अन्तिम पर्याय, ज्ञान का विषय नहीं होती है। €योंकि वह पर्याय है ही नहीं। जिसका अस्तित्व नहीं सो ज्ञेय नहीं। उसे कैसे जाना जा सकता है ? केवलज्ञान में षट्गुणी हानिवृद्धिरूप कोई भी हानि या वृद्धि नहीं होती है। यह ज्ञान अनन्तकाल तक इतना ही बना रहता है।

प्रश्न केवलज्ञान में ज्ञेयों के अनुसार परिणमन होता है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 287)*

उ□ ार- ज्ञान, ज्ञेयों को जानता है। उस समय उसकी ज्ञेयों के जानने रूप परिणति होती है। ज्ञेय में जैसा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होता है वैसा ही परिणमन ज्ञान में भी होता है। परन्तु यह कथन औपचारिक है। जैसे- केवलज्ञान को समस्त वस्तुओं का जानने वाला कहा जाता है और यह सर्वज्ञपना व्यवहारनय की अपेक्षा सत्य है। उसी तरह ज्ञेयों के परिणमन की अपेक्षा केवलज्ञान में परिणमन मानना व्यवहारनय से सत्य है।

प्रश्न विग्रहगति में कौनसे ज्ञान, दर्शन तथा गुणस्थान होते हैं ?

उ□ ार- विग्रहगति में कुमति एवं कुश्रुत ये दो मिथ्याज्ञान तथा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान ये तीन स यग्ज्ञान इस प्रकार पाँच ज्ञान पाये जाते हैं। चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन एवं अवधिदर्शन ये तीन दर्शन पाये जाते हैं। विग्रहगति में मिथ्यात्व, सासादन एवं अविरतस य€त्व ये तीन गुणस्थान संभव हैं।

संयम मार्गणा

प्रश्न संयम मार्गणा में असंयम को €यों लिखा गया ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 288)*

उ□ ार- संयम मार्गणा के 7 भेद कहे हैं- असंयम, संयमासंयम और पाँच प्रकार का चारित्र। प्रश्न यह है कि संयम मार्गणा में असंयम को €यों लिखा। मार्गणा का अर्थ खोजना या तलाश करना होता है। यदि संयम की अपेक्षा खोज की जाये तो तीन प्रकार के जीव मिलते हैं। पहले संयमरहित जीव, दूसरे त्रसहिंसा के त्यागी अर्थात् संयमासंयमी जीव और तीसरे संयमी जीव। यदि इनमें असंयम को नहीं लेंगे तब संयमरहित जीवों की खोज कैसे होगी ? इसलिए संयममार्गणा में असंयम को भी लिखा गया है।

प्रश्न संयत, असंयत और संयतासंयत की कितनी सं या है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 289)*

उ ार- समस्त जीव सं या के अनन्तबहुभाग प्रमाण असंयत हैं अर्थात् समस्त जीवराशि के अनन्तवें भाग प्रमाण संयत और संयतासंयत जीव मिलकर हैं। इनमें संयतासंयत जीव तिर्यञ्चों की अपेक्षा असं यात हैं और संयतासंयत मनुष्य मात्र सं यात *(13 करोड़)* हैं। समस्त संयतों की सं या का योग उत्कृष्ट से 3 कम 9 करोड़ प्रमाण है।

प्रश्न असंयम कितने प्रकार का होता है और उसका €या कारण है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 290)*

उ ार- सर्वार्थसिद्धि अध्याय 9/1 की टीका में असंयम को तीन प्रकार से कहा गया है।

1. अनन्तानुबन्धी के उदय से होने वाला- इसके द्वारा जीव के कोई चारित्र नहीं हो सकता, यह उदय किसी चारित्र का घात तो नहीं करता परन्तु अप्रत्या यानावरणादि कषायों के प्रवाह को अनन्त बनाये रखता है। इसके गुणस्थान एक व दो हैं।

2. अप्रत्या यानावरण का उदय- यह संयम और देशसंयम दोनों का घातक है। इसके गुणस्थान एक से चार तक हैं।

3. प्रत्या यानावरण का उदय- यह सकल संयम का घात करता है। इसके गुणस्थान एक से पाँच तक हैं।

असंयम के दो भेद भी हैं-

इन्द्रिय असंयम- पञ्चेन्द्रिय और मन को वश में नहीं रखना।

प्राणी असंयम- षट्काय के जीवों की रक्षा न करना।

अनन्तानुबन्धी और अप्रत्या यानावरण कषाय के उदय से उपरोक्त बारह प्रकार का असंयम होता है। जबकि प्रत्या यानावरण के उदय से त्रसघात को छोड़कर ग्यारह प्रकार का असंयम होता है।

प्रश्न सामायिक और छेदोपस्थापना संयम में या भेद है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 291)*

उ ार- सामायिक संयम- मैं समस्त सावद्ययोग का त्याग करता हूँ। ऐसे यम को धारण करने वाला जीव सामायिक संयमी है। यह अभेद रूप होता है।

छेदोपस्थापना- यह जीव भेदरूप से व्रतों को धारण करने वाला होता है।

इससे स्पष्ट है कि दोनों में भेद और अभेद की अपेक्षा अन्तर पाया जाता है। किन्तु अनुष्ठानकृत कोई विशेषता न होने से दोनों संयम एक हैं। अत: 6से 9 गुणस्थान तक द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा सामायिक संयम तथा पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा छेदोपस्थापना संयम सिद्ध होता है।

प्रश्न तीर्थङ्करों के छेदोपस्थापना चारित्र होता है या नहीं ?

उ ार- जो उǯाम संहनन के धारी, वर्द्धमान चारित्री, जिनकल्पी मुनि होते हैं, उनके सामायिक रूप एक प्रकार का ही चारित्र कहा गया है। इसीलिए भगवान् ऋषभनाथ से महावीरस्वामी पर्यन्त चौबीस तीर्थङ्करों के सामायिक चारित्र कहा गया है। उनके छेदोपस्थापना चारित्र नहीं होता है।

प्रश्न परिहारविशुद्धि चारित्र कब और किन गुणस्थानों में होता है और इस चारित्र का धारी नीचे गिरता है या नहीं ? और यदि नीचे गिरता है तो कहाँ तक ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 292)*

उ ार– परिहारविशुद्धि चारित्र मुनिराजों के गमन करते समय कहा है स्थिर होने पर नहीं। स्थिर होने पर उन मुनिराजों के सामायिक तथा छेदोपस्थापना चारित्र होता है। इसके गुणस्थान 6 और 7 हैं। इस चारित्र के धारी मुनिराज नीचे प्रथम गुणस्थान तक आ सकते हैं तथा कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल तक संसार परिभ्रमण कर सकते हैं।

प्रश्न परिहारविशुद्धि चारित्र का परिचय एवं विशेषता बतायें।

उ ार– जो द्रव्य और भाव से पुरुषवेदी मनुष्य 30 वर्ष तक सुखपूर्वक घर में रहा हो। तदुपरान्त तीर्थङ्कर के पादमूल में दिग बरी दीक्षा लेकर जिसने 8 वर्ष तक प्रत्या यान नामक आठवें पूर्व का अध्ययन किया हो उसके प्राणी वध से निवृ ारूप परिहारविशुद्धि नाम का चारित्र होता है। ये मुनिराज तीनों संध्याकालों को छोड़कर 2 कोस तक नियम से गमन करते हैं। इनके विहार करने में जीवों की विराधना नहीं होती है। विदेह क्षेत्रों में यह चारित्र 16 वर्ष एवं 22 वर्ष की उम्र के मुनिराजों को ी प्राप्त हो सकता है। मुनिराजों के विहार काल में ही परिहार विशुद्धि चारित्र होता है, अन्य काल में नहीं। इस चारित्रधारी मुनि के मन:पर्ययज्ञान, प्रथमोपशम स य€त्व, आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग, तैजस समुद्घात एवं विक्रिया ऋद्धि नहीं होती है।

प्रश्न यथा यात चारित्र का उत्कृष्ट काल कितना है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 292)*

उ ार– यदि कोई क्षायिकस य€त्वी जीव एक पूर्व कोटि आयु वाला हो, गर्भ से आठ वर्ष बिताकर सर्वलघु काल में मोहनीय कर्म का क्षय करके यथा यात चारित्र को प्राप्त करके शेष आयु यथा यात चारित्र के साथ बिताता है तो इस अपेक्षा से यथा यात चारित्र का उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्व कोटि प्रमाण होता है।

प्रश्न यथा यात चारित्र किन गुणस्थानों में होता है और इसके भेद होते हैं या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 292)

उ ार– यथा यात चारित्र, स पूर्ण चारित्र मोहनीय कर्म के उपशम या क्षय से होता है। इस अपेक्षा ग्यारहवें से चौदहवें गुणस्थान के मुनियों के चारित्र में अन्तर नहीं है। परन्तु न्यूनता पूर्णता की अपेक्षा इसमें भी भेद किया जा सकता है। जैसे– क्षायिक चारित्र क्षायिकपने से पूर्ण है परन्तु अघातिया कर्मों को सर्वथा नष्ट करके मुक्तिरूप कार्य को उत्पन्न करने की अपेक्षा अपूर्ण है। वह शक्ति चौदहवें गुणस्थान में व्युपरतक्रियानिवृ ाी नामक चौथे शु€लध्यान में उत्पन्न होती है। चौदहवें गुणस्थान में शील के अठारह हजार भेद पूर्ण रूप से पलते हैं। इससे स्पष्ट है कि चारित्र की पूर्णता चौदहवें गुणस्थान के अंत में होती है और उस चारित्र को आचार्यों ने परमयथा यात चारित्र कहा है।

दर्शन मार्गणा

प्रश्न लŽध्यपर्याप्तक और निवृत्यपर्याप्तक चार इन्द्रिय जीवों के चक्षुर्दर्शन या अचक्षुर्दर्शन है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 293)*

उ□ ार- लŽध्यपर्याप्तक तथा निवृत्यपर्याप्तक के चक्षुर्दर्शन नहीं होता। पर्याप्ति पूर्ण हो जाने पर चक्षुर्दर्शन होता है। परन्तु ऐसा नियम अचक्षुर्दर्शन के साथ नहीं लगता। परन्तु बारहवें गुणस्थान तक के प्रत्येक जीव में अचक्षुर्दर्शन हमेशा पाया जाता है। इसलिए अचक्षुर्दर्शन लŽध्यपर्याप्तक और निवृत्यपर्याप्तक अवस्था में भी पाया जाता है।

प्रश्न चक्षुर्दर्शन व अचक्षुर्दर्शन का काल कितना है? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 295)*

उ□ ार- क्षयोपशम की अपेक्षा अचक्षुर्दर्शन का उत्कृष्ट काल अभव्यों की अपेक्षा अनादिअनन्त है। भव्य जीव की अपेक्षा अनादि सान्त है। एक जीव की अपेक्षा अचक्षुर्दर्शन का प्रायोग्य काल अन्तर्मुहूर्त है। एक से तीन इन्द्रिय जीवों तक आयुपर्यन्त अचक्षुर्दर्शन रहता है। लŽध की अपेक्षा चक्षुर्दर्शन का उत्कृष्ट काल दो हजार सागर कहा गया है €योंकि त्रस पर्याय का उत्कृष्ट काल पूर्व कोटि पृथ€त्व से अधिक दो हजार सागर है। उसमें दो हजार सागर प्रमाण चक्षुर्दर्शन का उत्कृष्ट काल कहा गया है तथा प्रायोग्य की अपेक्षा चक्षुर्दर्शन का काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

प्रश्न चक्षुर्दर्शन का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त कैसे बनता है? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 295)*

उ□ ार- अचक्षुर्दर्शन वाला एक, दो अथवा तीन इन्द्रिय जीव मरण कर चार अथवा पाँच इन्द्रिय पर्याप्तक में अन्तर्मुहूर्त की आयु से पैदा हो और मरण कर एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, अथवा तीनइन्द्रिय में पैदा हो तो चक्षुर्दर्शन का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बन जाता है।

लेश्या मार्गणा

प्रश्न लेश्या और कषाय में □ या अन्तर है एवं केवली के शु□ ल लेश्या □ यों है ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 296,301)

उ□ ार- लेश्या दो प्रकार की होती है- द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या। इसमें शरीर के वर्ण को द्रव्य लेश्या और कषाय के उदय से अनुरञ्जित योगप्रवृ□ ा का नाम भाव लेश्या है।

यहाँ दो प्रश्न खड़े हो जाते हैं। 1. यदि कषाय से अनुरञ्जित योगप्रवृ□ ा का नाम लेश्या है तो जहाँ ग्यारह, बारह व तेरहवें गुणस्थान में कषाय का उदय नहीं है या अस्तित्व नहीं है वहाँ भी शु€ललेश्या €यों कही है ? वह कैसे घटित होती है ? समाधान- आचार्य वीरसेन स्वामी इसके बारे में कहते हैं कि ग्यारह, बारह व तेरहवें

गुणस्थान में लेश्या का अभाव नहीं है €योंकि लेश्या में योग की प्रधानता है कषाय की नहीं। इसलिए लेश्या की सही परिभाषा है कि जो आत्मा को कर्मों से लिप्त करती है उसे लेश्या कहते हैं। कर्मों का आस्रव तेरहवें गुणस्थान तक पाया जाता है अत: अरिहन्त अवस्था में भी शुक्ललेश्या मानी गयी है।

2. द्वितीय प्रश्न यह है कि लेश्या और कषाय में अन्तर €या है ? समाधान यह है कि जो आत्मा को कषती या दु:ख देती है, वह कषाय है और जो आत्मा व कर्म का सम्बन्ध करने वाली है वह लेश्या है। यही इन दोनों में अन्तर है।

प्रश्न लेश्या के 6 भेद किस प्रकार बनते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 299)*

उत्तर- कषाय का उदय 6 प्रकार का होता है। 1. तीव्रतम 2. तीव्रतर 3. तीव्र 4. मन्द 5. मन्दतर 6. मन्दतम। इन छ: प्रकार के कषाय से उत्पन्न हुई परिणति क्रम से लेश्या के भी छ: भेद हो जाते हैं जो 1. कृष्ण 2. नील 3. कापोत 4.पीत 5.पद्म 6.शुक्ल कहे जाते हैं।

प्रश्न जीवकाण्ड में लेश्याओं के मध्यम आठ अंश होने पर ही आयुबन्ध कहा गया है। इससे क्या समझा जाये ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 300)*

उत्तर- यह प्रश्न जब आचार्य विद्यासागर जी महाराज से पूछा गया तो उन्होंने कहा कि सुनते हैं गोम्मटसार जीवकाण्ड की रचना धवलानुसार हुई है। यह लेश्याओं का 26 अंशों वाला विषय धवला जी में वर्णित नहीं है। मालूम नहीं, आचार्य नेमिचन्द्र महाराज ने यह विषय कहाँ से लिया है ? इस 26 अंश के विषयानुसार शुक्ललेश्या के साथ भी नरकायु का बन्ध कहा गया है। जो किसी भी प्रकार उचित नहीं बैठता।

वास्तविकता तो यह है कि महाधवला और षट्खण्डागम के अनुसार तीन अशुभलेश्याओं में चारों आयु का बन्ध होता है। पीत, पद्म लेश्या मे तिर्यञ्च मनुष्य और देवायु का बन्ध होता है और शु€ललेश्या में मात्र मनुष्य और देवायु का बन्ध होता है।

प्रश्न कृष्ण लेश्या में कुछ कम 33 सागर प्रमाण अन्तर कैसे बनता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 301)

उŽार- यहाँ कृष्ण लेश्या का अन्तर नहीं कहा गया किन्तु कृष्ण लेश्या में मिथ्यात्व और चतुर्थ गुणस्थान का अन्तर कहा गया है अर्थात् कृष्ण लेश्या तो बनी रहे और मिथ्यात्व गुणस्थान होकर छूट जाये। पुन: मिथ्यात्व गुणस्थान होने में उत्कृष्ट अन्तर कितना हो सकता है यह कहा गया है। अथवा कृष्णलेश्या तो छूटे नहीं और चतुर्थ गुणस्थान होकर छूट जाये तो वह चतुर्थ गुणस्थान उत्कृष्ट से कितने काल पश्चात् हो सकता है यह कहा गया है। यह सातवें नरक में ही संभव है €योंकि वहाँ 33 सागर तक कृष्ण लेश्या रहती है। अत: वहाँ गुणस्थान परिवर्तन होने से गुणस्थानों का उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम 33 सागर प्रमाण घटित हो जाता है।

प्रश्न पीत लेश्या चतुर्थ स्वर्ग तक पायी जाती है और चौथे स्वर्ग की उत्कृष्टायु 7 सागर कही गयी है। देवों में लेश्या बदलती नहीं है इसलिए पीत लेश्या का उत्कृष्ट काल सात सागर होना चाहिये जबकि साधिक दो सागर कहा है। वह कैसे घटित होता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 301)*

उ□ ार– तीसरे व चौथे स्वर्ग में पीत लेश्या वाले देव मात्र नीचे के विमानों में पाये जाते हैं। इन नीचे के विमानों में पीत लेश्या होने से इनकी आयु प्रमाण अर्थात् साधिक दो सागर पीत लेश्या का उत्कृष्ट काल कहा है।

प्रश्न नरकों में द्रव्यलेश्या और ावलेश्या का वर्णन किस प्रकार है ? राजवार्तिक में 'षडपि' यह श□ द दिया है। अर्थात् उन्होंने नरकों में छहों लेश्या मानी हैं। इसको कैसे समझा जाये ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 302)*

उ□ ार– नरकों में लेश्या इस प्रकार पायी जाती है– प्रथम नरक में जघन्य कापोत लेश्या, द्वितीय में मध्यम कापोत लेश्या, तृतीय में उत्कृष्ट कापोत तथा जघन्य नील, चतुर्थ नरक में मध्यम नील, पञ्चम में उत्कृष्ट नील तथा जघन्य कृष्ण, षष्ठम में मध्यम कृष्ण तथा सप्तम में उत्कृष्ट कृष्ण लेश्या।

देवों और नारकियों में यह नियम है कि उनकी जो लेश्या होती है वह आयुपर्यन्त नहीं बदलती। नरकों में शुभ लेश्या कभी नहीं होती। राजवार्तिक में जो 'षडपि' श□ द कहा गया है उसका अर्थ ऐसा लगाना उचित है कि लेश्या तो वही रहती है परन्तु उनमें छह प्रकार की हानि और वृद्धि होती रहती है इसलिए षडपि श□ द कहा है।

प्रश्न विग्रहगति में नारकियों के शु□ ल लेश्या हो सकती है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 303)*

उ□ ार– विग्रहगति में प्रत्येक जीव के शु€ल लेश्या होती है। यह द्रव्य लेश्या का कथन है तथा निवृत्यपर्याप्तक अवस्था में सभी जीवों के कापोत लेश्या ही होती है। इस प्रकार द्रव्य लेश्या तो शु□ ल हो सकती है परन्तु आगमानुसार नारकियों के विग्रहगति में तथा निवृत्यपर्याप्तक अवस्था में तीन अशुभ भाव लेश्या ही होती हैं। कोई भी शुभ भाव लेश्या नहीं होती।

प्रश्न चारों गतियों के जीवों की द्रव्य लेश्या व भाव लेश्या समझाइये। *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 304)*

उ□ ार– नारकियों की भाव लेश्या का वर्णन पहले कर दिया। गो मटसार जीवकाण्ड के अनुसार सभी नारकियों की द्रव्यलेश्या या शरीर का वर्ण काला होता है। तिर्यञ्च और मनुष्यों की द्रव्य एवं भाव लेश्या छहों होती हैं। भवनत्रिक देवों की भी छहों द्रव्य लेश्या होती हैं। अर्थात् उनको प्राप्त शरीर सभी वर्णों वाले होते हैं। वैमानिकों की द्रव्य लेश्या उनके भावलेश्यानुसार होती हैं। प्रथम व दूसरे स्वर्ग में पीत लेश्या, तीसरे–चौथे स्वर्ग में पीत और पद्म, पञ्चम से दसवें स्वर्ग तक पद्म लेश्या, ग्यारहवें–बारहवें स्वर्ग में पद्म व शु□ ल, तेरहवें स्वर्ग से नौवें ग्रैवेयक तक शु□ ल लेश्या होती है। अनुदिश और अनु□ ार विमानों में देवों की परम शु□ ल लेश्या होती है। देवों के विक्रिया द्वारा उत्पन्न होने वाला शरीर छहों द्रव्य लेश्या वाला होता है। उŽाम भोगभूमियाँ जीवों का

शरीर सूर्य समान, मध्यम भोगभूमियाँ जीवों का चन्द्र समान तथा जघन्य भोगभूमियाँ जीवों का शरीर हरित वर्ण का होता है। भोगभूमियाँ जीवों की तीन शुभ भावलेश्यायें होती हैं।

प्रश्न सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ पृष्ठ 174 में पं. फूलचन्द्र जी ने विशेषार्थ में ावनत्रिक देवों की अपर्याप्तक अवस्था में पीत तक चार लेश्यायें कही हैं परन्तु जीवकाण्ड गाथा 535 में तीन अशुभ लेश्या ही कही हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 305)*

उ ार- पं. फूलचन्द्र जी का कथन विचारणीय है। आगमानुसार भवनत्रिक देवों में या कर्मभूमियाँ मनुष्य या तिर्यञ्चों में उत्पन्न होने वाले मिथ्यादृष्टियों के तीन अशुभ लेश्या ही होती हैं। भवनत्रिकों में उत्पन्न होने वाले जीव नियम से मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। अत: इनके अपर्याप्त दशा में पीत लेश्या कैसे हो सकती है। नियम यह है नौवें ग्रैवेयक तक के स ाी मिथ्यादृष्टि देव मरण समय तक तो अपनी-अपनी लेश्या में रहते हैं। परन्तु मरण पश्चात् विग्रह गति के प्रथम समय में ही तीन अशुभ लेश्या रूप हो जाते हैं। इसी प्रकार भोगभूमियाँ मिथ्यादृष्टि जीव भी अन्त समय तक पीत लेश्या में रहते हैं। परन्तु मरण पश्चात् पहले समय में ही अशुभ लेश्या में गिरते हैं। धवला पुस्तक दो में ावनत्रिक देवों के अपर्याप्तक अवस्था में तीन अशुभ लेश्या कही हैं। अत: भवनत्रिकों में अपर्याप्तक अवस्था में पीत लेश्या कहना आगम स मत नहीं है। ावनत्रिक देवों के पर्याप्तक अवस्था में सभी के नियम से पीत लेश्या होती है। यदि कोई असुरकुमार देव, नरक में नारकियों को विभिन्न प्रकार से कष्ट दे रहा हो तो ाी उसके पीत लेश्या कही है, अशुभ लेश्या नहीं कही।

प्रश्न छठे-सातवें गुणस्थान में तीन शुभ लेश्या कही हैं परन्तु सर्वार्थसिद्धि 9/47 में अशुभ लेश्या भी कही है। तो €या छठवें-सातवें गुणस्थान में अशुभ लेश्या भी होती है और अशुभ लेश्या होने पर ाी गुणस्थान नहीं गिरता ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 306)*

उ ार- तž वार्थसूत्र 9/47 की टीका में पुलाक मुनि के तीन शु ा लेश्या, बकुश और प्रतिसेवनाकुशील के छहों लेश्या तथा कषायकुशील के कापोतादि चार लेश्या कही हैं। आ ार्ध्यान आदि के समय में क्वचित्-कदाचित् ये अशुभ लेश्यायें स ाव हैं, जो अपवाद मार्ग है। फिर भी इनका गुणस्थान छठवाँ-सातवाँ रहता है। ये पुलाकादि पाँचों मुनि भावलिङ्गी होते हैं। इतना विशेष है कि धवलाकार ने पञ्चम गुणस्थान में मात्र तीन शुभ लेश्या कही हैं, अशुभ लेश्या नहीं कही।

भव्यत्व मार्गणा

प्रश्न भव्यत्व और अभव्यत्व यह जीव की कौन सी पर्याय है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 306)*

उ ार- भव्य और अभव्य भाव जीव की व्यञ्जन पर्याय है। चार अघातिया कर्मों के उदय से उत्पन्न हुआ असिद्धत्व भाव है। यह भाव जिनमें अनादिअनन्त पाया जाता है उन्हें अभव्य कहते हैं। जिनमें अनादिसान्त पाया

जाता है उन्हें भव्य कहते हैं। असिद्धत्व भाव का अनादिअनन्त अथवा अनादिसान्तपना किसी कर्म के कारण नहीं हुआ इसलिए भव्यत्व और अभव्यत्व भावों को पारिणामिक कहा गया है।

प्रश्न या अभव्य जीव नौवें ग्रैवेयक तक जा सकते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 307)*

उ ार– भव्य और अभव्य दोनों का गमन नीचे सातवें नरक तथा ऊपर नौवें ग्रैवेयक तक जाने में कोई आपि ा नहीं है। पञ्चपरावर्तन पूर्ण करने में प्रत्येक अभव्य को नरकों में 33 सागर आयु तक और स्वर्गों में 31 सागर आयु तक उत्पन्न होना पड़ता है। हमने भी अनन्त बार पञ्चपरावर्तन पूर्ण किये हैं। अत: भव्य या अभव्य जीव अनन्तों बार नौवें ग्रैवेयक तक उत्पन्न हो चुके हैं।

प्रश्न अभव्य जीव के स य€त्व होने से पूर्व होने वाली पाँच लिZधयाँ होती हैं या नहीं ? उसके प्रायोग्यलि ध में कर्मों की स्थिति घटती है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 307)*

उ ार– अभव्य जीव के क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना तथा प्रायोग्य ये चार लि धयाँ हो सकती हैं। प्रायोग्य लि ध होने से परिणामों की विशुद्धि होने से कर्मों की स्थिति घटकर अन्त:कोडा–कोडी रह जाती है। कर्मों की स्थिति का घटना भव्य और अभव्य दोनों के होता है। पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के अनुसार प्रायोग्यलि ध की उत्कृष्ट दशा को अभव्य जीव प्राप्त नहीं होते। उसके लिए तो केवल ाव्य जीव ही प्राप्त करते हैं जिन्हें करणलिZध होनी होती है।

प्रश्न विदेह क्षेत्र को विदेह €यों कहते हैं ? €या वहाँ उत्पन्न होने वाले जीव भव्य ही होते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 307)*

उ ार– 'श्लोकवार्तिक टीकानुसार' विदेह क्षेत्र में जन्म लेने वाले अधिकांश जीव शरीर रहित होकर मुक्त हो जाते हैं, इसलिए उस क्षेत्र का नाम विदेह सार्थक है।

अभव्य जीव स पूर्ण लोक में व्याप्त हैं €योंकि वे अनन्त हैं। अत: विदेह क्षेत्र में भी अ ाव्य जीव होते हैं। अभव्य जीव तो सिद्धालय में भी पाये जाते हैं जो एकेन्द्रिय की पर्याय में हैं।

प्रश्न भव्यजीवों के स य€त्व उत्पन्न हो जाने पर भव्यत्व भाव में कुछ परिवर्तन होता है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 307)*

उ ार– 'धवला पुस्तक–7' के अनुसार किसी भव्य जीव को जब तक स यग्दर्शन उत्पन्न नहीं होता, तब तक उसका भव्यत्व भाव अनादि अनन्त रहता है। €योंकि तब तक उसका संसार अन्तरहित हैं। किन्तु स य€त्व उत्पन्न हो जाने पर अनन्त संसार की स्थिति घटकर अर्धपुद्गलपरावर्तन रह जाती है। अत: स य€त्व हो जाने पर वही भव्यत्व भाव अनादि सान्त हो जाता है।

प्रश्न अयोग केवली गुणस्थान के अन्तिम समय में भव्यत्व भाव का नाश €यों हो जाता है ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 308)

उ ार- भव्यत्व भाव स य€त्व प्राप्ति की योग्यता का परिचायक है। सिद्ध अवस्था में इसकी आवश्यकता नहीं रहती €योंकि वहाँ कार्य स पन्न हो चुका है। अत: सिद्धों में यह भाव नहीं पाया जाता है। पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के अनुसार जैसे कि जब तक हम यात्री रहते हैं तब तक हमारी जेब में ट्रेन का टिकट रहता है। गन्तव्य स्थान तक पहुँचते ही स्टेशन के बाहर निकलते ही फिर टिकट की आवश्यकता समाप्त हो जाती है और वह फेंक दिया जाता है। इसी प्रकार ाव्यत्व भाव को भी समझ लेना चाहिये।

प्रश्न अभव्यसम भव्य (दूरान्दूर भव्य) जीवों को कभी मोक्ष नहीं होगा। फिर ऐसे जीवों को भव्यों में यों शामिल किया गया? या ये चारों गतियों में पाये जाते हैं ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 308)

उ ार- अभव्यसमभव्य (दूरान्दूर भव्य) में स य€त्व उत्पZ्ा की योग्यता पायी जाती है। इसलिए उनको भव्य कहा जाता है। ऐसे जीव चारों गतियों में नहीं किन्तु नित्यनिगोद में ही पाये जाते हैं। वे अनादि काल से निगोद में हैं और अनन्तकाल तक नित्यनिगोद में ही रहेंगे। अत: योग्यता होते हुए भी स य€त्व प्राप्ति के योग्य पञ्चेन्द्रिय सैनीपना आदि न मिलने के कारण उनको न कभी स य€त्व हो पायेगा और न ही कभी वे मोक्ष प्राप्त कर पायेंगे। जैसे- विधवा स्त्री के पुत्र उत्पZ्ा की योग्यता तो है परन्तु पति का संयोग न होने के कारण उसको कभी पुत्र की प्राप्ति नहीं होगी।

प्रश्न विकलेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीवों में अ ाव्य कितने होते हैं और ाव्य कितने ?

उ ार- निगोदिया जीवों के अलावा शेष सभी जीव असं यातासं यात प्रमाण हैं अर्थात् सिर्फ निगोदिया जीव ही अनन्त हैं, अन्य कोई जीव अनन्त नहीं हैं। इसके अनुसार विकलेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीवों की सं या असं यातासं यात है, अनन्त नहीं। *श्री धवला पुस्तक-4* के अनुसार विकलेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियों की सं या में असं यात बहुभाग प्रमाण तो भव्य ही होते हैं। मात्र असं यातवें भाग प्रमाण अ ाव्य होते हैं।

स य€त्व मार्गणा

प्रश्न अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को सर्वप्रथम उपशमस य€त्व होता है और फिर वह जीव मिथ्यात्व में आता है या नहीं ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 311)

उ ार- अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के सर्वप्रथम उपशमस य€त्व ही होता है। उसके तुरन्त बाद ही मिथ्यात्व में गिरने का नियम नहीं है। वह अनादि मिथ्यादृष्टि अपनी आयु के अन्तिम समय तक बिना नीचे गिरे हुए मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है।

प्रश्न यदि कोई मुनि महाराज प्रथम गुणस्थान से उपशम स य€त्व प्राप्त करके सप्तम गुणस्थान में आये तो वे उसी प्रथमोपशम स य€त्व के काल में असंयमी बन सकते हैं या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 311)

उ ार- यदि किन्हीं मुनिराज को प्रथम गुणस्थान से सप्तम गुणस्थान हुआ हो तो वे मुनिराज उसी प्रथमोपशम स य€त्वकाल में संयत अवस्था से गिरकर चतुर्थ गुणस्थान में नहीं आ सकते हैं, ऐसा नियम है। किसी मिथ्यादृष्टि को यदि प्रथमोपशम स य€त्व हुआ हो तो वह अपनी अवस्थानुसार प्रथम गुणस्थान से चौथे-पाँचवें या सातवें गुणस्थान को जाता है। परन्तु छठे गुणस्थान में नहीं जाता है।

प्रश्न क्षयोपशमलZिध व विशुद्धिलZिध के पूर्व आत्मबोध हो सकता है या नहीं ? तथा क्षयोपशमलZिध और विशुद्धिला ध में कर्मों का स्थितिबन्ध घटती है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 312)*

उ ार- क्षयोपशमलZिध और विशुद्धिलZिध में आत्मबोध की आवश्यकता नहीं है। इन दोनों लZिधयों के होने पर वह आत्मा देशना की ओर अग्रसर होती है।

स ा में स्थित कर्मों की स्थिति का घटना इन दोनों ला ध में नहीं होता। देशनाला ध में भी नहीं होता। कर्मों की स्थिति का घटना तो प्रायोग्यला ध के प्रथम समय से होता है। यहाँ ही स ा में स्थित कर्म अन्त: कोडाकोडीसागर प्रमाण हो जाते हैं। साथ में नवीन बन्ध भी कम-कम स्थिति वाला होने लगता है। ये सब आत्म परिणामों की विशुद्धि से होता है।

प्रश्न निसर्गज स य€त्व से पूर्व देशना लZिध का होना आवश्यक है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 313)

उ ार- स यग्दर्शन के दो भेद हैं-

1. निसर्गज स यग्दर्शन- जो परोपदेश के बिना अन्य कारणों से होता है।

2. अधिगमज स यग्दर्शन- जो परोपदेश के द्वारा होता है। परोपदेश के अलावा जातिस्मरण, जिनबि बदर्शन, जिनमहिमादर्शन, वेदनानुभव तथा देव ऋद्धि दर्शन के द्वारा होने वाला स यग्दर्शन निसर्गज स यग्दर्शन कहलाता है। इस निसर्गज स यग्दर्शन के पहले परोपदेश की आवश्यकता नहीं है।

जब गौतम ऋषि, भगवान् महावीर के समवसरण में पधारे थे तब उनको मानस्त भ में विराजमान जिनबि ब के दर्शन से स यग्दर्शन प्राप्त हो गया था। यहाँ तक उनको परोपदेश नहीं मिला था। अत: निसर्गज स यग्दर्शन से पूर्व परोपदेश मिलने का नियम नहीं है।

प्रश्न प्रथमोपशम स य€त्व को आर भ करते समय निद्रा, प्रचला आदि प्रकृतियों का उदय हो सकता है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 315)*

उ ार- जीव के दर्शनावरण की नव प्रकृतियों में से एक समय में चार या पाँच प्रकृतियों का उदय होता है। कोई भी जीव जब प्रथमोपशम स य€त्व के अभिमुख होता है अर्थात् प्रार भक होता है तब उसके पाँच प्रकृतियों

का उदय स भव नहीं है। उस समय वह जीव जाग्रत अवस्था में ज्ञानोपयोग सहित ही होता है €योंकि पाँचों निद्राओं में से किसी एक निद्रा के उदय होने पर स य€त्व उत्पZि के योग्य विशुद्धि नहीं हो सकती। परन्तु प्रथमोपशम स य€त्व के पूर्ण करने वाले को तथा मध्यम अवस्था वाले के निद्रा या प्रचला का उदय संभव है। यह भी नियम है कि पाँचों निद्राओं में से एक जीव के एक समय में एक ही निद्रा का उदय हो सकता है, अधिक का नहीं।

प्रश्न जो मिथ्यादृष्टि जीव प्रायोग्यलZ्धि तक पहुँच गया है, €या उसके गृहीत मिथ्यात्व रह सकता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 316)

उ□ ार– देशना लZि□ ध के स्वरूप से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस जीव को सर्वज्ञकथित षट्द्रव्य और नवपदार्थों का उपदेश मिला है। वह उन उपदेशों को ग्रहण करता है, धारण करता है और विचार करता है। जिसके कारण कर्मों की स्थिति और अनुभाग का घात हो जाता है। गृहीत मिथ्यात्वी के इतने परिणामों की विशुद्धि स भव नहीं है। इसलिए प्रायोग्यलZ्धि में गृहीत मिथ्यात्व तो नहीं रहता, परन्तु मिथ्यात्व का मन्द उदय रहता है।

प्रश्न प्रायोग्यलZ्धि में 34 बन्धापसरण होते हैं परन्तु मिथ्यात्व का बन्ध €यों नहीं रुकता ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 317)

उ□ ार– प्रायोग्यलZ्धि वाले जीव के अन्तर्मुहूर्त बाद अन्त:कोडाकोडी सागर स्थिति बन्ध से पृथ€त्व 100 सागर स्थिति घटने पर पहला बन्धापसरण होता है। फिर उससे भी पृथ€त्व 100 सागर स्थिति घटने पर दूसरा बन्धापसरण होता है। इसी क्रम से पृथ€त्व 100 सागर, पृथ€त्व 100 सागर स्थिति घटने पर एक-एक बन्धापसरण होता है। इस प्रकार 34 बन्धापसरण होते हैं। इन 34 बन्धापसरणों के द्वारा 46 प्रकृतियों का बन्ध रुक जाता है। फिर भी परिणामों में इतनी विशुद्धि नहीं हुई और न मिथ्यात्व का अनुभाग इतना क्षीण हुआ है कि मिथ्यात्व प्रकृति का बन्ध प्रायोग्य लZ्धि में रुक जावे।

अनिवृZिकरण के अन्तिम समय तक मिथ्यात्व का बन्ध होता रहता है। प्रथमोपशम स य€त्व होने के प्रथम समय से मिथ्यात्व का बन्ध व उदय दोनों एक साथ रुक जाते हैं। कर्मों के स्थितिबन्ध का घटना बन्धापसरण कहलाता है। ऐसे 34 बन्धापसरण प्रायोग्य लZ्धि में होते हैं जिनके द्वारा 46 कर्म प्रकृतियों का बन्ध रुक जाता है।

प्रश्न बन्धापसरण में जिन प्रकृतियों का बन्ध रुकता है, €या हम उस अवस्था में उतनी प्रकृतियों का संवर मान लें □ योंकि इसी अवस्था को तो संवर कहते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 317)*

उ□ ार– किसी गुणस्थान में संवर उन प्रकृतियों का कहा जाता है जिन प्रकृतियों का उस गुणस्थान में कभी भी बन्ध न हो। यहाँ जो 46 प्रकृतियों का प्रायोग्यलZि□ ध वाले मिथ्यादृष्टि के बन्ध रुका है, वह प्रायोग्यलZि□ ध से गिरते ही इसी गुणस्थान में पुन: होने लगेगा। अत: इसे हम संवर नहीं कह सकते हैं।

प्रश्न प्रथमोपशम स य€त्व से पूर्व ज्ञान एवं प्रशस्त आचरण होना आवश्यक है या पापाचरण की अवस्था में भी स य€त्व हो सकता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 318)*

उ ार- स य€त्व होने से पूर्व जो विशुद्धि लŽिध होती है उसमें पाप प्रवृZि संभव नहीं है अन्यथा विशुद्धि ल ध नहीं हो सकेगी। तीसरी देशनाल ध होने पर यथार्थज्ञान हो जाता है। इन दोनों ल धयों के बिना जीव आगे नहीं बढ़ सकता, उसके प्रथमोपशम स य€त्व नहीं हो सकता। प्रथमोपशम स य€त्व से पूर्व ज्ञान तथा प्रशस्त आचरण आवश्यक है।

प्रश्न कहीं पर तो स य€त्व के निश्चय और व्यवहार ये दो भेद किये हैं, कहीं पर सराग और वीतराग और कहीं पर औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक तीन भेद और कहीं आज्ञा, मार्गादि दस भेद किये हैं। इसका कारण €या है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 319)*

उ ार- शास्त्रों में करणानुयोगानुसार स य€त्व के तीन भेद कहे हैं- औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक स य€त्व। द्रव्यानुयोग की अपेक्षा दो भेद निश्चय व व्यवहार तथा सराग व वीतराग ये भेद किये हैं। बाह्य कारणों की अपेक्षा आज्ञामार्गादि आठ भेद कहे हैं और दस भेदों में से अवगाढ़, परमावगाढ़ ये दो भेद ज्ञान की अपेक्षा कहे हैं। वास्तव में तो स य€त्व के तीन भेद हैं- औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक। दर्शनमोहनीय की उदय, उदीरणा आदि अवस्था स य€त्व उत्पZि में कारण नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि व्यवहार स य€त्व औपशमिक होता है या क्षायोपशमिक, यह प्रश्न उचित नहीं है। स य€त्व का जो भेद जिस अनुयोग की अपेक्षा से है, उस अनुयोग की अपेक्षा से ही उसकी चर्चा करनी चाहिये।

प्रश्न हम स यग्दृष्टि हैं या नहीं ? या हमारे सामने वाला व्यक्ति स यग्दृष्टि है या नहीं। इसका अनुमान कैसे लगाया जाये ?

उ ार- इस प्रश्न के उ ार में आचार्य कुन्दकुन्द महाराज द्वारा विरचित दर्शन पाहुड की टीका में पं. जयचन्द जी छाबड़ा कहते हैं कि यदि मुझे सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का पक्का श्रद्धान है और खोटे देव-शास्त्र-गुरु की सही पहचान है, प्रशम (कषायों की मंदता) संवेग (संसार से भयभीतपना), अनुक पा (जीवमात्र पर दया) तथा आस्ति€य (सात तžव और नौ पदार्थों पर पूर्ण श्रद्धान) ये चारों गुण स्पष्ट दिखाई दें, स यग्दृष्टि के शंकादि 8 दोष, 8 मद, 6 अनायतन और 3 मूढ़ता ये 25 दोष नहीं पाये जायें तो स्वयं को या अन्य को स यग्दृष्टि माना जा सकता है। जीव का कौनसा गुणस्थान है ? यह वास्तव में हमारे ज्ञान का विषय नहीं है। हम उसके बाह्यरूप उपर्युक्त आचरण को देखकर मात्र अनुमान लगा सकते हैं।

प्रश्न एक बार प्रथमोपशम स य€त्व होने के बाद पुनः प्रथमोपशम स य€त्व होने के बीच में जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कितना होता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 320)*

उ ार- एक बार प्रथमोपशम स य€त्व होने के बाद यदि छूट जाये या क्षयोपशम हो जाये तो दुबारा प्रथमोपशम होने में कम से कम पल्य का असं यातवाँ भाग अन्तर जरुरी है। इसका कारण यह है कि प्रथमोपशम स य€त्वी

मिथ्यात्व में आ गया है तो इसके सŽा में स्थित स यक् प्रकृति की स यक् मिथ्यात्वरूप और स यक् मिथ्यात्व की मिथ्यात्व रूप उद्वेलना (संक्रमण या बदलना) होने लगती है। जब तक स यक् मिथ्यात्व और स यक् प्रकृति की स्थिति घटकर एक सागर अथवा पृथ€त्व सागर (स्थावर और त्रस की अपेक्षा) न रह जाये तब तक वह जीव पुन: प्रथमोपशम स य€त्व प्राप्त करने के योग्य नहीं हो पाता। इन दोनों प्रकृतियों की स्थिति एक सागर या पृथ€त्व सागर होने में पल्य का असं यातवाँ भाग लगता है जो असं यात वर्ष का होता है। इससे पूर्व क्षयोपशम स य€त्व पुन:-पुन: हो सकता है परन्तु प्रथमोपशम नहीं हो सकता। क्षयोपशम स य€त्व का जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। अत: एक बार छूटकर पुन: अन्तर्मुहूर्त में दुबारा हो सकता है। द्वितीयोपशम स य€त्व का जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त का है। इन सभी स य€त्व का उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरावर्तन है।

प्रश्न वेदक प्रायोग्य काल □ या होता है ?

उ□ ार- कोई प्रथमोपशम स य€त्वी जीव गिरकर प्रथम गुणस्थान में आ जाये तो उसकी स यक् प्रकृति और स यक् मिथ्यात्व प्रकृति की उद्वेलना प्रार भ हो जाती है। इन दोनों प्रकृतियों की स्थिति घटकर जब स्थावर में एक सागर और त्रसों में पृथ€त्व सागर तक नहीं रह जाती तब तक उस जीव में प्रथमोपशम स य€त्व प्राप्ति की योग्यता नहीं आती। मात्र क्षयोपशम स य€त्व प्राप्त करने की योग्यता रहती है। इतने काल को वेदक प्रायोग्य काल कहते हैं अर्थात् इस काल में क्षयोपशम स य€त्व हो सकता है पर उपशम स य€त्व नहीं हो सकता।

प्रश्न प्रथमोपशम स यग्दृष्टि जीव के अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना स भव है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 321)

उ□ ार- इस स बन्ध में आचार्यों के दो मत हैं। कोई आचार्य मानते हैं और कोई नहीं मानते। वर्तमान में प्रत्यक्ष ज्ञानी जीवों का अभाव हो जाने से इस स बन्ध में अन्तिम निर्णय नहीं किया जा सकता।

प्रश्न सर्वोपशम और देशोपशम से €या तात्पर्य है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 321)*

उ□ ार- दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों के उदय का अभाव हो जाना सर्वोपशम कहलाता है। इसके उदय होने पर उपशम स य€त्व होता है। तथा मिथ्यात्व और स यक् मिथ्यात्व के अनुदय तथा देशघाति स यक् प्रकृति रूप देशोपशम है। इसके होने पर क्षायोपशमिक स य€त्व होता है।

प्रश्न किस स य€त्व से कौनसा स य€त्व होना स ाव है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 321)*

उ□ ार- प्रथमोपशम स य€त्व हमेशा मिथ्यादृष्टि जीव को ही होता है। इससे क्षायोपशमिक स य€त्व हो सकता है, क्षायिक स य€त्व नहीं। क्षायोपशमिक से द्वितीयोपशम स य€त्व अथवा क्षायिक स य€त्व हो सकता है। द्वितीयोपशम स य€त्व से गिरकर क्षायोपशमिकस य€त्व हो सकता है क्षायिक नहीं। स यक् मिथ्यात्व से क्षायोपशमिक स य€त्व हो सकता है, प्रथमोपशम और द्वितीयोपशम नहीं। क्षायिक स य€त्व के बाद अन्य किसी भी स य€त्व की आवश्यकता नहीं है।

प्रथमोपशम की उत्पZ्ा प्रथम गुणस्थान वाले जीवों को ही होती है। द्वितीयोपशम की उत्पZ्ा चार से सात गुणस्थान वालों को, क्षयोपशम स य€त्व की उत्पZ्ा प्रथम, तृतीय व चतुर्थ से सप्तम गुणस्थान वालों को और क्षायिक स य€त्व की उत्पZ्ा चतुर्थ से सप्तम गुणस्थान वाले जीवों को होती है।

प्रश्न €या प्रथमोपशम स य€त्व एक भव में कई बार हो सकता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 322)*

उ ार- एक बार प्रथमोपशम स य€त्व होने के बाद उस जीव को पुन: होने में जघन्य अन्तर पल्य का असं यातवाँ भाग अर्थात् असं यात वर्ष होता है। कर्मभूमिज तिर्यञ्च या मनुष्य की उत्कृष्ट आयु एक पूर्व कोटि से अधिक नहीं होती। जिसमें सं यात वर्ष ही होते हैं अर्थात् 84 लाख × 84 लाख × 1 करोड़ वर्ष होते हैं। यह सं या असं यात वर्ष से कम है। इसलिए किसी भी कर्मभूमियाँ तिर्यञ्च और मनुष्य को एक भव में दुबारा प्रथमोपशम स य€त्व नहीं होता है। भोगभूमियाँ मनुष्य, तिर्यञ्च और सं यात वर्ष से अधिक आयु वाले देव-नारकियों को उनकी आयु के अनुसार कई बार प्रथमोपशम स य€त्व हो सकता है।

प्रश्न प्रथमोपशम स य€त्व प्राप्त करने वाले जीव की सZ्ा में 26, 27 या 28 कितनी प्रकृतियाँ होती हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 325)*

उ ार- प्रथमोपशम स य€त्व प्राप्त करने वाला अनादिमिथ्यादृष्टि जीव 26 प्रकृतियों की सZ्ा वाला होता है। कोई प्रथमोपशम स य€त्वी या क्षायोपशमिक स यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व में गिर जाये और उसके कुछ काल बाद सZ्ा में पृथ€त्व सागर से कम स्थिति वाली स यग्मिथ्यात्व और स यक् प्रकृति हो तो 28 प्रकृति वालों को भी प्रथमोपशम स य€त्व हो सकता है और कुछ समय पश्चात् स पूर्ण स यक् प्रकृति की उद्वेलना हो गयी है परन्तु स यग्मिथ्यात्व बची हो तो 27 प्रकृतियों की सZ्ा के साथ प्रथमोपशम स य€त्व हो सकता है तथा उद्वेलना पूरी हो जाने पर 26 प्रकृति की (सादिमिथ्यादृष्टि) सZ्ा वाला प्रथमोपशम स य€त्व प्राप्त करता है।

प्रश्न प्रथमोपशम स य€त्व के काल में निर्जरा होती है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 325)*

उ ार- प्रथमोपशम स यग्दर्शन होने पर जब तक परिणामों में प्रतिसमय विशुद्धि बढ़ती रहती है तब तक असं यातगुणी निर्जरा कही है। उसके बाद विशुद्धि घटने पर निर्जरा भी घटने लगती है।

प्रश्न देवगति में स यग्दर्शन की उत्पZ्ा के कौन-कौन से बाह्य कारण होते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 326)*

उ ार- देवगति में बारहवें स्वर्ग तक जातिस्मरण, धर्मोपदेश तथा जिनमहिमादर्शन एवं अन्य देवों की ऋद्धिदर्शन के द्वारा स यग्दर्शन हो सकता है। बारहवें स्वर्ग से ऊपर देवऋद्धि दर्शन के द्वारा उपशम स य€त्व नहीं होता €योंकि बारहवें स्वर्ग से ऊपर मात्र शु€ल लेश्या होती है और उन जीवों को अन्य देवों का विशेष वैभव या ऋद्धि देखने से सं€लेश नहीं होता। उनको अन्य तीनों कारणों से प्रथमोपशम स य€त्व हो सकता है। ग्रैवेयक के देवों को देवऋद्धिदर्शन और जिनमहिमा दर्शन से भी स य€त्व नहीं होता €योंकि वे भगवान् के पञ्चकल्याणक आदि

में नहीं आते हैं। भगवान् के कल्याणकों में सोलहवें स्वर्ग तक के देव ही आते हैं। ग्रैवेयकवासी देवों को आपसी बारह भावना आदि की चर्चा से या जातिस्मरण से स यक्€त्व होना स भव होता है। अनुदिश व अनुžार के देव स यग्दृष्टि ही होते हैं। अत: उनके स यक्€त्वोत्पŽि का प्रसङ्ग ही नहीं आता।

प्रश्न तिर्यञ्चों को जन्म के कितने समय बाद स यग्दर्शन हो सकता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 326)

उ□ ार– 'धवला पुस्तक 4' के अनुसार देवकुरु और उžारकुरु में उत्पन्न सादिमिथ्यादृष्टि 28 प्रकृति वाले जीव के जन्म से लेकर, मुहूर्त पृथक्€त्व में क्षायोपशमिक स यग्दर्शन हो सकता है। कर्म ूमि का तिर्यञ्च भी 2 माह गर्भ में रहकर, जन्म लेकर पृथक्€त्व मुहूर्त पश्चात् स यक्€त्व या संयमासंयम को प्राप्त कर सकते हैं। स मूर्च्छन तिर्यञ्च उपशम स यक्€त्व प्राप्त नहीं कर सकते हैं। उनके क्षायोपशमिक स यग्दर्शन हो सकता है। मच्छ, कछुवा, मेंढक आदि स मूर्च्छन सैनी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक तिर्यञ्चों के वेदक स यक्€त्व हो सकता है और वह पर्याप्त होकर तीन अन्तर्मुहूर्त बाद संयमासंयम को भी प्राप्त करके तीन अन्तर्मुहूर्त कम 1 करोड़ पूर्व तक पञ्चम गुणस्थान में रह सकता है। यह तिर्यञ्चगति में पंचम गुणस्थान के उत्कृष्टकाल का प्रमाण है।

'धवला पुस्तक 6' के अनुसार गर्भज तिर्यञ्च जन्म के बहुत दिवस पृथक्€त्व बाद प्रथमोपशम स यक्€त्व प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु मात्र 7–8 दिन के बाद नहीं।

प्रश्न द्वितीयोपशम स यक्€त्वी जीव नियम से श्रेणी आरोहण करते हैं या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 327)

उ□ ार– द्वितीयोपशम स यक्€त्व की उत्पŽि दिग बर मुनि के चतुर्थ से सप्तम गुणस्थान तक होती है लेकिन उन्हीं के होती है जो अन्तर्मुहूर्त में नियम से श्रेणी आरोहण करते हैं।

प्रश्न वेदक स यक्€त्व से पूर्व कितने करण होते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 327)*

उ□ ार– क्षायोपशमिक स यक्€त्व, क्षायोपशमिक चारित्र तथा संयमासंयम से पूर्व अध:करण तथा अपूर्वकरण ये दो करण होते हैं। अनिवृŽिरूप परिणाम नहीं होते हैं। अनिवृŽिकरणरूप परिणाम औपशमिक और क्षायिक भाव से पूर्व ही होते हैं। अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना से पूर्व भी अनिवृŽिकरण रूप परिणाम होते हैं। यदि कोई क्षायोपशमिक स यक्€त्वी जीव मिथ्यात्व में पहुँचकर तुरन्त वापिस आता है तो उसे कदाचित् एक भी करण आवश्यक नहीं होता है।

प्रश्न स यग्मिथ्यात्व और स यक् प्रकृति की स्थिति प्रायोग्यलŽध में मिथ्यात्व की स्थिति के अनुसार अन्त:कोडाकोडी सागर होती है। तो €या इन दोनों प्रकृतियों की उत्कृष्ट स्थिति इससे ज्यादा भी होती है ?

उ□ ार– यदि कोई जीव चतुर्थ गुणस्थान से प्रथम गुणस्थान में पहुँचे और वहाँ पहुँचकर अन्तर्मुहूर्त काल में 70

कोडा–कोडी सागर स्थिति वाले मोहनीय को बाँधकर अन्तर्मुहूर्त काल में ही पुन: वेदक स य€त्व को प्राप्त कर लेता है। तो उसकी सž ा में, नवीन बन्धे हुये मिथ्यात्व का जो द्रव्य स यग्मिथ्यात्व और स यक्प्रकृति में संक्रमित होता है उसकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम 70 कोडाकोडीसागर प्रमाण होती है। इस प्रकार स यग्मिथ्यात्व और स य€प्रकृति की उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम 70 कोडा–कोडी सागर माननी चाहिये।

प्रश्न पं. श्री दौलतरामजी ने एवं पं. श्री बनारसीदास जी ने क्षायोपशमिक स य€त्व के सात भेद किये हैं, वे किस प्रकार हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 327)*

उ ार– उपर्युक्त दोनों विद्वानों के द्वारा कहे गये क्षायोपशमिक स य€त्व के 7 भेद इस प्रकार हैं–

1 उपशम स य€त्व के पश्चात् जब स य€प्रकृति की तो उदीरणा होकर उदय हो जाये और मिथ्यात्व और स यग्मिथ्यात्व का उपशम रहा आये, तब पहला भेद होता है।

2 मिथ्यात्व गुणस्थान से क्षयोपशम स य€त्व प्राप्त करने पर दूसरा भेद होता है। इसमें मिथ्यात्व और स यग्मिथ्यात्व उदयावली में तो रहते हैं परन्तु उदय से एक समय पूर्व स यक्प्रकृतिरूप संक्रमित होकर उदय में आते हैं।

3 किसी वेदक स य€त्वी ने अनन्तानुबन्धी कषाय का विसंयोजन कर दिया और सž ा में मोहनीय कर्म की मात्र 24 प्रकृतियाँ रह गयीं, ऐसे जीवों को वेदक स य€त्व का तीसरा भेद होता है।

4 कोई वेदक स य€त्वी क्षायिक स य€त्व के अभिमुख हो और उसने मिथ्यात्व प्रकृति का स पूर्ण रूप से स यग्मिथ्यात्व में संक्रमण कर दिया हो तो वह 23 प्रकृति वाला वेदक स य€त्वी होता है।

5 दर्शनमोह की क्षपणा करने वाला जीव जब स यग्मिथ्यात्व को भी स यक्प्रकृतिरूप कर दे और सž ा में केवल 22 प्रकृतियाँ रह जाये यह वेदकस य€त्व का पाँचवाँ ोद होता है।

6 28 प्रकृति वाला जीव जब मिश्र गुणस्थान को प्राप्त कर लेता है तब यह क्षायोपशमिक स य€त्व का छठा भेद हुआ। राजवार्तिक में 2/5 की टीका में कहा गया है कि वेदक स य€त्व के ग्रहण करने पर स यग्मिथ्यात्व का भी ग्रहण हो जाता है।

7 अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना वाला जीव जब मिश्र गुणस्थान को प्राप्त होता है तब उसका सातवाँ भेद बन जाता है।

प्रश्न वेदक स य€त्व में शङ्कादिक 25 दोष लगते हैं या नहीं और इसमें गुणश्रेणी निर्जरा होती है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 329)*

उ ार– औपशमिक एवं क्षायिक स य€त्व में 25 दोषों में से एक भी दोष नहीं लगता है। परन्तु क्षायोपशमिक स यग्दर्शन में स यक् प्रकृति का उदय होने से दोष लगते हैं। यदि यहाँ पर यह प्रश्न किया जाये कि क्षायोपशमिक स यग्दृष्टि के सदोष अवस्था में दर्शनविशुद्धि भावना तथा तीर्थङ्करप्रकृति का बन्ध कैसे स भव हो सकेगा ? इसका उž र यह है कि क्षायोपशमिक स यग्दृष्टि के स यक्प्रकृति का तीव्र उदय होने पर कदाचित् दोष लगते हैं। मन्द उदय होने से नहीं लगते हैं। दर्शन विशुद्धि आदि भावना भाने वाले जीव के स य€प्रकृति का

मन्द उदय रहता है तभी तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध स भव है। उनके क्षायोपशमिक स य€त्व में, दोष नहीं लगते हैं। क्षायोपशमिक स य€त्व के उत्पŽि के काल में गुणश्रेणी निर्जरा नहीं होती है। गुणश्रेणी निर्जरा तो उपशम स य€त्व और क्षायिक स य€त्व के साथ ही संभव है।

प्रश्न कोई विद्वान वेदक स य€त्व का उत्कृष्ट काल 132 सागर बताते हैं। वह कैसे घटित होता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 331)

उ ार- क्षायोपशमिक स य€त्व का उत्कृष्ट काल 132 सागर नहीं है। 132 सागर तो मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अन्तर काल है। एक जीव को वेदक स य€त्व अधिक से अधिक 66 सागर तक स्थिति वाला हो सकता है। यदि 66 सागर के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में उस जीव ने दर्शनमोह की क्षपणा प्रार भ नहीं की तो वह तीसरे गुणस्थान या पहले गुणस्थान में गिरता ही है। इससे अधिक समय तक क्षायोपशमिक स य€त्व नहीं रहता। यदि वह जीव उस काल में मिश्र गुणस्थान में गिरे और पुन: क्षायोपशमिक स य€त्व प्राप्त कर ले तो 66 सागर तक दुबारा वेदक स य€त्वी रह सकता है। इस प्रकार 66 + 66 = 132 सागर तक वह मिथ्यात्व रहित होकर रह सकता है। इसके अन्त में यदि उस जीव ने क्षायिक स य€त्व प्राप्त नहीं किया तो वह नियम से मिथ्यात्व में गिर जाता है। ऐसा नियम नहीं है कि दो बार 66 + 66 सागर तक क्षायोपशमिक स य€त्व में रहने वाला जीव मिथ्यात्व में आवे ही नहीं। इस प्रकार मिथ्यात्व का उत्कृष्ट अन्तर 132 सागर और वेदक स य€त्व का उत्कृष्ट काल 66 सागर होता है।

प्रश्न कृतकृत्यवेदी स यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व में गिर सकते हैं या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 332)

उ ार- कृतकृत्यवेदी जीव ने स पूर्ण मिथ्यात्व का क्षय कर दिया है, अत: अब वह नियम से अन्तर्मुहूर्त में क्षायिक स यग्दृष्टि बनता ही है। उसके मिथ्यात्व में गिरने का कोई प्रश्न ही नहीं है।

प्रश्न स य€त्व गुण और स यक् प्रकृति में €या अन्तर है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 333)*

उ ार- स य€त्व यह तो स यग्दर्शन का संक्षेप है। यह आत्मा का गुण है तथा सप्त तžवों के यथार्थ श्रद्धान से प्रकट होता है। इसमें प्रशम, संवेग, अनुक पा और आस्ति€य गुण की प्रधानता रहती है। जबकि स य€त्व प्रकृति तो दर्शनमोहनीय का एक भेद है, यह पुद्गल द्रव्य की अशुद्ध पर्याय है जो स य€त्व में शिथिलता और अस्थिरता की कारणभूत है। यह स य€त्व का नाश तो नहीं करती परन्तु उसमें शिथिलता लाती है।

प्रश्न वेदक स य€त्वी जीव के अनन्तानुबन्धी कषाय, मिथ्यात्व और स यग्मिथ्यात्व प्रकृति उदयावली में रहती हैं या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 334)*

उ ार- वेदक स य€त्वी जीव के अनन्तानुबन्धी चार, मिथ्यात्व और स यग्मिथ्यात्व ये 6 प्रकृतियाँ उदयावली में तो रहती हैं परन्तु उदय में आने से एक समय पूर्व उनका स्तिवुक संक्रमण होकर अन्य सजातीय प्रकृतिरूप

संक्रमण होता है अर्थात् स्वमुख उदय नहीं होता, परमुख उदय होता है। मिथ्यात्व और स यग्मिथ्यात्व तो स यक् प्रकृतिरूप होकर उदय में आती हैं और अनन्तानुबन्धी कषाय, अप्रत्या यानावरण आदि रूप से उदय में आती हैं।

यह भी जानना चाहिये कि उपशम स य€त्व के काल में जब सात प्रकृतियों का उपशम रहता है तब दर्शन मोहनीय की तीनों प्रकृतियाँ उदय में नहीं रहती और अनन्तानुबन्धी चतुष्क का द्रव्य स्तिवुक संक्रमण होकर अप्रत्या यानावरण आदि रूप उदय में आता रहता है।

प्रश्न दर्शनमोह की क्षपणा अर्थात् क्षय कौन मनुष्य कर सकता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 336)*

उ□ ार- इस स बन्ध में निम्न बातें जानने योग्य हैं-

1 क्षपणा का प्रार भ देव, नारकी, कोई भी तिर्यञ्च अथवा भोगभूमियाँ जीव नहीं कर सकते।

2 क्षपणा का प्रार भ अढाई द्वीप की पाँच भरत, पाँच ऐरावत और पाँच विदेह इन पन्द्रह कर्मभूमियों के मनुष्य गति के जीव ही कर सकते हैं।

3 क्षपणा का प्रार भ केवली या श्रुतकेवली के पादमूल अर्थात् चरणकमलों में ही होता है अथवा जिस काल में केवली और श्रुतकेवली हों तब ही हो सकता है, €योंकि क्षपणा के योग्य परिणामों की विशुद्धि उनके चरणों में बैठकर ही संभव है।

4 क्षपणा का प्रार भ करने वाला जीव, 'संतक मपज्जिया' ग्रन्थ के अनुसार, वज्रर्षभनाराच संहनन वाला ही होना चाहिये, अन्य संहनन वाला नहीं।

5 उपर्युक्त सभी बातें क्षपणा के प्रार भ करने वाले के स बन्ध में है जिसे प्रस्थापक कहा जाता है। परन्तु क्षपणा की पूर्णता अर्थात् क्षायिक स यग्दर्शन की प्राप्ति अथवा निष्ठापक चारों गति वाले हो सकते हैं। जब वह कृतकृत्य वेदक होकर यदि मरण करेगा तो अगली पर्याय की निवृत्यपर्याप्तक अवस्था में ही क्षायिक स य€त्व को पूर्ण कर लेगा अर्थात् क्षायिक स य€त्वी बन जायेगा।

प्रश्न यदि कोई जीव तीर्थङ्कर के रूप में जन्म ले और उसका स यग्दर्शन क्षायोपशमिक हो तो वह क्षायिक स यग्दृष्टि कैसे बनेगा €योंकि तीर्थङ्कर गृहस्थावस्था में किसी भी केवली या श्रुतकेवली के चरणों में नहीं जाते ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 337)*

उ□ ार- वे गृहस्थावस्था के तीर्थङ्कर जब मुनि अवस्था धारण करते हैं तब वे स्वयं ही श्रुतकेवली बन जाते हैं और स्वयं ही दर्शनमोहनीय की क्षपणा कर लेते हैं। उनको केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में जाने की आवश्यकता नहीं होती।

प्रश्न किसी जीव के क्षायिक स यग्दर्शन को पहचाना जा सकता है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 338)

उ□ ार- सप्त प्रकृतियों का स पूर्ण क्षय हो जाने पर क्षायिक स यग्दर्शन होता है। इसकी पहचान मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के द्वारा नहीं हो सकती। परन्तु कोई अवधिज्ञानी मुनिराज, जो कार्मण वर्गणाओं को जानने योग्य

अवधिज्ञान के धारी हों, वे उस जीव की स ा में सप्त प्रकृतियों का अभाव देखकर अनुमान ज्ञान द्वारा उसके क्षायिक स य€त्व को जान सकते हैं। मन:पर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी तो जान ही सकते हैं। क्षायिक स यग्दर्शन उत्पन्न होने पर कोई बाह्यचिह्न प्रकट नहीं होता है।

प्रश्न €या क्षायिक स य€त्व स्त्रियों के हो सकता है ? €योंकि धवला पुस्तक-1 में मनुष्यनी के तीनों

स य€त्व कहे हैं। *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 339)*

उ ार- क्षायिक स यग्दर्शन स्त्रियों के नहीं होता। कर्मभूमि की स्त्रियों के तीन हीन संहनन पाये जाते हैं। उनके प्रथम संहनन नहीं होता। अत: उनके शरीर की अयोग्यता के कारण क्षायिक स य€त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। धवला पुस्तक-1 में जो मनुष्यनी के तीनों स य€त्व बताये हैं उसमें उस पुरुष को लेना चाहिये जो भाव स्त्रीवेदी है परन्तु द्रव्यवेद पुरुष का है। ऐसे पुरुष के क्षायिक स य€त्व हो सकता है।

प्रश्न क्षायिक स य€त्व वाले जीव किन नरकों में पाये जाते हैं और उनकी सं या कितनी है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 340)

उ ार- क्षायिक स य€त्व नरकों में उत्पन्न नहीं किया जा सकता। नरक में या तो वे क्षायिक स यग्दृष्टि जीव, जिन्होंने स य€त्व होने से पूर्व नरकायु बाँध ली हो, वे पहुँचते हैं अथवा जो कृतकृत्यवेदी अवस्था में मरण करके नरक में पहुँचते ही क्षायिक स य€त्वी, निवृत्यपर्याप्तक अवस्था में ही बन जाते हैं। ऐसे दोनों प्रकार के क्षायिक स यग्दृष्टि प्रथम नरक में ही पाये जाते हैं। इनकी सं या असं यात है और इनकी आयु जघन्य से 84 हजार वर्ष और उत्कृष्ट पल्य के असं यातवें भाग कम एक सागर प्रमाण होती है। द्वितीय से सप्तम नरक के नारकियों में क्षायिक स य€त्व नहीं पाया जाता।

प्रश्न क्षायिक स यग्दृष्टि जीवों के कितने गुणस्थान होते हैं और इनकी उत्पZि पञ्चमकाल में स भव

है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 341)*

उ ार- क्षायिक स यग्दृष्टि जीवों के चार से चौदह गुणस्थान तक तथा सिद्धावस्था भी होती है। इतना विशेष है कि पंचम गुणस्थानवर्ती तिर्यञ्चों में क्षायिक स य€त्व नहीं होता। चतुर्थगुणस्थानवर्ती तिर्यञ्चों में उत्पन्न हो सकते हैं।

पंचमकाल में केवली और श्रुतकेवली का सद्भाव न होने से क्षायिक स य€त्व की उत्पZि संभव नहीं है। तथा प्रथम संहनन का अभाव होने से भी क्षायिक स य€त्व होना संभव नहीं है। कोई भी जीव विदेह क्षेत्र से क्षायिक स य€त्व लेकर पंचमकाल में उत्पन्न नहीं होता €योंकि पंचमकाल में उत्पन्न होने वाले सभी जीव नियम से मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। वे यहाँ आकर भी क्षायिक स य€त्व उत्पन्न नहीं कर सकते।

प्रश्न विसंयोजना और क्षपणा अर्थात् क्षय में अन्तर है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 341)*

उ ार- अनन्तानुबन्धी कषाय का क्षय नहीं होता, उसकी विसंयोजना होती है। यह विसंयोजना क्षय के समान ही है। इसमें अनन्तानुबन्धी का द्रव्य अप्रत्या यानावरण आदि कषायरूप परिणमा दिया जाता है। अनन्तानुबन्धी के अलावा अन्य किसी भी कर्मप्रकृति की विसंयोजना नहीं होती। विसंयोजना होने पर अनन्तानुबन्धी की स ा समाप्त हो जाती है। इस अपेक्षा से तो कथञ्चित् विसंयोजना और क्षय समान हैं। परन्तु कुछ असमानतायें भी हैं। क्षय होने वाली प्रकृति पुन: कभी भी बन्ध को प्राप्त नहीं होती अर्थात् फिर उसका सत्व कभी नहीं पाया जाता। परन्तु अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना होने पर वही जीव जब स य€त्व से गिरकर मिथ्यात्व में आ जाता है, तब सžा में स्थित सभी विसंयोजित वर्गणायें पुन: संयोजित होकर अनन्तानुबन्धी रूप हो जाती हैं। आत्मा में अनन्तानुबन्धी की स ा पुन: बन जाती है। इस प्रकार विसंयोजना और क्षय में अन्तर है।

प्रश्न उपशम स य€त्व और क्षायिक स य€त्व में कौन अधिक विशुद्ध है और €यों ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 342)

उ ार- उपशम स य€त्व से क्षायिक स य€त्व अत्यधिक विशुद्ध है। यद्यपि दोनों निर्दोष और पूर्ण शुद्ध हैं परन्तु उपशम स य€त्वी के दर्शनमोहनीय कर्म की सžा है और वह नियम से अन्तर्मुहूर्त पश्चात् च्युत होता ही है। जबकि क्षायिक स य€त्वी के दर्शनमोह की सžा नहीं है और यह कभी भी क्षायिक स य€त्व से च्युत नहीं होता। तžवार्थसूत्र में जो असं यात गुणश्रेणी निर्जरा के स यग्दृष्टिश्रावकादि ग्यारह स्थान बताये हैं उनमें भी उपशम स य€त्व वाले जीव से क्षायिक स य€त्वी जीव की निर्जरा अधिक बतायी है। अत: दोनों में समान शुद्धता होने पर भी क्षायिक स य€त्व में विशुद्धता अधिक है।

प्रश्न क्षायिक स यग्दृष्टि जीव जघन्य एवं उत्कृष्ट से कितने भव संसार में ले सकता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 343)

उ ार- क्षायिक स य€त्व हो जाने के पश्चात् मनुष्य उसी ाव से मोक्ष जा सकता है। मनुष्य से देव अथवा नारकी की पर्याय में गया तो वहाँ से आकर मनुष्य बनकर उस तीसरे भव में नियम से मोक्ष जायेगा। क्षायिक स य€त्व होने से पूर्व मनुष्यायु अथवा तिर्यञ्चायु का बन्ध कर लिया हो तो वह नियम से भोगभूमि का मनुष्य या तिर्यञ्च बनेगा और वहाँ से सौधर्म या ईशान स्वर्ग का देव होकर, कर्मभूमि का मनुष्य होकर उस चतुर्थ भव में नियम से मोक्ष जायेगा। किसी भी क्षायिक स यग्दृष्टि को 4 से अधिक भव संसार में नहीं लेने होते हैं।

प्रश्न अमितगति श्रावकाचार तथा राजवार्तिक में क्षायिक स य€त्व को वीतराग स य€त्व कहा है जबकि समयसार आदि ग्रन्थों की टीका में वीतराग चारित्र से अविनाभूत वीतराग स य€त्व कहा है। यह दो प्रकार का कथन यों है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 344)*

उ ार- वास्तव में वही स य€त्व वीतराग स य€त्व है जो वीतराग चारित्र (निश्चय चारित्र) से अविनाभूत हो। अर्थात् वीतराग चारित्र न होने पर निश्चय स य€त्व या वीतराग स य€त्व नहीं होता। परन्तु उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों में

क्षायिक स य€त्व को वीतराग स य€त्व कहने का ऐसा अभिप्राय प्रतीत होता है कि क्षायिक स य€त्वी जीव क्षपक श्रेणी में चारित्र मोहनीय कर्म का क्षय करके पूर्ण वीतरागी हो सकता है। अत: क्षायिक स यग्दर्शन को वीतराग स य€त्व कहा है। क्षयोपशम और उपशम स य€त्वी चारित्रमोह का क्षय नहीं कर सकते, इस कारण उन दोनों को सराग स यग्दर्शन कहा है। इस प्रकार हमें दोनों मतों का समन्वय कर लेना चाहिये।

प्रश्न क्षायिक स य€त्व चतुर्थ गुणस्थान में भी हो जाता है और केवली के भी होता है। तो इन दोनों के क्षायिक स य€त्व में कुछ अन्तर है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 344)*

उ□ ार- सात प्रकृतियों के क्षय हो जाने पर क्षायिक स य€त्व पूर्ण होता है। परन्तु चतुर्थ गुणस्थान वाले के उस क्षायिक स य€त्व में अवगाढ़, परमावगाढ़ संज्ञा नहीं होती €योंकि पूर्ण श्रुतज्ञान या श्रुतकेवली होने पर वही क्षायिक स य€त्व अवगाढ़ संज्ञा वाला हो जाता है तथा केवल ज्ञान होने पर परमावगाढ़ संज्ञा हो जाती है अर्थात् ज्ञानापेक्षया क्षायिक स य€त्व को अवगाढ़ व परमावगाढ़ संज्ञा प्राप्त होती है। इसी अपेक्षा से तेरहवें गुणस्थान में होने वाले क्षायिक चारित्र को अपूर्ण कहा जाता है और चौदहवें गुणस्थान में उसे ही पूर्ण कहा जाता है। उसी प्रकार परमार्थत: चतुर्थ गुणस्थान और केवली के क्षायिक स य€त्व में अन्तर न होते हुये भी ज्ञानापेक्षया अथवा मुक्ति उत्पादनरूप कार्य की अपेक्षा अन्तर है।

प्रश्न स य€त्व का जघन्यकाल कितना है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 346)*

उ□ ार- स य€त्व का जघन्यकाल उसी जीव के होता है जिस जीव ने बहु बार स यग्दर्शन छोड़ा और ग्रहण किया हो और वह जघन्यकाल क्षुद्रभव से भी बहुत कम है। मिथ्यात्व का, स यग्मिथ्यात्व का, क्षयोपशम स य€त्व का, संयमासंयम का, संयम का और असंयम का जघन्यकाल समान है और वह क्षुद्रभव से भी कम है।

प्रश्न सामान्य से स यग्दर्शन का उत्कृष्ट काल कितना है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 346)*

उ□ ार- इस स बन्ध में दो मत प्राप्त होते हैं -

1. प्रथम मतानुसार स य€त्व का सामान्य उत्कृष्ट काल 4 पूर्व कोटि अधिक 66 सागर प्रमाण है। (धवला पु. 7, पृ.178)

2. द्वितीय मतानुसार स य€त्व का उत्कृष्ट काल पूर्व कोटि अधिक 99 सागर प्रमाण है। (धवला पु. 13, पृ. 109-110)

प्रश्न स यग्दर्शन के असं यात लोकप्रमाण और अनन्त भेद कैसे होते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 347)*

उ□ ार- स य€त्व आत्मा का परिणाम है। श्रद्धा करने वाले जीव के परिणामों की अपेक्षा से तथा उस श्रद्धा के विषयभूत जीवादि तž्वों के भेद से उस स य€त्व के असं यात व अनन्त भी भेद हो सकते हैं।

प्रश्न संसार के छेद करने में कौन-कौन से कारण कहे गये हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 351)*

उ□ ार- नित्य निगोद से निकलकर मनुष्य होकर प्रथमोपशम स य€त्व के प्रथम समय में अनन्तानन्त संसार काल का छेद होकर अर्धपुद्गलपरावर्तन काल रह जाता है। यदि उस जीव का समाधिमरण हो तो अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल छिदकर जघन्य से दो, तीन भव और उत्कृष्ट से सात-आठ भव रह जाता है।

यदि वह जीव उसी भव में क्षायिक स य€त्वी हो जावे तो अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल कटकर अधिक से अधिक चार भव रह जाता है।

यदि वह जीव तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध कर ले तो अधिक से अधिक तीन ाव रह जाता है। यदि क्षपक श्रेणी आरोहण करे तो उसी भव की शेष आयु प्रमाण संसारकाल रह जाता है।

प्रश्न सर्वार्थसिद्धि और राजवार्तिक में काललि□ ध के तीन भेद कहे हैं(2/3)-

1. जिसका अर्धपुद्गल परावर्तन काल मात्र शेष रह गया हो।

2. कर्मस्थिति अन्त:कोटाकोटी सागर प्रमाण हो।

3. संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, भव्य और सर्वविशुद्ध परिणाम वाला हो।

शंका- जिस जीव के ये तीनों काललब्धि होती हैं उस जीव के प्रथम स य€त्व ग्रहण करने की योग्यता होती है। इसको समझाइये। *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 356)*

उ□ ार- काललब्धि से तात्पर्य उस समय से है जब जीव को स य€त्व प्राप्त करने की योग्यता होती है। प्रथम स य€त्व ग्रहण करने की योग्यता के स बन्ध में गाथा 307-कार्तिकेयानुप्रेक्षा में इस प्रकार कहा है- ''चारों गति के भव्य, संज्ञी, पर्याप्त, विशुद्धपरिणामी तथा जागता हुआ जीव संसार तट के निकट होने पर स य€त्व को प्राप्त करता है।''

जब कोई जीव प्रथमोपशम स य€त्व प्राप्त करने के लिए पाँच लब्धि करता हुआ प्रायोग्यलब्धि में आता है तो उसके सžा स्थित कर्मों की स्थिति अन्त:कोडाकोडी सागर प्रमाण हो जाती है। बिना प्रायोग्यलब्धि के प्रथमोपशम स य€त्व प्राप्ति संभव नहीं, इसीलिए प्रायोग्य लब्धि की प्राप्ति दूसरी काललब्धि है। प्रथम काललब्धि का तात्पर्य है जिस जीव का अर्धपुद्गलपरावर्तन काल शेष रह गया हो तब ही वह जीव स य€त्व प्राप्ति की योग्यता वाला होता है।

प्रश्न अर्धपुद्गल परिवर्तन काल शेष रहने का तात्पर्य €या है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 356)*

उ□ ार- इस स बन्ध में विशेष बात यह है कि पञ्चपरावर्तन करते हुए किसी जीव का द्रव्य परिवर्तन चल रहा हो (द्रव्य परिवर्तन को पुद्गल परिवर्तन भी कहते हैं) और उस पुद्गलपरिवर्तन का आधा काल व्यतीत हो गया हो तो वह जीव स यग्दर्शन प्राप्ति की योग्यता वाला होता है। यदि उस काल में तद्योग्य पुरुषार्थ न हो तो उस पुद्गल परिवर्तन पूरे होने के उपरान्त जब अगला पुद्गल परिवर्तन शुरु होता है तो उसका प्रथम आधा भाग स य€त्व प्राप्ति की योग्यता नहीं रखता है। इसी तरह प्रत्येक पुद्गल परिवर्तन के प्रार भ के आधे भाग तक स य€त्व प्राप्ति की योग्यता नहीं होती है।

प्रश्न अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल संसार शेष रहने पर स य€त्व होता है या स य€त्व होने पर अर्धपुद्गल परिवर्तन काल शेष रह जाता है ? यह ी बताइये कि मिथ्यात्व के तीन टुकड़े अनिवृŸाकरण के अन्तिम समय में होते हैं या स य€त्व प्राप्ति के प्रथम समय में ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 358-368)*

उ ार- इस स बन्ध में आचार्यों की दो मान्यतायें हैं-

1. प्रथम मतानुसार करण लŽिध के अन्तिम समय में सž।ा स्थित मिथ्यात्व तीन भागों में बँट जाता है-1. मिथ्यात्व, 2. स यग्मिथ्यात्व 3. स यक्प्रकृति। इन आचार्यों की मान्यतानुसार अनिवृŸाकरण के अन्तिम समय में दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों की सž।ा बन जाती है तब प्रथमोपशम स य€त्व प्राप्त करने के लिए वह जीव नियम से सात प्रकृतियों का ही उपशम करता है। इन आचार्यों के अनुसार अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के पाँच प्रकृतियों के (अनन्तानुबन्धी कषाय चार व मिथ्यात्व) उपशम से स यग्दर्शन नहीं होता।

2. द्वितीय मतानुसार उपशम स य€त्व प्राप्त होने के प्रथम समय में पाँच प्रकृतियों का उपशम करता है और स य€त्व प्राप्ति के प्रथम समय में ही वह जीव मिथ्यात्व के तीन टुकड़े करता है। तब ही उसका अनन्त संसार कटकर या छिदकर अर्धपुद्गलपरावर्तन मात्र रह जाता है।

उपर्युक्त दोनों मान्यतायें धवला जी में वीरसेन स्वामी ने लिखी हैं। उन्होंने यह भी लिखा है कि कोई मिथ्यात्वी जीव अनिवृŸाकरण के अन्तिम समय में मिथ्यात्व के तीन टुकड़े करता है और कोई जीव स य€त्व प्राप्ति के प्रथम समय में तीन टुकड़े करता है।

प्रश्न व्रती के शल्य नहीं होती योंकि *'निःशल्यो व्रती' कहा है*। **तो या शल्य वाले जीव को स यग्दर्शन हो सकता है ?** *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 371)*

उ ार- तीन शल्यों का स्वरूप इस प्रकार है-

1. माया शल्य- मेरे परस्त्री की वाञ्छारूप, अन्य जीव को मारने-बाँधने रूप खोटा ध्यान है पर कोई पहचान नहीं पाता। इस प्रकार जो duplicate क्रिया करता है, उसके माया शल्य होती है।

2. मिथ्यात्व शल्य- जिसे स य€त्व और आत्मश्रद्धान में रुचि नहीं है।

3. निदान शल्य- जो निरन्तर भोगों में अपने चि ा को लगाये रहता है।

इन परिभाषाओं से प्रतीत होता है कि इन शल्यों के होने पर स य€त्व होना दुर्लभ है। मिथ्यात्व शल्य होते हुये तो स य€त्व हो ही नहीं सकता है।

प्रश्न स यग्दृष्टि जीव मरण कर भाव स्त्रीवेद या द्रव्यस्त्रीवेद में जन्म ले सकता है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 372)*

उ ार- जो स य€त्व सहित मरण करते हैं वे स्त्री पर्याय में द्रव्यवेद सहित मनुष्यनी, तिर्यञ्चनी या देवाङ्गनाओं में उत्पन्न नहीं होते। उनके भावस्त्रीवेद भी नहीं होता।

प्रश्न स्वयंभूरमण समुद्र में असं यात तिर्यञ्च संयमासंयमी हैं। उनको स यग्दर्शन या संयमासंयम कैसे प्राप्त होता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 373)*

उ ार- देवों के द्वारा दिये गये उपदेश से अथवा जातिस्मरण के द्वारा स्वय भूरमण अर्धद्वीप और स्वय भूरमण समुद्र में स्थित तिर्यञ्चों को स य€त्व तथा संयमासंयम की प्राप्ति हो जाती है।

प्रश्न स यग्दृष्टि के जो नवीन कर्मों का बन्ध होता है, वह उसकी सǎा में उपस्थित कर्मों की स्थिति से कम होता है या अधिक ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 374)*

उ ार- स यग्दृष्टि जीवों के जो भी नवीन कर्मों का बन्ध होता है वह सǎा में स्थित कर्मों की स्थिति से बहुत कम होता है, उनसे ज्यादा कभी नहीं हो सकता। इसका कारण स य€त्व सहित परिणामों की विशुद्धि से है।

प्रश्न अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना किन-किन गतियों में स भव है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 374)

उ ार- चारों गतियों के उपशम व क्षयोपशम स यग्दृष्टि जीव श्री जयधवलानुसार अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना कर सकते हैं। यदि कोई पूछे कि अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना तो क्षायिक स य€त्व होने से पूर्व की जाती है तो नरक, तिर्यञ्च और देवगति में दर्शनमोहनीय की क्षपणा होती ही नहीं, फिर अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना वे जीव €यों करते हैं ? इसका समाधान यह है कि इन तीन गतियों के औपशमिक और क्षायोपशमिक स यग्दृष्टि जीवों के परिणामों की विशुद्धि के कारण विसंयोजना हो जाती है, किसी कारण के लिए नहीं होती।

प्रश्न स यग्मिथ्यात्व और स यक्प्रकृति की सǎा वाले जीव कहाँ-कहाँ पाये जाते हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 374)

उ ार- स यग्दृष्टि जीव जिसकी सǎा में दोनों प्रकृतियाँ हो वह स य€त्व से गिरकर मिथ्यात्व में आ जाये तो इन दोनों प्रकृतियों के उद्वेलना काल में एकेन्द्रियादि पर्यायों में उत्पन्न हो सकता है। एकेन्द्रिय जीव स पूर्ण लोक में व्याप्त हैं। अत: इन दोनों प्रकृतियों के सǎा वाले जीव स पूर्ण लोक में पाये जाते हैं।

प्रश्न सामान्य क्षायोपशमिक स यग्दर्शन अपर्याप्त अवस्था में होता है या नहीं ? यदि हाँ तो कहाँ ?

उ ार- कृतकृत्यवेदक स यग्दर्शन तो चारों गतियों में अपर्याप्तावस्था में पाया जाता है परन्तु सामान्य क्षायोपशमिक स यग्दर्शन -

1. जब कोई नारकी मनुष्य गति में आये।
2. जब कोई तिर्यञ्च देवगति में जाये।
3. जब कोई मनुष्य देवगति में जाये।
4. जब कोई देव मनुष्य गति में आये तब ही पाया जा सकता है। इन चार अवस्थाओं के अलावा कभी भी अपर्याप्तावस्था में क्षायोपशमिक स य€त्व नहीं पाया जा सकता।

प्रश्न प्रायोग्यलŽिध के तथा प्रथम स य€त्व की उत्पŽि के समय स्थितिबन्ध में €या अन्तर है ?

उ□ ार– प्रायोग्यलŽिध के समय जो स्थिति बन्ध होता है उसकी अपेक्षा अध:प्रवृŽ िकरण के प्रथम समय स बन्धी स्थितिबन्ध सं यातगुणा हीन है।

उसकी अपेक्षा अध:करण के अन्तिम समय में स्थितिबन्ध सं यातगुणा हीन है। इसी तरह अपूर्वकरण के प्रथम समय स बन्धी स्थिति बन्ध से अपूर्वकरण का अन्तिम समय स बन्धी स्थितिबन्ध सं यातगुणा हीन है। इसी तरह अनिवृŽिकरण में भी समझना चाहिये।

इस प्रकार प्रायोग्यलŽिध के समय जो स्थितिबन्ध होता है उससे सं यातगुणा हीन स्थितिबन्ध प्रथमोपशम स य€त्व की उत्पŽि के समय होता है।

प्रश्न स यग्दर्शन गुण है या पर्याय ?

उ□ ार– आत्मा में अनन्तगुण होते हैं। उसमें जो श्रद्धा गुण है उसका परिणमन दो प्रकार का होता है। एक तो मिथ्या परिणमन और दूसरा स यक् परिणमन। जब श्रद्धा गुण का परिणमन मिथ्यारूप होता है तब वह मिथ्यादर्शन कहलाता है और जब श्रद्धा गुण का परिणमन स यक्‌रूप होता है तब वह स यग्दर्शन कहलाता है। इससे स्पष्ट है कि स यग्दर्शन गुण नहीं है, श्रद्धा गुण की स यक् पर्याय है।

प्रश्न तीनों ही स यग्दर्शनों के गुणस्थान बतलायें।

उ□ ार– प्रथमोपशम स यग्दर्शन चतुर्थगुणस्थान से सप्तम गुणस्थान तक, द्वितीयोपशम स यग्दर्शन चतुर्थ से ग्यारहवें गुणस्थान तक, क्षायोपशमिक स यग्दर्शन चतुर्थ से सप्तम गुणस्थान तक तथा क्षायिक स यग्दर्शन चतुर्थ से चौदहवें गुणस्थान तक तथा सिद्धों में भी पाया जाता है।

संज्ञित्व मार्गणा

प्रश्न केवली भगवान् को संज्ञी माना जाये या असंज्ञी ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 376)*

उ□ ार– अयोगकेवली, संज्ञी नहीं है □ योंकि इनके अतीन्द्रिय केवलज्ञान है। सयोगकेवली के मनोयोग तो है पर उनके नोइन्द्रियावरण कर्म का क्षयोपशम न होने से संज्ञीपना नहीं है। इसलिए केवली को हम संज्ञी नहीं कह सकते। केवली एकेन्द्रिय आदि जीवों के समान असंज्ञी भी नहीं हैं। अत: केवली भगवान् को संज्ञी व असंज्ञी इन दोनों से रहित कहा गया है।

प्रश्न असैनी जीवों के मन नहीं होता, फिर उनके प्रतिसमय बन्ध कैसे होता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 377)

उ□ ार– असंज्ञी जीवों के मन नहीं होता अत: मनोयोग भी नहीं होता। परन्तु उनके मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, वचनयोग और काययोग यथायोग्य होते ही हैं। अत: इन कारणों के होने से उनके प्रतिसमय सात या आठ कर्मों का बन्ध होता रहता है।

आहारक मार्गणा

प्रश्न आहार किसे कहते हैं और इसके कितने भेद हैं ? केवली भगवान् आहार लेते हैं या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 378)*

उ ार- औदारिकादि तीन शरीरों की स्थिति के लिए जो पुद्गल वर्गणायें ग्रहण की जाती हैं, वह आहार कहा जाता है। शरीर की स्थिति आयु कर्म के उदय में कारण है। अत: आहार को आयु कर्म का नोकर्म कहा गया है। इसके 6 भेद होते हैं-

नोकर्माहार- शरीर योग्य वर्गणाओं का ग्रहण करना। यह चारों गति के जीवों तथा केवली के भी होता है।

कर्माहार- कर्म वर्गणाओं का ग्रहण करना। यह भी चारों गतियों के जीवों तथा केवली के होता है।

कवलाहार- ग्रासरूप आहार होना। यह तिर्यञ्च और मनुष्यों के होता है। परन्तु केवली के नहीं होता है।

लेपाहार- यह पानी चूसने रूप वृक्षों के मु यतया होता है। अन्य एकेन्द्रियादि के भी लेपाहार ही मानना चाहिये।

ओजाहार- अण्डे के भीतर रहने वाले पक्षियों के ओजाहार होता है।

मानसिक आहार- देवों के मानसिक आहार होता है।

इनमें से केवलियों के कर्माहार और नोकर्माहार तो होते हैं परन्तु अन्य चार आहार नहीं होते।

प्रश्न कोई जीव कितने समय तक अनाहारक रह सकता है? उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल कितना है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 379)*

उ ार- विग्रहगति में एक मोड़ा लेने वाले जीव एक समय तक, दो मोड़े लेने वाले दो समय तक और तीन मोड़े लेने वाले जीव तीन समय तक अनाहारक रहते हैं। ये जीव अन्तिम समय में आहारक हो जाते हैं और उससे पहले समयों में अनाहारक रहते हैं। समुद्घातगत केवली प्रतर, लोकपूरण और प्रतर इन तीन अवस्थाओं में अर्थात् तीन समय तक अनाहारक रहते हैं। अयोगकेवली चौदहवें गुणस्थान के पूरे काल में अनाहारक ही रहते हैं। अर्थात् पाँच लघु अक्षरप्रमाण काल तक वे अनाहारक रहते हैं। ऋजुगति से गमन करने वाले विग्रहगति के जीवों की अनाहारक अवस्था नहीं होती योंकि वे उसी एक समय के अन्त में जन्म ले लेते हैं और आहारक भी बन जाते हैं।

प्रश्न केवली भगवान् प्रतर और लोकपूरण समुद्घात में, तथा विग्रहगति के जीव, कार्मणवर्गणाओं का ग्रहण तो करते हैं तो फिर उनको अनाहारक यों कहा ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 380)*

उ ार- तीन शरीर के योग्य वर्गणाओं का ग्रहण करना आहार है। विग्रहगति में, सयोगकेवली के तीन समयों में तथा अयोगकेवली गुणस्थान के काल में नोकर्मवर्गणाओं का ग्रहण न होने से उनको अनाहारक कहा जाता है। कर्म वर्गणाओं का ग्रहण करना आहार नहीं माना जाता।

प्रश्न जीव ऊर्ध्वगमनस्वभावी है। इसलिए सभी जीवों को विग्रहगति के प्रथम समय में अर्थात् शरीर छोड़ने के अनन्तर प्रथम समय में ऊपर ही जाना होगा। या ऐसा मानना ठीक है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 380)

उ ार- यद्यपि जीव ऊर्ध्वगमन स्वभावी है परन्तु संसारावस्था में इस स्वभाव का घात हो जाता है। ऊर्ध्वगमन स्वभाव जीव का लक्षण नहीं है अत: उसके घात से जीव का घात नहीं होता। अत: कोई भी जीव शरीर छोड़ने के बाद प्रथम समय में ऊपर ही जाता है, यह मान्यता ठीक नहीं है। यदि किसी जीव का अगला ाव नारकी का हो तो उसकी आत्मा मनुष्य पर्याय छोड़कर सीधा नीचे गमन करेगी, ऊपर नहीं।

प्रश्न विग्रहगति में किन जीवों को कितने मोड़े लेने पड़ते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 380)*

उ ार- ऋजुगति वाले एक भी मोड़ा नहीं लेते। अन्य जीव एक मोड़ा वाले या दो मोड़ा वाले होते हैं। त्रसनाड़ी में मरकर, त्रसनाड़ी में ही जन्म लेने वाले के अधिक से अधिक दो मोड़े स भव हैं। तीन मोड़े वही जीव लेते हैं जो विपरीत दिशा के निष्कुट क्षेत्र से मरकर विपरीत दिशा के निष्कुट क्षेत्र में उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न विग्रहगति में प्रतिसमय बन्ध होता है या नहीं ? यदि होता है तो यों ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 380)

उ ार- विग्रहगति में यद्यपि जीव के साथ औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर नहीं होता है तथापि कार्मण शरीर तो रहता है। अत: उसके कार्मण काययोग है। उसके योग और कषाय भी होते हैं जिससे कर्मों का आस्रव व बन्ध प्रतिसमय होता ही है। विग्रहगति में सुख-दु:ख का वेदन भी होता है। विग्रहगति का जीव शुभाशुभ परिणामों का कर्ता भी है अत: परिणामानुसार आयुकर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का आस्रव-बन्ध प्रतिसमय नियम से होता है।

प्रश्न आहारक शरीर और आहारक शरीराङ्गोपाङ्ग का बन्ध और उदय, उपशम-स य€त्व में होता है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 383)*

उ ार- उपशम स य€त्व में आहारक शरीर और आहारक अङ्गोपाङ्ग का बन्ध हो सकता है किन्तु उदय नहीं हो सकता। नियम यह है कि मन:पर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धि चारित्र, उपशम स य€त्व, आहारक काययोग तथा आहारक मिश्रकाययोग इनमें से किसी एक के होने पर अन्य चार नहीं होते हैं। इसलिए उपशम स य€त्व के काल में आहारक शरीर या आहारक अङ्गोपाङ्ग का उदय संभव नहीं है।

बंध

प्रश्न निगोदिया जीवों की आयु तो बहुत थोड़ी होती है। तो या उनके भी आठ अपकर्ष काल बनेंगे ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 383)

उ ार- निगोदिया जीव दो प्रकार के होते हैं। 1. ल ध्यपर्याप्तक 2. पर्याप्तक। इनमें ल ध्यपर्याप्तक निगोदिया जीवों की आयु क्षुद्रभव प्रमाण तथा पर्याप्तक निगोदिया जीवों की आयु अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती है। ये सभी निगोदिया जीव इतनी कम आयु होने पर भी आठ अपकर्ष कालों में ही अगली आयु का बन्ध करते हैं।

प्रश्न ए सीडेंट आदि से मरने वालों का आयुबन्ध कब होता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 384)*

उ ार- ए€सीडेंट से मरने वाले अथवा युद्ध आदि में मृत्यु को प्राप्त होने वाले जीवों का आयुबन्ध, मरण से असंक्षेपाद्धाकाल पहले नियम से हो जाता है, €योंकि आयुबन्ध हुये बिना किसी भी जीव का कभी मरण नहीं होता।

प्रश्न गर्भस्थ शिशु गर्भावस्था में ही आयुबन्ध कर लेता है या जन्म लेने के बाद ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 385)

उ ार- गर्भस्थ शिशु ल ध्यपर्याप्तक नहीं होते। वे गर्भ प्रवेश के बाद अन्तर्मुहूर्त में पर्याप्त होते ही अगली आयु के बन्ध करने की योग्यता वाले हो जाते हैं।

प्रश्न देवों द्वारा मनुष्य और तिर्यञ्च की कितनी आयु का जघन्य बन्ध किया जाता है और उसका घात हो सकता है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 385)*

उ ार- देवों द्वारा मनुष्य और तिर्यञ्चायु का बन्ध स ाव है। इन दोनों आयु का उत्कृष्ट बन्ध तो एक पूर्व कोटि प्रमाण है तथा जघन्य आयुबन्ध इस प्रकार है- तीसरे और चतुर्थ स्वर्ग में मुहूर्त पृथ€त्व, पञ्चम से अष्टम स्वर्ग तक दिवस पृथ€त्व, नवमें से द्वादश स्वर्ग तक पक्ष पृथ€त्व, तेरह से सोलहवें स्वर्ग तक मास पृथ€त्व, नव ग्रैवेयकों में तथा अनुदिश और अनुŽार वासी देवों की वर्ष पृथ€त्व कही गयी है। स यग्दृष्टि देव नियम से मनुष्य ही बनते हैं एवं उनकी जघन्य आयु वर्षपृथ€त्व होती है। इन सभी जघन्य आयु का घात नहीं होता अर्थात् इन जघन्यायु वाले देवों का तिर्यञ्च और मनुष्य पर्याय में अकालमरण स भव नहीं है। विशेष यह है कि बारहवें स्वर्ग से ऊपर के देव नियम से मनुष्य ही बनते हैं, तिर्यञ्च नहीं।

प्रश्न चारों गतियों में गति बन्ध का या नियम है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 386)*

उ ार- मिथ्यात्व गुणस्थान में जिस समय जिस आयु का बन्ध होता है, उसी समय उस आयु के अनुसार गति बन्ध भी होता है। बाद में किसी भी गति का बन्ध संभव है। सासादन गुणस्थान में नरकगति के अलावा किसी तीन में से एक गति का बन्ध प्रतिसमय होता रहता है। तीसरे व चतुर्थ गुणस्थानवर्ती देव व नारकी मात्र मनुष्यगति

का ही बन्ध करते हैं। 3,4,5 वें गुणस्थान वाले तिर्यञ्च मात्र देवगति का ही बन्ध करते हैं। तृतीय से अष्टम गुणस्थान तक के मनुष्य नियम से देवगति का ही बन्ध करते हैं। इससे ऊपर के गुणस्थानों में गतिनामकर्म का बन्ध नहीं होता।

प्रश्न कौन जीव अपनी अगली आयु का बन्ध कब करते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 386)*

उ□ ार- ल□ ध्यपर्याप्तक जीव अपनी ल□ ध्यपर्याप्तक अवस्था में ही अर्थात् औदारिक मिश्रकाययोग में ही अगली आयु का बन्ध करते हैं। इनके अलावा अन्य कोई भी जीव अपर्याप्त या निवृत्यपर्याप्त अवस्था में आयु बन्ध नहीं करते।

कर्मभूमि के पर्याप्तक मनुष्य और तिर्यञ्च अपनी आयु के दो तिहाई भाग बीत जाने पर, शेष एक तिहाई आयु के प्रथम अन्तर्मुहूर्त में आगामी आयु का बन्ध करते हैं। यदि बन्ध योग्य परिणाम उस काल में न हों तो शेष एक तिहाई आयु के दो तिहाई भाग बीत जाने पर प्रथम अन्तर्मुहूर्त में अगली आयु का बन्ध करते हैं। इसी तरह कुल आठ अपकर्ष काल (आयुबन्ध के योग्य काल) होते हैं। यदि आठों अपकर्ष कालों में बन्ध न हो तो असंक्षेपाद्धा काल आयु शेष रह जाने पर अगली आयु का बन्ध अवश्य कर ही लेते हैं। असंक्षेपाद्धा काल का अर्थ आवली का सं यातवाँ भाग होता है।

उपपाद जन्म वाले देव, नारकी तथा भोगभूमियाँ मनुष्य और तिर्यञ्च अपनी आयु के छः माह शेष रहने पर उपर्युक्त प्रकार आठ अपकर्ष कालों में अगली आयु के बन्ध योग्य होते हैं अर्थात् ये सभी जीव चार माह बीतने पर अगले प्रथम अन्तर्मुहूर्त में प्रथम अपकर्ष काल वाले होते हैं। इसी प्रकार इनके आठ अपकर्ष काल मानने चाहिये। यदि इनमें आयुबन्ध न हो तो असंक्षेपाद्धा काल शेष रहने पर बन्ध हो ही जाता है। कोई भी जीव बिना आयुबन्ध किये मरण को प्राप्त नहीं होता।

प्रश्न जीवों के अगली आयु का बन्ध एक ही अपकर्षकाल में होता है या अधिक में भी स ाव है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 386)

उ□ ार- सभी जीव कम से कम एक बार या अधिक से अधिक आठ बार तक भी अगली आयु का बन्ध करते हैं। इनकी सं या उŽारोŽार कम-कम होती हैं। परन्तु नियम यह है कि सर्वप्रथम जिस आयु का बन्ध करते हैं, अगले अपकर्ष कालों में उसी आयु के बंधयोग्य परिणाम होते हैं, तब तो आयुबन्ध होता है अन्यथा नहीं। तात्पर्य यह है कि कोई भी जीव अपनी अगली आयु एक ही प्रकार की बाँध सकता है, दो प्रकार की नहीं। ऐसा सं ाव नहीं है कि प्रथम अपकर्ष काल में तो नरकायु बाँध ले और अन्य अपकर्ष काल में अन्य आयु का बन्ध करे। विशेष यह भी है कि अगली आयु का बन्ध होने पर उसका घटना-बढ़ना संभव तो है परन्तु उसका नाश नहीं हो सकता अर्थात् अगले भव की आयु बाँधने वाला जीव उस भव से मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।

प्रश्न एक बार की बाँधी हुई आयु का उत्कर्षण या अपकर्षण स ाव है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 386)

उ□ ार- अगली बाँधी हुई आयु को बध्यमान आयु कहते हैं और जिस आयु का हम भोग कर रहे हैं उसे

भुज्यमान आयु कहते हैं। बध्यमान आयु का घटना तो कभी भी स भव है पर उसका उत्कर्षण या बढ़ना, मात्र अपकर्ष काल में ही स भव है, अन्य कालों में नहीं।

भुज्यमान आयु के स बन्ध में तžवार्थसूत्र अध्याय 2 का अन्तिम सूत्र देखना चाहिये। अर्थात् उपपाद जन्म वाले देव और नारकी, भोगभूमियाँ मनुष्य व तिर्यञ्च तथा चरमशरीरी मनुष्यों के अलावा अन्य जीवों की भुज्यमान आयु का अपकर्षण हो सकता है। यह ी नियम है कि (पृ. 391) अगले ाव की आयु का बन्ध हो जाने पर इन जीवों का अकालमरण संभव नहीं है। इसीलिए राजा श्रेणिक के मरण को अकालमरण नहीं माना जाता है।

प्रश्न योगस्थान कितने प्रकार के होते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 387)*

उ ार- योग स्थान तीन प्रकार के कहे गये हैं-

1. उपपाद योगस्थान- पर्याय धारण करने के प्रथम समय में विग्रह गति स्थित जीव के यह योग स्थान होता है, वक्र गति से आने वाले जीव के यह योग स्थान जघन्य तथा ऋजुगति से आने वाले के उत्कृष्ट होता है।
2. एकान्तानुवृद्धि योगस्थान- उत्पन्न होने के दूसरे समय से शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने तक अर्थात् जब तक निवृत्यपर्याप्तक दशा है तब तक एकान्तानुवृद्धि योगस्थान होता है। लŽध्यपर्याप्तक जीवों के प्राप्त आयु के दो तिहाई भाग तक, जब तक वह अगली आयु बन्ध के योग्य नहीं होता तब तक एकान्तानुवृद्धियोगस्थान रहता है।
3. परिणाम योगस्थान- पर्याप्त होने के बाद या उपर्युक्त एकान्तानुवृद्धियोगस्थान के बाद परिणाम योगस्थान होता है। पर्याप्तक और लŽध्यपर्याप्तक दोनों के लिए यही परि ाषा है।

प्रश्न आयु बन्ध होने के समय में तथा आयु बन्ध होने के बाद गति बन्ध एकसा ही रहता है या बदलता रहता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 387)*

उ ार- आयुबन्ध के काल में तो जिस आयु का बन्ध हो रहा है उस समय उस गति का ही बन्ध होता है, अन्य गति का बन्ध संभव नहीं। आयुबन्ध होने के उपरान्त उस जीव के जैसे परिणाम रहते हैं तदनुसार गतिबन्ध होता है। यह ी जानना चाहिये कि गतिबन्ध तो प्रत्येक जीव के आठवें गुणस्थान तक प्रत्येक समय होता ही है। जबकि आयु कर्म का बन्ध, मात्र अपकर्ष काल में ही होता है। अगली पर्याय आयुबन्ध के अनुसार मिलती है, गतिबन्ध के अनुसार नहीं।

प्रश्न जब हमने पिछले भव में चारों गतियों का बन्ध किया है तो या चारों गतियों का उदय भी एक साथ होगा ?

उ ार- हमारे उदयावली में चारों गतियाँ (गतिकर्म) हैं। परन्तु कर्मों का उदय द्रव्य-क्षेत्र-काल- ाव और भावानुसार होता है। अत: हमारे मनुष्यगति में जन्म ले लेने के कारण मनुष्यगति का तो स्वमुख उदय है और अन्य तीन गतियों का स्तिवुक संक्रमण होकर मनुष्यगति रूप उदय होता है। उन तीन गतियों का स्वमुख उदय नहीं रहता। इसी प्रकार प्रत्येक जीव के प्रत्येक समय में एक ही गति का स्वमुख उदय रहता है।

प्रश्न आयुकर्म की उत्कृष्ट और जघन्य आबाधा कितनी होती है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 390)*

उ ार- कोई कर्म बाँधने के बाद जब तक उदय योग्य नहीं होता, उस काल को आबाधाकाल कहते हैं। आयुकर्म की उत्कृष्ट आबाधा पूर्वकोटि का तीसरा भाग तथा जघन्य आबाधा असंक्षेपाद्धा काल प्रमाण कही गयी है। उत्कृष्ट आबाधा तो एक पूर्व कोटि आयु वाले मनुष्य और तिर्यञ्च के प्रथम अपकर्ष काल में आयु बन्ध करने पर होती है और जघन्य आबाधा चारों गतियों के जीवों में असंक्षेपाद्धा काल शेष रहने पर आयुकर्म बाँधने वालों की होती है।

प्रश्न प्रथम अपकर्ष काल में बँधी हुई नरकायु का, बाद में अच्छे परिणाम कर लेने पर दूसरी अन्य आयु में संक्रमण हो सकता है या नहीं ?

उ ार- एक बार बाँधी हुई आयु का अन्य आयु कर्म में संक्रमण नहीं होता। प्रत्येक जीव की सžाा में बध्यमान आयु बँधने से पूर्व मात्र एक आयुकर्म ही सžाा में होता है और आयुबन्ध हो जाने पर उस जीव की सžाा में भुज्यमान और बध्यमान ये दो आयु रहती हैं इससे अधिक नहीं। किसी भी आयुकर्म का किसी आयुकर्म में या किसी अन्य कर्म में संक्रमण कभी नहीं हो सकता।

प्रश्न किस जीव के किस आयु का बन्ध स भव है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 390)*

उ ार- मिथ्यादृष्टि नारकी को मनुष्यायु और तिर्यञ्चायु का तथा स यग्दृष्टि नारकी को मात्र मनुष्यायु का बन्ध होता है। मिथ्यादृष्टि तिर्यञ्च को चारों आयु का तथा स यग्दृष्टि या व्रती तिर्यञ्च को मात्र देवायु का बन्ध होता है। मिथ्यादृष्टि मनुष्य को चारों आयु का तथा स यग्दृष्टि या व्रती मनुष्य को मात्र देवायु का बन्ध होता है। सभी भोगभूमियाँ मनुष्य या तिर्यञ्च देवायु का ही बन्ध करते हैं। अन्तर इतना रहता है कि मिथ्यादृष्टि भोगभूमियाँ मनुष्य और तिर्यञ्च, भवनत्रिकों में तथा स यग्दृष्टि भोगभूमियाँ मनुष्य व तिर्यञ्च, पहले और दूसरे स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं। मिथ्यादृष्टि देव, तिर्यञ्च या मनुष्य आयु का बन्ध करते हैं। जबकि स यग्दृष्टि देव मनुष्यायु का ही बन्ध करते हैं। इन सभी आयु बन्धों में स यग्दृष्टि का तात्पर्य स य€त्व सहितावस्था में आयुबन्ध होने से है। यदि उस जीव का स यग्दर्शन होकर छूट जाता है तो मिथ्यादृष्टि अवस्था में होने वाला बन्ध समझना चाहिये। कुभोगभूमियाँ जीव भी भोगभूमियाँ जीवों की तरह आयुबन्ध करते हैं। निगोदिया जीव मनुष्य, या तिर्यञ्चायु का बन्ध करते हैं, अन्य आयु का नहीं। विकलत्रय एवं स्थावर जीव तिर्यञ्च एवं मनुष्यायु का ही बन्ध करते हैं।

प्रश्न आत्मा और कर्म के बन्ध में €या होता है ? €या गाय और रस्सी का उदाहरण उचित है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 396)

उ ार- संसारी जीव और पौद्गलिक कर्म तथा शरीर का मात्र एक क्षेत्रावगाह स बन्ध ही नहीं है किन्तु इनका परस्पर बन्ध हो जाने के कारण कथञ्चित् एकत्व हो जाता है। और दोनों की, अपने स्वभाव से च्युत होकर एक तृतीयावस्था उत्पन्न हो जाती है जिसे हम 'असमान जातीय द्रव्य पर्याय' कहते हैं। बन्ध तीन प्रकार का होता है।
1. संयोग स बन्ध – जैसे वस्त्र का और हमारा।

2. संश्लेष स बन्ध – जैसे कर्म का और जीव का।

3. तादात य स बन्ध– गुण और गुणी का। जैसे आत्मा और ज्ञान–दर्शन का।

गाय और रस्सी का स बन्ध तो संयोग स बन्ध है जबकि कर्म और जीव का स बन्ध संश्लेष स बन्ध है। दोनों ही भिन्न–भिन्न हैं।

प्रश्न तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध किन जीवों के होता है और कब होता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 398)

उ ार– दर्शनविशुद्ध्यादि सोलहकारण भावना भाने वाले स यग्दृष्टि जीव केवली और श्रुतकेवली के पादमूल में जब अन्य जीवों के कल्याण की भावना से सहित होते हैं, तब तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध प्रार भ होता है। इसके बन्ध का प्रार भ मनुष्यगति में ही होता है, यह प्रकृति चतुर्थ गुणस्थान से अष्टम गुणस्थान के छठे भाग तक निरन्तर बन्ध होती रहती है। इन गुणस्थानों में रहने वाला वह जीव युद्ध भी कर रहा हो या पञ्चेन्द्रिय विषयों का सेवन भी कर रहा हो तो भी यह प्रकृति निरन्तर बँधती है। इस प्रकृति का बन्ध करने वाले जीव कभी स य€त्व से रहित नहीं होते। केवल एक अपवाद है – यदि किसी जीव ने तीर्थङ्कर प्रकृति के बन्ध से पूर्व, दूसरे या तीसरे नरक की आयु बाँध ली हो और तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध बाद में प्रार भ किया हो तो उसके मरण समय अन्तर्मुहूर्त तक मिथ्यात्व गुणस्थान रहने से तब तक रुका रहता है। उसके बाद वह जीव नियम से स य€त्व को प्राप्त हो जाता है और स य€त्व प्राप्त होते ही तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध होने लगता है। मनुष्यायु और तिर्यञ्चायु बाँधने वाले जीवों के (अगले भव की) तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध नहीं होता। मात्र नरकायु और देवायु बाँधने वालों के ही हो सकता है। इस प्रकृति का बन्ध करने वाले जीव उसी भव में अथवा तीसरे भव में नियम से तीर्थङ्कर बनकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

प्रश्न तीर्थङ्कर प्रकृति का उत्कृष्ट और जघन्य स्थिति बन्ध किस जीव के होता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 401)

उ ार– तीर्थङ्कर प्रकृति का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध नरकायु का बन्ध करने वाले चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव के मनुष्य पर्याय के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में मिथ्यात्व में गिरते हुये चतुर्थ गुणस्थान के अन्तिम समय में होता है।

तीर्थङ्कर प्रकृति का जघन्य स्थिति बन्ध आठवें गुणस्थान के छठे भाग के अन्तिम समय में होता है। विशेष यह है कि इन दोनों जीवों के, उत्कृष्ट स्थिति बन्ध के काल में अनुभाग जघन्य रहता है और जघन्य स्थिति बन्ध के काल में अनुभाग उत्कृष्ट रहता है।

प्रश्न तीर्थङ्कर प्रकृति और आहारकद्विक का बन्ध एक साथ होना स भव है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 403)

उ ार– तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध चतुर्थ गुणस्थान से अष्टम गुणस्थान के छठे भाग तक होता है तथा आहारक द्विक का बन्ध मात्र सातवें गुणस्थान से आठवें गुणस्थान के छठे भाग तक होता है। अत: मनुष्य पर्याय में सातवें और आठवें गुणस्थान वाले जीवों के दोनों प्रकृतियों का बन्ध एक साथ होना सं ाव है।

प्रश्न एक जीव के किन प्रकृतियों का बन्ध प्रतिसमय नियम से होता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 404)

उ ार- बन्ध व्युच्छिर्Zा होने तक जिन प्रकृतियों का बन्ध प्रत्येक जीव को निरन्तर होता है उन प्रकृतियों को ध्रुवबन्धी प्रकृतियाँ कहते हैं। ये प्रकृतियाँ 47 हैं- ज्ञानावरण (5), अन्तराय (5), दर्शनावरण (9), मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी आदि कषाय (16), भय, जुगुप्सा, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, रूप-रस-गन्ध-स्पर्श (4), अगुरुलघु, निर्माण और उपघात। इन 47 में से तैजस शरीर, कार्मण शरीर, अगुरुलघु और निर्माण ये चार पुण्य प्रकृतियाँ है। शेष 43 पाप या अशुभ प्रकृतियाँ हैं। कोई जीव कितने ही अशुभ कार्य करे फिर भी उसके इन चार शुभ प्रकृतियों का बन्ध होता ही है और कितना भी शुभ कार्य करे फिर भी 43 अशुभ प्रकृतियों का बन्ध होता ही है। अन्तर इतना पड़ता है कि उनकी स्थिति और अनुभाग परिणामों के अनुसार पड़ते हैं। जैसे- स्वाध्याय करते समय ज्ञानावरणी कर्म की प्रकृतियों में स्थिति और अनुभाग कम पड़ता है जबकि सांसारिक कार्य करते हुये इन्हीं प्रकृतियों में स्थिति और अनुभाग ज्यादा पड़ता है। इसी प्रकार अन्य कर्मों में भी समझ लेना चाहिये। इससे यह भी ध्वनित होता है कि सं€लेश या विशुद्धि के परिणाम होने पर भी पुण्य और पाप प्रकृतियों का बन्ध हमेशा होता ही है।

प्रश्न किन परिणामों के द्वारा जीव को स्त्री पर्याय में जन्म लेना पड़ता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 405)

उ ार- छल-कपट आदि परिणामों से स्त्रीवेद का तीव्र अनुभाग लिए बन्ध होता है। जिन मनुष्यों के मरते समय वंचना, कपट आदि रूप परिणाम होते हैं वे मरकर तिर्यञ्चनी, मनुष्यनी या देवाङ्गना बनते हैं।

प्रश्न द्रव्यस्त्री के किन प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 405)*

उ ार- द्रव्य स्त्री के तीर्थङ्कर प्रकृति, आहारक शरीर व आहारक अङ्गोपाङ्ग इन तीन प्रकृतियों का बन्ध नहीं होता तथा शेष सभी प्रकृतियों का बन्ध संभव है।

प्रश्न कर्मों का स्थिति बन्ध व अनुभाग बन्ध कम या ज्यादा किस प्रकार पड़ता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 408)

उ ार- स्थिति बन्ध के ज्ञान करने के लिए हमें 148 प्रकृतियों को दो भागों में बाँटना चाहिये। एक भाग में तीन शुभ आयु (नरक छोड़कर)तथा शेष 145 प्रकृतियों को दूसरे भाग में रखें। तीव्र कषाय से 145 प्रकृतियों का स्थिति बन्ध अधिक होता है, तीन का कम। मन्द कषाय से 145 प्रकृतियों का स्थितिबन्ध कम होता है और तीन का अधिक।

अनुभाग बन्ध के लिए पुन: 148 प्रकृतियों को दो भागों में बाँटे। एक भाग में तो 100 पाप प्रकृतियों को रखें और दूसरे भाग में 68 पुण्य प्रकृतियों को बाँटे। तीव्र कषाय से पाप प्रकृतियों में अनुभागबन्ध ज्यादा पड़ता है, पुण्य प्रकृतियों में कम। मन्द कषाय से पाप प्रकृतियों में अनुभागबन्ध कम पड़ता है और पुण्य प्रकृतियों में ज्यादा। पुद्गल स बन्धी (वर्ण, रस, गंध व स्पर्श) 20 प्रकृतियाँ पुण्य व पाप दोनों रूप होती हैं।

प्रश्न किस गुणस्थान में कितने कर्म बन्धते हैं ?

उ र- आयुकर्म का बन्ध तो प्रत्येक जीव के अपकर्ष काल में होता है। अपकर्ष काल में जीव आठों कर्म का बन्ध करता है तथा उसके पश्चात् सात कर्मों का बन्ध प्रतिसमय करता है। आयु कर्म का बन्ध तीसरे गुणस्थान को छोड़कर एक से सात गुणस्थान तक होता है। दसवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म का बन्ध रुक जाने से मात्र छः कर्मों का बन्ध होता है। 11, 12, 13 वें गुणस्थान में सातावेदनीय का एक समय की स्थिति वाला बन्ध होता है। चौदहवें गुणस्थान में योग का अभाव हो जाने से बन्ध का अभाव हो जाता है। एक से नवमें गुणस्थान तक के जीव, अपकर्ष काल के अतिरिक्त काल में आयुकर्म के अलावा सात कर्मों का प्रतिसमय बन्ध करते हैं। एक समय की स्थिति वाला साता वेदनीय कर्म उसी समय में ही उदय में आ जाता है और अगले समय में निर्जरित हो जाता है। इसकी आबाधा नहीं होती।

प्रश्न सर्वबन्ध और नोसर्वबन्ध से र या समझना चाहिये ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 413)*

उ र- मोहनीय कर्म की, एक जीव एक समय में अधिक से अधिक 22 प्रकृतियों का बन्ध कर सकता है अर्थात् 28 में से स यग्मिथ्यात्व और स यक्प्रकृति बन्ध योग्य है ही नहीं और हास्य और शोक में से एक समय में एक प्रकृति, रति-अरति में से एक तथा तीन वेदों में एक समय में एक ही वेद का बन्ध होता है। 2+1+1+2=6 प्रकृतियाँ कम होने से उत्कृष्ट से 22 प्रकृतियाँ बँध सकती हैं।

तो यदि कोई मिथ्यादृष्टि जीव 22 प्रकृति का बन्ध कर रहा हो तो उसके बन्ध को सर्वबन्ध कहते हैं और यदि 22 की बजाय 21 या 17 का बन्ध कर रहा हो तो उसे नोसर्वबन्ध कहते हैं। जैसे-

दूसरे गुणस्थान में मिथ्यात्व का बन्ध न होकर 21 प्रकृति बन्ध योग्य हैं। तृतीय और चतुर्थ गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी कषाय बन्ध योग्य नहीं है तो 17 का बन्ध होगा। पञ्चम गुणस्थान में अप्रत्या यानावरण बन्ध योग्य नहीं है तो 13 का बन्ध होगा। छठवें से आठवें गुणस्थान तक प्रत्या यानावरण बन्ध योग्य नहीं है तो 9 का बन्ध होगा। नवमें गुणस्थान में हास्यादि का बन्ध न होने से पाँच का, पुरुषवेद का अभाव होने पर चार का, क्रोध के बन्ध का अभाव होने पर तीन का, मान के अभाव होने पर दो का तथा माया के बन्ध का अभाव होने पर सिर्फ एक संज्वलन लोभ का बन्ध होगा। दसवें गुणस्थान और उससे आगे मोहनीय का बन्ध नहीं होता। इसी प्रकार नामकर्म की यद्यपि 93 प्रकृतियाँ हैं परन्तु उसके आठ बन्धस्थान हैं- 31, 30, 29, 28, 26, 25, 23 और एक प्रकृति। इनमें से 31 का बन्ध हो तो सर्वबन्ध है और उससे कम का हो तो नोसर्वबन्ध होता है।

प्रश्न पुण्य से सिर्फ आस्रव-बन्ध होता है या संवर-निर्जरा ी होती है ?

उ र- यहाँ पुण्य से तात्पर्य है शुभोपयोग। आचार्य वीरसेन स्वामी के अनुसार शुभोपयोग चौथे से दसवें गुणस्थान तक होता है अतः ध र्यध्यान भी दसवें गुणस्थान तक होता है। दसवें गुणस्थान के अन्त में मोहनीय कर्म का भी नाश होता है जो शुभोपयोग का ही कार्य हुआ। अर्थात् शुभोपयोग या पुण्य परिणामों से मोहनीय कर्म के नाश रूप महान् निर्जरा दे ी जाती है। श्री धवलाजी के अनुसार णमोकार मन्त्र का जाप जपने से असं यात

गुणी कर्मनिर्जरा होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि पुण्य से आस्रव-बन्ध भी है और संवर-निर्जरा भी। एक ही वस्तु दोनों कार्य करने वाली है जैसे अग्नि भात को पकाती भी है उसी समय गर्मी भी देती है उसी समय प्रकाश भी देती है अर्थात् एक साथ अनेक कार्यों को करने वाली होती है। उसी तरह पुण्य भी आस्रव, बन्ध, संवर और निर्जरा में कारण होता है।

प्रश्न आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी ने समयसार में पुण्य-पाप दोनों को हेय कहा है। तो हमको कैसी मान्यता बनानी चाहिये ?

उŽार- समयसार के पुण्यपापाधिकार की टीका में आचार्य जयसेन महाराज ने स यग्दृष्टि के पुण्य को मोक्ष का पर परा से कारण माना है। अत: हम पुण्य को एकान्त से हेय नहीं कह सकते। सिद्धान्त तो यह है कि अशुभोपयोग सर्वथा हेय ही है। शुभोपयोग तात्कालिक उपादेय है अर्थात् शुद्धोपयोगी मुनिराजों के लिए हेय, गृहस्थ एवं प्रम ा संयत मुनिराजों के लिए उपादेय तथा शुद्धोपयोग सभी के लिए उपादेय है। हम इसको इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि पुण्य श्रद्धा में हेय, ज्ञान में ज्ञेय और क्रिया में उपादेय है।

प्रश्न विस्रसोपचय किसे कहते हैं ?

उ ार- कार्मण वर्गणा तथा नोकर्म वर्गणा के उस समूह को विस्रसोपचय कहते हैं जो अगले समयों में आत्मके â æ ÕxŠæ ×ð¥Âý# ãæðÌð ß ãæðÌð ãæð¥ áÚßÌ ÜæÐ ×ðÚæè¥ ãæ× æ ðÂýð ãæðÂ ÚÚ Waiting list की तरह मौजूद हो।

प्रत्येक संसारी आत्मा प्रतिसमय समयप्रबद्ध प्रमाण कार्मण वर्गणाओं को और नोकर्म वर्गणाओं को ग्रहण करता है। कार्मण वर्गणायें तो कर्मरूप परिणमन कर जाती हैं तथा नोकर्मवर्गणायें शरीररूप परिणमन कर जाती हैं। प्रत्येक संसारी आत्मा के हर एक प्रदेश पर अनन्तानन्त कर्म मौजूद हैं और उनसे अनन्तगुणी कार्मण वर्गणायें प्रत्येक प्रदेश पर मौजूद हैं और जो अगले समयों में कर्म तथा नोकर्मरूप परिणमन करने के लिए उ मीदवार हैं, ऐसी अनन्तानन्त कर्म और नोकर्म वर्गणायें विस्रसोपचय के रूप में अगले समयों में बँधने रूप भी प्रत्येक प्रदेश पर स्थित रहती हैं। इन्हीं उ मीदवार कर्मवर्गणाओं एवं नोकर्मवर्गणाओं के समूह का नाम विस्रसोपचय कहा जाता है।

प्रश्न किन प्रकृतियों का जघन्य स्थिति बन्ध किन गुणस्थानों में होता है ?

उ ार- क्षपक श्रेणी वाले जीव के दसवें गुणस्थान के अन्तिम समय में ज्ञानावरण (5), दर्शनावरण (4), अन्तराय (5), यश:कीर्ति (1), उच्चगोत्र (1) और सातावेदनीय इन 17 प्रकृतियों का जघन्य स्थिति बन्ध होता है। क्षपक श्रेणी के नवमें गुणस्थान में पुरुषवेद और चार संज्वलन कषायों का जघन्य स्थितिबन्ध होता है।

क्षपक श्रेणी के आठवें गुणस्थान में तीर्थङ्कर प्रकृति और आहारकद्विक इन तीन प्रकृतियों का जघन्य स्थिति बन्ध होता है। देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिक अङ्गोपाङ्ग इन छ: प्रकृतियों का जघन्य स्थिति बन्ध असैनी पंचेन्द्रिय जीवों के ही होता है। चारों आयु का जघन्य स्थिति बन्ध सैनी और असैनी दोनों जीवों के ही होता है।

प्रश्न शुभ प्रकृतियों का अनुभाग घात कैसे होता है ?

उ ार– श्री धवला पुस्तक 12 के अनुसार शुभ प्रकृतियों का अनुभाग घात विशुद्ध परिणामों से अथवा केवली समुद्घात के द्वारा भी नहीं होता है। शुभ प्रकृतियों का अनुभाग घात मात्र सं€लेश परिणामों से ही होता है।

प्रश्न पुण्य प्रकृतियाँ और पाप प्रकृतियाँ किन्हें कहते हैं ?

उ ार– जिन प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभागबन्ध विशुद्धपरिणामों से होता है वे पुण्यप्रकृतियाँ हैं।
जिन प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग बन्ध सं€लेश परिणामों से होता है वे पाप प्रकृतियाँ हैं।

उदय

प्रश्न तीर्थङ्कर प्रकृति का स्वमुख उदय कब से प्रार भ मानना चाहिये ?

उ ार– स यग्दृष्टि जीवों के ही तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध होता है और उसकी स्थिति अन्त:कोड़ाकोड़ीसागर से अधिक नहीं बँधती। अन्त: कोडाकोडी सागर स्थिति बँधने वाले कर्मों की आबाधा अन्तर्मुहूर्त काल कही गयी है। तदनुसार तीर्थङ्कर प्रकृति बन्ध होने के अन्तर्मुहूर्त बाद उदय में आने लगती है। जब तक 13 वाँ गुणस्थान प्राप्त न हो तब तक तीर्थङ्कर प्रकृति का नामकर्म की अन्य शुभप्रकृति रूप संक्रमण होकर परमुख उदय होता रहता है। तेरहवें गुणस्थान के प्रथम समय से तीर्थङ्कर प्रकृति का स्वमुख उदय रहता है। गर्भकल्याणक आदि का मनाया जाना, देवों द्वारा रत्नवृष्टि आदि शुभ कार्य होना, तीर्थङ्कर प्रकृति के स ा में रहने के तथा देवों के भक्तिभाव के फल हैं।

प्रश्न साता वेदनीय और असातावेदनीय में से एक समय में दोनों प्रकृतियों का उदय स भव है या एक का ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 414)*

उ ार– साता और असातावेदनीय इन दोनों के निषेक आबाधाकाल समाप्त होने पर एक साथ उदय आने योग्य होते हैं। किन्तु इन दोनों प्रकृतियों में से जिस प्रकृति के उदय के अनुसार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव होगा, वह प्रकृति तो स्वमुख से उदय आयेगी और दूसरी प्रकृति का स्तिवुक संक्रमण होकर परमुख उदय होगा। ऐसा बारहवें गुणस्थान तक होता है। तेरहवें गुणस्थान में एक साथ दोनों का उदय होता है। अर्थात् जो ईर्यापथ आस्रव हुआ वह तो उसी समय में उदय आकर अगले समय में निर्जरित होता ही है और जो पिछला उदय में आ रहा है वह ाी साता वेदनीय के साथ उदय में आता है। जो असातावेदनीय का उदय था वह भी यहाँ स्वमुख उदयरूप रहता है। ऐसा नहीं है कि तेरहवें गुणस्थान में मात्र साता का ही उदय रहता हो और असाता का परमुख उदय होकर साता रूप आता हो। चौदहवें गुणस्थान में किसी एक प्रकृति का (साता या असाता) उदय रहता है।

प्रश्न हास्य और रति नोकषाय का उत्कृष्ट उदय-उदीरणा काल कितना है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 415)

उ□ ार- सामान्य से हास्य और रति का उत्कृष्ट उदय-उदीरणा काल छः मास है। इसके बाद नियम से इनकी उदय और उदीरणा न होकर अरति और शोक की उदीरणा होने लगती है। यदि छः मास के भीतर ही हास्य और रति के विरुद्ध निमिŽा मिलता है तो बीच में ही इनकी उदय और उदीरणा बदल जाती है।

प्रश्न सर्वार्थसिद्धि के देवों को पीड़ारूप अनुभवन होता है या नहीं ?

उ□ ार- हाँ! होता है। आचार्यश्री के अनुसार किसी मुनि को अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान होना था परन्तु उपसर्ग के कारण सर्वार्थसिद्धि गये। उपसर्ग करने वाला जीव भी प्रायश्चिŽा कर मुनि बनकर सर्वार्थसिद्धि पहुँचा। फिर वहाँ अवधिज्ञान के द्वारा नवागत देव के पूर्वभव तथा अपने ऊपर किये गये उपसर्ग को जानने पर उन्हें मानसिक संतापादि कुछ समय के लिए संभव है।

प्रश्न भगवान् की दिव्यध्वनि होने में उपादान और निमिŽा कारण €या है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 416)

उŽार- दिव्यध्वनि होने का उपादान कारण ाषा वर्गणा है जो स पूर्ण लोक में भरी पड़ी है। जहाँ-जहाँ होठरूप, जीभ चलाने रूप, घण्टा बजाने रूप, मेघगर्जन रूप आदि बहिरङ्ग कारण मिल जाते हैं वहाँ की भाषा वर्गणा शŽदरूप परिणमन कर जाती है। सर्वत्र परिणमन नहीं करती।

धवला पुस्तक 1के अनुसार दिव्यध्वनि में भाषावर्गणा तो उपादान कारण है। केवलज्ञान, वचनयोग, भव्य जीवों का भाग्य, गणधर का समागम, समवसरण क्षेत्र और संधिकाल आदि अनेक निमिŽा कारण हैं। उपादान कारण एक होता है और निमिŽा कारण अनेक होते हैं। जिस समय तक उपादान कारण और समस्त निमिŽाकारण न मिल जायें तब तक कार्य की उत्पŽि नहीं होती। इसी प्रकार उपर्युक्त समस्त कारण मिलने पर ही दिव्यध्वनि खिरती है।

प्रश्न कर्मोदय से बाह्य सामग्री व अन्य जीवों में भी परिणमन होता है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 417)

उ□ ार- हमारे कर्मोदय का बाहरी सामग्री तथा दूसरे पर असर पड़ता भी है और नहीं भी, कोई एकान्त नियम नहीं है। भव्य जीवों का भाग्य दिव्यध्वनि खिरने में निमिŽा हुआ और वचनयोग से निकली हुई वचन वर्गणा भव्य जीवों के दुःख-भय दूर करने में कारण हुई। चक्रवर्ती व गणधर के प्रश्न करने पर भगवान् की दिव्यध्वनि असमय में ाी खिरती है। तीर्थङ्कर प्रकृति के प्रभाव से रत्नवृष्टि हो जाती है। माता सोलह स्वप्न देखती है, स्वर्ग में देवों के आसन कं पत होने लगते हैं, षट्ऋतु के फल-फूल आ जाते हैं, जाति-विरोधी जीव वैर छोड़ देते हैं।

गाली बाह्य निमिŽा है, अन्तरङ्ग निमिŽा क्रोध कषाय का उदय है। उपादान कारण संसारी जीव है। इन तीनों निमिŽों के मिलने पर जिसको गाली दी गयी है वह बुरा मान सकता है। मात्र बाह्य निमिŽा अकिञ्चित्कर

है, अन्य दो निमिŽों में से किसी एक के न होने पर गाली का असर नहीं होता। असर पड़ना अवश्य भावी नहीं है।

प्रश्न कर्म का फल उदय होने पर ही देखा जाता है या उदय आने से पूर्व या उदय हो चुकने के बाद में भी देखा जाता है ?

उ ार- तीनों दशाओं में कर्मों का फल देखा जाता है। जैसे- तीर्थङ्कर प्रकृति के स्वमुख उदय से पूर्व ही रत्नवृष्टि आदि देखी जाती है। तीर्थङ्कर प्रकृति के उदय आने पर बहुत से अतिशय देखे जाते हैं और तीर्थङ्कर के विहार के बाद भी उस स्थान पर 100 वर्षों तक कोई दुर्भिक्ष आदि नहीं पड़ता। अथवा सातवें नरक से निकला जीव अगली तिर्यञ्च पर्याय में स य€त्व को प्राप्त नहीं हो सकता €योंकि उसके पूर्व भव में सप्तम नरक की आयु थी। कुछ प्रकृतियाँ ऐसी भी होती हैं जिनका बन्ध होने पर फल देखा जाता है। जैसे- तिर्यञ्चायु या मनुष्यायु का बन्ध मात्र हो जाने पर तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध नहीं होता। नरक, तिर्यञ्च या मनुष्यायु का बन्ध होने पर अणुव्रत या महाव्रत धारण नहीं कर सकते।

प्रश्न एक भव में किसी जीव का संहनन या संस्थान बदल सकता है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 418)

उ ार- एक पर्याय में जीव को जिस संहनन या संस्थान का उदय रहता है वह जीवन पर्यन्त रहता है। जैसे- कोई व्यक्ति कुबड़ा है। हम उसके कु ब को ऑपरेशन से कटवा सकते हैं परन्तु अन्दर शरीर में कुबड़े रूप रचना को नहीं बदल सकते। उसरूप तो अन्तरङ्ग रचना रहती ही है। इसी तरह किसी जीव का संहनन है। कितनी भी दवा आदि दी जाये, व्यायाम-जिम आदि कराये जायें तो भी संहनन नहीं बदलता। शरीर की शक्ति में अन्तर आ सकता है।

प्रश्न हमारे कौन सा संस्थान और कौन सा संहनन है ?

उ ार- पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के अनुसार हमारी सबकी सूरत ठीक-ठाक है। ऐसा नहीं है कि जो हम कुबड़े-बौने या बहुत बदसूरत हों। अत: संस्थान तो समचतुरस्र ही मानना चाहिये परन्तु पञ्चम काल में जन्म लेने वाले सभी जीव मिथ्यादृष्टि और पापी होते हैं। अत: समचतुरस्र संस्थान का हीन अनुभाग मानना ठीक रहेगा। अन्य लक्षण मिलने पर अन्य संस्थान मानना चाहिये।

पञ्चमकाल में अन्त के तीन संहनन बताये गये हैं। वर्तमान में लगभग सभी जीवों के शरीर की हड्डियाँ नसों से बन्धी हुई हैं। जरा सी गड़बड़ होने पर हड्डियाँ खिसक जाती हैं, मोच आ जाती है। अत: असंप्राप्तासृपाटिका संहनन मानना चाहिये। अर्धनाराच और कीलक संहनन शायद किसी जीव के हो। जब आचार्यश्री से पूछा कि या हड्डी के जुडाव स्थानों का ऑपरेशन करके अपना संहनन मालूम किया जा सकता है। तो आचार्यश्री ने कहा- आगम में इसका उ ार तो मिलता नहीं, परन्तु ध्यान की स्थिरता के अनुसार संहनन का अनुमान लगाया जा सकता है।

पं. मु तार जी ने अपने शङ्का समाधान में पञ्चमकाल के मनुष्यों के प्राय: हुण्डक संस्थान माना है।

प्रश्न आत्मा तो अमूर्तिक है। उसका मूर्तिक कर्मों के साथ बन्ध कैसे हो जाता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 420)

उ ार- आत्मा मूर्तिक है या अमूर्तिक, इसके बारे में अनेकान्त है। आत्मा निश्चयनय से अमूर्तिक होते हुए भी व्यवहारनय से कर्मबन्ध से सहित होने से मूर्तिक है। आचार्य वीरसेन स्वामी ने संसारी आत्मा को 'मूर्तिक ही है' ऐसा कहा है। इसीलिए जब कोई संसारी आत्मा समुद्घात करता है तब उसको विशेष अवधिज्ञानी जीव अवधिज्ञान से देख लेते हैं।

यह भी विचारणीय है कि अमूर्तिक वस्तु पर मूर्तिक वस्तु का असर नहीं होता। परन्तु जब संसारी जीव को एनेस्थीसीया दवा देकर ऑपरेशन से पूर्व बेहोश कर दिया जाता है तब उस मूर्तिक दवा का प्रभाव स्पष्ट देखने में आता है। मूर्तिक वस्तु, मूर्तिक वस्तु पर ही असर करती है अत: संसारी आत्मा मूर्तिक है। द्रव्यसंग्रह के 'वण्णरसपंच...........' गाथा में भी यही कहा गया है।

प्रश्न या कुछ प्रकृतियाँ ऐसी भी हैं जिनका उदय प्रतिसमय रहता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 421)

उ ार- उदय व्युच्छिZ होने से पूर्व निम्न प्रकृतियों का उदय प्रत्येक जीव के रहता है- ज्ञानावरण (5), दर्शनावरण (4), अन्तराय (5), कार्मणशरीर, तैजस शरीर, वर्णादि (4), अगुरुलघु, शुभ, अशुभ, स्थिर, अस्थिर और निर्माण ये 26 प्रकृतियाँ ध्रुवोदयी हैं।

प्रश्न कर्म का उदय जिस डिग्री का होता है तो आत्मा के परिणाम उसी डिग्री के बनते हैं अथवा कम या अधिक ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 422)

उ ार- कर्मोदय के प्रसङ्ग में यह बात बतायी थी कि कर्म का उदय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावानुसार होता है। कर्मों का उदय में आने से पूर्व जैसा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव होता है तदनुसार वैसे कर्म उदय में आते हैं। यदि तीव्र अनुभाग वाला कोई कर्म उदयावली में हो और उदय से एक समय पूर्व वह द्रव्य क्षेत्रादि के अनुसार अन्य रूप से परिणमन कर जाये तो जिस रूप उदय में आयेगा तदनुसार उसी डिग्री के परिणाम अवश्य होंगे। जैसे- समवसरण में हम बैठे हैं तो तदनुसार ही कर्म उदय में आयेगा और उसका फल होगा। निष्कर्ष यह है कि उदय में आने से पूर्व कर्म को अन्यरूप परिणमन कराया जा सकता है परन्तु उदय में आने के बाद उसका फल तदनुसार होता ही है। यह भी नियम है कि कोई भी कर्म बिना फल दिये कभी निर्जरित नहीं होता तथा उदयावली में होकर उदय में आये बिना कोई भी कर्म नष्ट नहीं हो सकता।

प्रश्न €या आत्मा अपनी उपादान शक्ति से, बिना निमिZ मिले क्रोधादिक रूप परिणमन कर सकता है ? एकान्तवादियों की मान्यतानुसार निमिZ कुछ नहीं करता। स पूर्ण कार्य उपादान शक्ति से ही होते हैं तो फिर आत्मा में विभाव परिणमन का कारण €या है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 422,28)

उ ार- आत्मा स्वभाव से रागादि विभाव परिणमन से रहित है। उसमें विभाव परिणमन क्रोधादि कषायों के

उदय होने पर ही सं ाव है। यदि कर्म का निमिž ा न मिले तो आत्मा में विभाव परिणमन हो ही नहीं सकता। इसीलिए सिद्ध जीवों में कर्मों की सž ा न होने से अनन्तकाल तक विभाव परिणमन नहीं होता है। लेकिन निमिž ा मिलने पर आत्मा में विभाव परिणमन हो ही जाये, ये भी जरुरी नहीं है। पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के अनुसार ''हम कर्मोदय में पराधीन हैं पर आत्मपरिणमन में स्वाधीन हैं।'' अर्थात् विभिन्न निमिž ा मिलने पर तदनुसार हमारी आत्मा में परिणमन हो जाये ये आवश्यक नहीं। यह भी निश्चय है कि कर्मबन्ध से सहित होने के कारण ही हमारा संसार भ्रमण हो रहा है। हमारी आत्मा अपनी उपादान शक्ति से नहीं अपितु कर्मों के कारण संसार भ्रमण कर रही है। इसलिए पूजा की ये पं€तयाँ 'जड़ कर्म घुमाता है मुझको यह मिथ्याभ्रान्ति रही मेरी' ये आगम स मत नहीं है। एकान्त मत वाले उपादानानुसार कार्य होना मानते हैं। अर्थात् उपादान मात्र से ही कार्य होना मानते हैं। उनकी यह मान्यता एकान्त मिथ्यात्व है। वास्तव में उपादान और निमिž ा इन दोनों की योग्यता होने पर कार्य स पन्न होता है।

प्रश्न दर्शनमोहनीय कर्म चारित्र गुण का घात कर सकता है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 432)

उ ार- दर्शनमोहनीय कर्म स यग्दर्शन अथवा श्रद्धागुण को मोहित करता है। किसी भी आचार्य ने दर्शनमोहनीयकर्म को चारित्र गुण को मोहित करने वाला नहीं कहा है। तž वार्थसूत्र 'स यथानाम' के अनुसार सभी कर्मों का फल या कार्य अपने नाम या प्रकृति अनुसार ही होता है।

प्रश्न या उपघात और परघात इन दोनों प्रकृतियों का उदय एक साथ हो सकता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 433)

उ ार- जिस कर्म के उदय से स्वयं को दु:ख देने वाले शरीर के अङ्गों का निर्माण हो, वह उपघात नामकर्म है। जैसे- ल बे सींग, ल बी तोंद आदि स्वयं को पीड़ा करने वाले अवयव हैं तथा जिस कर्म के उदय से शरीर में परघात करने के कारणभूत अंगोपांग उत्पन्न होते हैं वह परघात नामकर्म है। जैसे- सर्प की दाढ़ में विष, सिंह आदि के पैने नाखून।

इन दोनों प्रकृतियों के लक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों प्रकृतियों का एक साथ उदय होने में कोई बाधा नहीं है। सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में परघात प्रकृति को पुण्यप्रकृति कहा है और उसकी परिभाषा में लिखा है कि जिसके उदय से अन्य के शस्त्रादि का निमिž ा पाकर अपना घात होता हो। इस परिभाषानुसार परघात प्रकृति पाप प्रकृति लगती है। इसका समाधान यह है कि ''सर्वार्थसिद्धि'' की परिभाषा के स बन्ध में हम कुछ नहीं कह सकते परन्तु धवलाकार ने तो अन्य को घात करने में कारणभूत पुद्गलों का उत्पन्न होना परघात नामकर्म कहा है। यह परिभाषा बिल्कुल उचित बैठती है।

प्रश्न बन्धन और संघात प्रकृति के कार्य में या अन्तर है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 436)*

उ ार- औदारिकादि शरीर नामकर्म के उदय से जो औदारिक आदि नोकर्म वर्गणा आती हैं, उनका पूर्व

वर्गणाओं के साथ स बन्ध होना बन्धन नामकर्म का कार्य है। संघात नामकर्म के उदय से उनका वह बन्धन छिद्र रहित चिकने संश्लेष स बन्ध को प्राप्त होता है। यही इन दोनों के कार्यों में अन्तर है।

प्रश्न निद्रादर्शनावरण के उदय में दर्शन और ज्ञान दोनों नहीं होते। €या ऐसा मानना ठीक है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 437)

उ ार- आपका कहना ठीक है, उस समय जीव की सुप्तावस्था होती है अर्थात् दर्शनोपयोग नहीं होता है और दर्शनोपयोग न होने के कारण ज्ञानोपयोग भी नहीं होता। यदि कोई पूछे कि तब तो उस समय जीव ज्ञान, दर्शन से रहित अजीव हो जायेगा ? इसका उ ार यह है कि उस समय उसका ज्ञान और दर्शन ल धरूप है परन्तु उपयोगरूप नहीं। इसलिए उसमें जीवत्व तो है परन्तु सुप्तावस्था होने के कारण ज्ञान-दर्शन उपयोगरूप नहीं है।

प्रश्न देव और नारकियों की अकालमृत्यु नहीं होती तो उनके आयुकर्म का उदय रहता होगा, परन्तु उदीरणा नहीं होती होगी। €योंकि उदीरणा होने पर अकालमरण हो जायेगा ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 439)

उ ार- समय से पूर्व कर्मवर्गणाओं का उदय में आकर फल देकर खिर जाना उदीरणा है। कुछ अपवादों के साथ छठे गुणस्थान तक जिन प्रकृतियों का उदय है उनकी उदीरणा भी अवश्य होती है। हमारे मनुष्यायु का प्रतिसमय उदय भी है और उदीरणा ी है। पर वह उदीरणा हमारे अकाल मरण में कारण नहीं है। इसी प्रकार सभी देव और नारकियों के प्रतिसमय आयुकर्म की प्रदेश उदीरणा होती रहती है। परन्तु उनकी आयु का घात नहीं होता।

प्रश्न आयुकर्म का अनुभाग या होता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 440)*

उ ार- इस प्रश्न का उ ार पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के अनुसार इस प्रकार है- किसी गति में यदि दो जीव जन्म लें और उनकी समान आयु हो तो उनका बड़ापना या छोटापना जो होता है उसे आयु का अनुभाग मानना चाहिये। सौधर्म स्वर्ग में इन्द्र, सामानिक और त्रायस्त्रिंश : इनकी आयु समान होती है परन्तु इन तीनों का प्रभाव अलग-अलग होता है। इन्द्र का प्रभाव सबसे ज्यादा, सामानिक का उससे कम और त्रायस्त्रिंश का उससे भी कम। इन तीनों की आयुकर्म की स्थिति तो समान है। परन्तु अनुभाग में अन्तर मानना चाहिये। सौधर्म इन्द्र की आयु का अनुभाग अधिक है, सामानिक का उससे कम। सामानिक का अनुभाग अधिक है, त्रायस्त्रिंश का उससे कम। इसी प्रकार मनुष्यायु का उत्कृष्ट अनुभाग उ ाम भोगभूमि के 3 पल्य आयु वाले जीवों का मानना चाहिये।

प्रश्न भुज्यमान आयु या बध्यमान आयु के निषेकों के उदय में कुछ अन्तर रहता है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 441)

उ ार- भुज्यमान आयु के अन्तिम निषेक के पश्चात् ही भविष्यायु का प्रथम निषेक प्रार भ हो जाता है। €योंकि भविष्य आयु की आबाधा शेष भुज्यमान आयु प्रमाण होती है। इसलिए भुज्यमान आयु के बाद अगले समय से

भविष्यायु अर्थात् बध्यमान आयु प्रार भ हो जाती है। यदि ऐसा नहीं मानेंगे तो भुज्यमान आयु के समाप्त हो जाने पर जीव का चतुर्गति से बाहर होने का प्रसङ्ग आ जायेगा। यदि भुज्यमान आयु अर्ध-आवली प्रमाण शेष रह गयी है तो उदयावली में शेष अर्ध-आवली प्रमाण भविष्यायु के निषेक आ जाते हैं।

प्रश्न स्त्री, पुत्र, धन आदि बाह्य सामग्री का संयोग किस कर्म के उदय से होता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 442)

उ□ ार- श्रीधवला पु.6,13 व 15 के अनुसार स्त्री-पुत्र-धन आदि बाह्य पदार्थों की प्राप्ति लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम से होती है। चूंकि इन सामग्रियों के मिलने से दु:ख का उपशमन होता है अत: सातावेदनीय कर्मोदय भी कारण है। इन वस्तुओं का वियोग या अप्राप्ति लाभान्तराय कर्म के उदय से होती है। €योंकि इस सामग्री के वियोग से दु:ख होता है अत: असातावेदनीय कर्म का उदय भी कारण है।

यहाँ यह भी समझना चाहिये कि यदि दु:ख देने वाले स्त्री या पुत्र मिले हैं तो लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम तो है परन्तु असातावेदनीय कर्म का उदय होने से दु:खदायी मिले हैं।

कुछ विद्वत्गण इन सामग्री की प्राप्ति में सातावेदनीय या लाभान्तराय का क्षयोपशम स्वीकार नहीं करते हैं। उनकी धारणानुसार स्वयं के पुरुषार्थ से ये वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। उनकी ऐसी धारणा आगम स मत नहीं है।

प्रश्न शरीर नामकर्म के उदय में □ या-□ या कार्य होते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 444)*

उ□ ार- शरीर नामकर्म के उदय से निम्न कार्य होते हैं-

(1.) औदारिक आदि शरीर के योग्य नोकर्म या कर्मवर्गणायें आत्मा के साथ स बन्ध को प्राप्त होती हैं। तेरहवें गुणस्थान के अन्त में शरीर नामकर्म का उदय समाप्त हो जाता है अत: किसी भी शरीर के योग्य नवीन वर्गणाओं का ग्रहण न होने से वे अनाहारक हो जाते हैं।

(2.) शरीर नामकर्म के उदय से मन-वचन-काय से युक्त जीव की जो कर्मों को ग्रहण करने में कारणभूत शक्ति है उसे योग कहते हैं अर्थात् शरीर नामकर्म के उदय से योग होता है।

(3.)शरीर नामकर्म के उदय से ही शरीर की रचना होती है जिससे शरीर संयुक्त होने के कारण जीव मूर्तिक हो जाता है। तब ही कर्म और नोकर्म का सञ्चय होता है।

प्रश्न वृद्धावस्था तथा कमजोरी (शिथिलता) आने में कौन सा कर्म कारण होता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 447)

उ□ ार- असातावेदनीय तथा नामकर्म के उदय वृद्धावस्था आती है। उपघात नामकर्म से शिथिलता आती है। ऐसा पं.श्री मु तार जी ने लिखा है। पूज्य मुनि श्री प्रमाणसागर जी महाराज के अनुसार युवावस्था में शरीरयोग्य वर्गणाओं का ग्रहण ज्यादा होता है छोड़ना कम। इससे युवावस्था आती है और शरीर को बल मिलता है परन्तु जैसे-जैसे उम्र बढ़ने लगती है शरीर के योग्य वर्गणाओं का ग्रहण कम और छोड़ना अधिक होने लगता है। इससे शिथिलता और कमजोरी आती है।

प्रश्न विग्रह गति में शरीर नहीं है फिर वहाँ स्थिर और अस्थिर, शुभ और अशुभ इन प्रकृतियों का उदय या काम करता है ? योंकि आगम में इन प्रकृतियों को ध्रुवोदयी कहा है ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 448)

उ ार– विग्रहगति में भी इन प्रकृतियों का प्रतिसमय उदय रहता है, परन्तु वह अव्यक्त रूप से रहता है। जैसे– सयोगकेवली अवस्था में परघात प्रकृति का उदय कहा है। परन्तु उसका कार्य दिखाई नहीं देता, योंकि उसका अव्यक्त उदय है। इसी प्रकार विग्रहगति में ी उपर्युक्त प्रकृतियों का उदय समझना चाहिये।

प्रश्न अनन्तानुबन्धी के उदय के साथ 16 कषायों का उदय रहता है या मात्र अनन्तानुबन्धी का ही ? अर्थात् कषाय के उदय का क्रम या है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 449)*

उ ार– कषाय चार प्रकार की होती हैं – 1. क्रोध 2. मान 3. माया 4. लोभ। प्रत्येक कषाय अनन्तानुबन्धी आदि चार प्रकार की होने से कषाय के 16 भेद हुये। इन सोलह कषायों की सŽा तो एक साथ स भव है परन्तु सोलह कषायों का उदय एक साथ नहीं होता। जब अनन्तानुबन्धी क्रोध का उदय रहता है तब अप्रत्या यानावरण क्रोध, प्रत्या यानावरण क्रोध, संज्वलन क्रोध का उदय नियम से होता है। उदयावली में तो 16 कषायें प्रतिसमय है परन्तु जिस समय अनन्तानुबन्धी क्रोध का उदय है उस समय अनन्तानुबन्धी मान, माया व लोभ का स्तिवुक संक्रमण होकर क्रोधरूप उदय हो जाता है। इसी प्रकार अप्रत्या यानावरण आदि तीनों में भी समझ लेना चाहिये।

अनन्तानुबन्धी आदि चारों में से जब पहली कषाय का उदय है तो शेष तीनों का उदय भी नियम से रहेगा। तृतीय एवं चतुर्थ गुणस्थान में जब अनन्तानुबन्धी का उदय नहीं रहता तो अप्रत्या यानावरण आदि तीन का उदय नियम से रहता है। पाँचवें गुणस्थान में अप्रत्या यानावरण का अनुदय होने से प्रत्या यानावरण और संज्वलन का उदय रहता है। 6–7 वें गुणस्थान में प्रत्या यानावरण का अनुदय हो जाने से मात्र संज्वलन का उदय शेष रह जाता है।

प्रश्न पहले तीन घातिया कर्मों के बीच में वेदनीय कर्म को यों रखा गया तथा घातिया कर्म होते हुये भी अन्तराय कर्म को सबसे अन्त में यों रखा गया ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 452)*

उ ार– वेदनीय कर्म मोहनीय कर्म का सद्भाव होने पर ही अपना कार्य दिखाता है। इसलिए उसको मोहनीय की गोद में रखा। अन्तराय कर्म घातिया है फिर भी अघातिया कर्मों की तरह जीव के गुणों को स पूर्णतया घातने में समर्थ नहीं है तथा नाम, गोत्र और वेदनीय इन तीनों अघातिया कर्मों के निमिŽा से ही अपना कार्य करता है अत: अघातिया कर्मों के अन्त में अन्तराय कर्म कहा गया है।

प्रश्न असंयत तिर्यञ्चों के या संयतासंयत तिर्यञ्चों के उच्च गोत्र का उदय होता है या नहीं ? €या संयमगुण स यग्दर्शन से अधिक विशेष होता है ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 453)

उ ार– पञ्चम गुणस्थानवर्ती तिर्यञ्चों के उच्च गोत्र की उदीरणा होने लगती है परन्तु किन्हीं तिर्यञ्चों के होती है

किन्हीं के नहीं। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च या पहले-दूसरे-तीसरे गुणस्थानवर्ती तिर्यञ्चों के उच्च गोत्र का उदय नहीं पाया जाता। यहाँ प्रश्न उठता है कि, क्या संयम गुण सम्यग्दर्शन से अधिक विशेष होता है ? इसका उत्तर यह है कि वास्तव में संयम गुण सम्यक्त्व से विशेषता लिए हुये है। सम्यग्दर्शन तो चारों गतियों में हो सकता है जबकि संयमासंयम मात्र मनुष्य और तिर्यञ्चों में ही सम्भव है और वह भी कर्मभूमिजों के। संयम तो मात्र मनुष्य के ही सम्भव है। संयम या संयमासंयम से तो जीवनपर्यन्त प्रतिसमय असंख्यातगुणी कर्मों की निर्जरा होती रहती है जबकि सम्यक्त्व के मात्र उत्पत्तिकाल में ही निर्जरा होती है। नरक, तिर्यञ्च, मनुष्यायु का बन्ध हो जाने पर भी सम्यक्त्व हो जाता है जबकि संयम या संयमासंयम नहीं होता। इन कारणों से संयम या संयमासंयम को सम्यक्त्व से विशेष कहा गया है।

प्रश्न कौन-कौन से जीवों के उच्च गोत्र या नीच गोत्र का उदय होता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 454)

उत्तर- सभी देवता उच्चगोत्री होते हैं। सभी नारकी नीचगोत्री होते हैं। तिर्यञ्च भी नीचगोत्री होते हैं। भोगभूमियाँ मनुष्य उच्च गोत्री ही होते हैं। पञ्चम गुणस्थावर्ती तिर्यञ्चों के उच्च गोत्र भी संभव है। मनुष्यों में जिनका दीक्षायोग्य श्रेष्ठाचरण है, श्रेष्ठ आचरण वालों के साथ जिनका सम्बन्ध होता है तथा जो आर्य कहलाते हैं उनकी परम्परा को उच्च गोत्र कहा जाता है। तथा उनमें उत्पत्ति का कारणभूत उच्चगोत्र कर्म है। इसके विपरीत नीचगोत्र होता है। म्लेच्छ खण्ड में रहने वाले जीवों के नीचगोत्र का उदय कहा गया है। परन्तु जो म्लेच्छ मनुष्य, चक्रवर्ती के साथ आर्यखण्ड में आ जाते हैं और चक्रवर्ती के साथ जिन्होंने विवाह आदि सम्बन्ध स्थापित कर लिया है उनके उच्च गोत्र का उदय हो जाने से संयम धारण करने की योग्यता हो जाती है। आर्यखण्डों में भी उत्पन्न हुये जो शक, यवन, शवर, पुलिंदादि मनुष्य हैं वे आर्यखण्ड में रहते हुये भी कर्मभूमिज म्लेच्छ कहे जाते हैं। उनके नीच गोत्र का उदय है।

गोत्र की व्याख्या जन्मानुसार भी कही गयी है अर्थात् शूद्रों में उत्पन्न कोई व्यक्ति यदि राज्य के उच्च पद पर भी आसीन हो जाये, राजा भी बन जाये तो भी उसका गोत्र बदलता नहीं है। यह कर्मोदयानुसार व्याख्या हुई।

कार्य के अनुसार व्याख्या करते हुए आचार्य वीरसेन महाराज ने छह प्रकार से गोत्रकर्म की व्याख्या कही है-

1. **उच्चउच्च**- जो उच्च गोत्र में पैदा हुआ हो, कार्य भी उच्च हो।
2. **उच्च**- जो उच्च गोत्र में पैदा हुआ परन्तु कार्य सामान्य हो।
3. **उच्चनीच**- जो उच्चगोत्र में पैदा हुआ परन्तु कार्य नीच करता है।
4. **नीचउच्च**- जो नीच गोत्र में पैदा हुआ परन्तु उच्च कार्य करता है।
5. **नीच**- जो नीच गोत्र में पैदा हुआ परन्तु कार्य सामान्य करता है।
6. **नीचनीच**- जो नीच गोत्र में पैदा हुआ, और कार्य भी नीच करता है।

सामान्य से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को उच्चवर्ण वाला और शूद्र को नीच वर्ण वाला कहा गया है।

प्रश्न उदयाभावी क्षय और अविपाक निर्जरा में □ या अन्तर है ?*(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 457)*

उ□ ार– क्षायोपशमिक भाव में सर्वघाति स्पर्धक अपने रूप से उदय में न आकर देशघातिरूप उदय में आते हैं। ऐसे सर्वघाति स्पर्धकों की उदयाभावी क्षय संज्ञा है। यह मिथ्यादृष्टि और स यग्दृष्टि दोनों के होता है। जबकि तप के द्वारा जिन कर्मों का स्थितिघात या अनुभागघात करके स्वरूप से या परप्रकृतिरूप से उदय में लाया जाता है उन कर्मों की अविपाक निर्जरा संज्ञा है। यह स यग्दृष्टि जीवों के ही मु यता से होती है। स य€त्व के सन्मुख करण लŽिध प्राप्त जीव के भी अपूर्वकरण से अविपाक निर्जरा कही गयी है।

प्रश्न सदवस्थारूप उपशम □ या होता है ?

उ□ ार– इस श□ द का अर्थ है कि उदय में आने वाले सर्वघाति स्पर्धक तो उदयाभावी क्षय होने से देशघातिरूप होकर उदय में आ गये, पर उदयावली से ऊपर जो सर्वघाति स्पर्धक हैं उनका समय से पूर्व उदय में न आकर समय से ही उदय में आना सदवस्थारूप उपशम कहलाता है। अर्थात् उदीरणा का अभाव होना सदवस्थारूप उपशम कहलाता है।

प्रश्न देव और नारकियों के असाता या साता वेदनीय की उदय–उदीरणा उत्कृष्ट से कितने काल तक

रह सकती है ?

उ□ ार– श्री धवला पुस्तक 15 के अनुसार नारकियों में यदा–कदा सातावेदनीय का उदय भी संभव है। और असातावेदनीय की उदय–उदीरणा सप्तम नरक में 33 सागर तक भी निरन्तर रह सकती है। देवों में असाता वेदनीय का उदय यदा–कदा पाया जाता है परन्तु साता वेदनीय की उदय–उदीरणा सर्वार्थसिद्धि के देवों के भी 6 माह से अधिक नहीं रहती। उसके बाद असाता वेदनीय का उदय आता ही आता है।

स□ व

प्रश्न सप्तम नरक में 33 सागर की आयु सभी नारकियों के होती है या जघन्य आयु का भी विधान है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 458)*

उ□ ार– धवला पुस्तक–7 के अनुसार सातवें नरक की जघन्यायु एक समय अधिक बाईस सागर कही गयी है। सातवें नरक के नारकियों की आयु 22 सागर + 1 समय से लेकर तैंतीस सागर तक अलग–अलग होती है अर्थात् जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट कही गयी है।

प्रश्न □ या संज्वलन और नव नोकषायों में सर्वघाति या देशघाति दोनों प्रकार के स्पर्धक होते हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 463)

उ□ ार– चार संज्वलन कषाय और नव नोकषाय देशघाति प्रकृतियाँ हैं □ योंकि इनके उदय रहते हुये सकल चारित्र का स पूर्ण घात नहीं होता। परन्तु इन दोनों में सर्वघाति स्पर्धक भी हैं €योंकि इनमें शैल, अस्थि, दारुरूप

अनुभाग पाया जाता है। आस्रव के समय जब बंटवारा होता है तब इनको भी सर्वघाति का द्रव्य मिलता है। अत: इनमें भी सर्वघाति स्पर्धक होते हैं।

प्रश्न अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना होती है, क्षय €यों नहीं ? यह किन गुणस्थानों में होती है और इसका उत्कृष्ट काल कितना है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 465)*

उ□ ार- अनन्तानुबन्धी कषाय का द्रव्य अप्रत्या यानावरण आदि कषाय रूप हो जाने पर (विसंयोजना होने से) तदुपरान्त भावों की विशुद्धि घटने पर वही विसंयोजित द्रव्य पहले या दूसरे गुणस्थान में गिरने से अनन्तानुबन्धीरूप परिणमन कर जाता है। इस प्रकृति का स्वभाव ऐसा ही है इसलिए इसकी विसंयोजना ही होती है, क्षय नहीं होता। □ योंकि क्षय होने पर वह प्रकृति पुन: उदय में आने योग्य नहीं हो पाती। कोई भी औपशमिक या क्षायोपशमिक स य€त्वी जीव अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना कर सकता है। यह भी विशेष है कि अनन्तानुबन्धी के अलावा अन्य किसी भी प्रकृति की विसंयोजना नहीं होती।

कोई वेदक स यग्दृष्टि जीव कुछ कम 132 सागर तक अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना वाला रह सकता है। अर्थात् 66 सागर तक वेदक स य€त्व के साथ रहकर अन्तिम अन्तर्मूहुर्त में स यग्मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ और पुन: वेदक स य€त्व को प्राप्त होकर कुछ कम 66 सागर तक स यग्दृष्टि बना रहा। अन्त में गिरकर मिथ्यादृष्टि हो गया। ऐसे जीव के कुछ कम 132 सागर तक अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना रह सकती है। चतुर्थ से सप्तम् गुणस्थान तक के जीव विसंयोजना कर सकते हैं। चतुर्गति के जीव (यथायोग्य) अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना कर सकते हैं।

प्रश्न मोहनीय कर्म का नाश दसवें गुणस्थान के अन्तिम समय में होता है या बारहवें गुणस्थान के प्रथम समय में ?

उ□ ार- आगम में इस तरह के प्रश्नों के उ□ ार दो प्रकार से दिये गये हैं-

1. उत्पादानुच्छेद- इस वर्णन के अनुसार दसवें गुणस्थान के अन्त समय में मोहनीय कर्म का नाश होता है अर्थात् यह पद्धति चरम समय में नाश को स्वीकारती है।

2. अनुत्पादानुच्छेद- इस कथन पद्धति के अनुसार नाश होने के अगले समय में नाश कहा जाता है अर्थात् यह कथन पद्धति दसवें गुणस्थान के अन्त समय में मोहनीय का नाश न मानकर बारहवें गुणस्थान के प्रथम समय में मोहनीय का नाश मानती है। दोनों कथन अपनी-अपनी अपेक्षा से सत्य और उचित हैं।

गुणश्रेणी, स्थिति, अनुभागकाण्डकघात

प्रश्न एकेन्द्रिय जीव के स्थितिकाण्डक घात और अविपाक निर्जरा होती है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 469)

उ ार- एकेन्द्रिय जीवों में मोहनीय कर्म का उत्कृष्ट स्थिति बन्ध एक सागर प्रमाण है। जब कोई इससे अधिक कर्म स्थिति वाला जीव एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होता है तब उसके स्थितिकाण्डक घात द्वारा स्थितिबन्ध घटकर एक सागर प्रमाण रह जाता है। ऐसे प्रसङ्गों में स्थितिकाण्डक घात तो एकेन्द्रिय जीवों के होता है तथा आस्रव की अपेक्षा निर्जरा भी अधिक होती है परन्तु यह निर्जरा अविपाक निर्जरा नहीं कही जाती। अविपाक निर्जरा तो करणलŽध से पूर्व नहीं होती है। जो निर्जरा करण परिणामों, संयमासंयम तथा संयम परिणामों के द्वारा होती है वह अविपाक निर्जरा है। यह एकेन्द्रिय के स भव नहीं है।

प्रश्न अनुभाग काण्डक घात में, नवीन बन्ध में अनुभाग घटता है या सžा में स्थित कर्मों में ही अनुभाग घटता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 470)*

उ ार- अनुभागकाण्डकघात में सžा में स्थित कर्मों के अनुभाग का ही घात होता है। उस समय जिस-जिस स्पर्धक में उसके योग्य जो उत्कृष्ट अनुभागबन्ध है उसका घात होकर अनन्तगुणा हीन हो जाता है लेकिन नवीन बन्ध होने पर एक आवली काल तक स्थिति व अनुभाग का घात नहीं होता। इसीलिए नवीन बन्ध होने के बाद प्रथम आवली को अचलावली कहते हैं।

प्रश्न स्थितिकाण्डक घात और अनुभागकाण्डक घात में ऊपर के प्रदेश नीचे आते हैं या नहीं तथा स्थितिकाण्डकघात के समय अनुभागकाण्डक घात होना आवश्यक है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 471)

उ ार- स्थितिबन्ध में काल की अपेक्षा होती है अर्थात् निषेकों की ऊर्ध्व रचना (ल बाई में) होती है। स्थितिकाण्डकघात के समय ऊपर के प्रदेशों को नीचे के प्रदेशों में मिलाना पड़ता है। परन्तु अनुभाग में ऐसा नहीं होता। एक समय में जो कर्म पुञ्ज उदय में आता है उसे निषेक कहते हैं। प्रत्येक निषेक में सर्वघाति व देशघाति स्पर्धक है। जब अनुभागकाण्डक घात होता है तब सर्वघाति स्पर्धक देशघातिरूप हो जाते हैं परन्तु ल बाई घटना जरुरी नहीं है।

पाप प्रकृतियों में तो स्थिति घटने के साथ अनुभाग घटने का भी नियम है योंकि पाप प्रकृतियों की स्थिति मन्द कषाय रूप परिणाम से घटती है। तीव्र कषाय रूप परिणाम से स्थिति भी बढ़ती है और अनुभाग भी बढ़ता है अर्थात् पाप प्रकृतियों में दोनों बन्धों का घटना या बढ़ना एक साथ होता है जबकि पुण्य प्रकृतियों में ऐसा नहीं है। €योंकि उनमें तीव्र कषाय से (तीन आयु को छोड़कर) स्थिति घटती व अनु ाग भी घटता है और मन्द कषाय से पुण्यप्रकृति की स्थिति घटती है व अनुभाग बढ़ता है।

प्रश्न अवधिज्ञान के काल में और अवधिज्ञान के अभाव के काल में अवधिज्ञानावरण के सर्वघाति व देशघाति स्पर्धकों का □ या होता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 472)*

उ̌ार- उदयावली के प्रत्येक अवधिज्ञान के निषेक में सर्वघाति व देशघाति दोनों प्रकार के स्पर्धक पाये जाते हैं। देवों के अवधिज्ञान होता है अत: उनके अवधिज्ञानावरण के देशघाति स्पर्धक तो स्वमुख से उदय में आते हैं और सर्वघाति स्पर्धक स्तिवुक संक्रमण के द्वारा देशघातिरूप होकर उदय में आते हैं।

हम मनुष्यों में अवधिज्ञान नहीं है। हमारे उदयावली में भी अवधिज्ञानावरण कर्म के सर्वघाति व देशघाति दोनों प्रकार के स्पर्धक मौजूद है। उनमें से सर्वघाति स्पर्धकों का स्वमुख उदय हो रहा है और देशघाति स्पर्धकों का अनुभाग बदलकर स्तिवुक संक्रमण द्वारा सर्वघाति रूप उदय हो रहा है। इसलिए हमारे अवधिज्ञानावरण के देशघाति स्पर्धकों का उदय नहीं होने से अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम नहीं है।

किसी भी घातिया कर्म के सर्वघाति व देशघाति स्पर्धकों का एक साथ उदय में आना संभव नहीं है। द्रव्य-क्षेत्रादि के अनुसार दोनों में से एक का उदय रहता है और दूसरे का स्तिवुक संक्रमण होकर परमुख उदय रहता है। ऐसा नियम है।

प्रश्न अविभागी प्रतिच्छेद किसे कहते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 473)*

उ□ ार- अविभागी प्रतिच्छेद का कथन दो अपेक्षा से पाया जाता है-

1. कर्म व नोकर्म वर्गणा की अपेक्षा- सबसे मन्द अनुभाग वाले कर्म परमाणु का केवल स्पर्श गुण को बुद्धि से ग्रहण करके जहाँ तक उसके टुकड़े हो सकें, करने चाहिये। छेदन के अयोग्य उस खण्ड की अविभागी प्रतिच्छेद संज्ञा है।

2. जीव व पुद्गल परमाणु के शक्ति अंश की अपेक्षा- एक परमाणु में जितनी जघन्य वृद्धि होती है वह अविभागी प्रतिच्छेद है। मात्रा का अर्थ अविभागी प्रतिच्छेद है। गुण की जघन्य वृद्धि, यह उसका प्रमाण है।

शक्ति के अविभागी अंश को अविभागी प्रतिच्छेद कहा जाता है।

प्रश्न एक वर्गणा में जितने वर्ग होते हैं, उन सबमें अविभागी प्रतिच्छेद समान रहते हैं या कम-ज्यादा होते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 474)*

उ□ ार- समान अविभागी प्रतिच्छेद वाले परमाणु (वर्ग) के समूह को वर्गणा कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार एक वर्गणा में पाये जाने वाले समस्त वर्गों के अविभागी प्रतिच्छेद समान ही होते हैं।

प्रथम स्कन्ध के प्रथम वर्गणा में सबसे अधिक वर्ग होते हैं, द्वितीय वर्गणा में उससे कम और अगली वर्गणाओं में उससे कम होते हैं। परन्तु अविभागी प्रतिच्छेद इससे विपरीत होते हैं अर्थात् प्रथम वर्गणा में अविभागी प्रतिच्छेद सबसे कम और अगली वर्गणा में उससे ज्यादा-ज्यादा होते हैं।

प्रश्न क्षयोपशम दशा में कर्म की देशघाति व सर्वघाति प्रकृतियाँ किस प्रकार कार्य करती हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 475)*

उ ार- देशघाति के उदय और सर्वघाति के अनुदय को क्षयोपशम कहते हैं। यदि अन्य कर्म भी उस गुण के क्षयोपशम में बाधक हो तो उस कर्म के भी देशघाति स्पर्धकों का उदय होना चाहिये। जैसे- हमारे मतिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम है अर्थात् मतिज्ञानावरण के सर्वघाति स्पर्धकों का अनुदय और देशघाति स्पर्धकों का उदय है। तो उसके साथ वीर्यान्तराय कर्म के सर्वघाति स्पर्धकों का अनुदय और देशघाति स्पर्धकों का उदय भी होना चाहिये। €योंकि आत्मा का वीर्य-गुण आत्मा के ज्ञानगुण में सहकारी कारण है। परन्तु मतिज्ञानावरण के क्षयोपशम में अन्य ज्ञानावरणों के सर्वघाति तथा देशघाति स्पर्धकों की कोई अपेक्षा नहीं है।

जो सर्वघाति प्रकृति है उनके स्पर्धक तो सर्वघाति ही होते हैं। जितनी देशघाति प्रकृतियाँ हैं उनके स्पर्धक, सर्वघाति और देशघाति, दोनों प्रकार के होते हैं। केवल स य€प्रकृति इसका अपवाद है। स यक्प्रकृति के स्पर्धक देशघाति ही होते हैं, सर्वघाति नहीं होते। अन्य सारी देशघाति प्रकृतियों में दोनों प्रकार के स्पर्धक होते हैं।

प्रश्न कषायों की शक्ति की अपेक्षा कर्मकाण्ड, धवला आदि ग्रन्थों में चार भेद पढ़ने में आते हैं- उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य, जघन्य। इनसे €या तात्पर्य है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 476)*

उ ार- उत्कृष्ट 100 है और जघन्य एक। अनुत्कृष्ट में जघन्य और अजघन्य दोनों शामिल हैं अर्थात् एक से लेकर निन्यानवे तक। अजघन्य में 2 से 100 तक अर्थात् अनुत्कृष्ट और उत्कृष्ट दोनों गर्भित हैं। उत्कृष्ट अनुभाग से अनन्तानुबन्धी का, अनुत्कृष्ट अनुभाग से अप्रत्या यानावरण का, अजघन्य से प्रत्या यानावरण का तथा संज्वलन का जघन्य से अ ाप्राय नहीं लेना है।

प्रश्न जो कर्म उदयावली में प्रवेश कर चुके हैं, उनमें उत्कर्षण, अपकर्षण आदि स भव है या नहीं ?

उ ार- श्री जयधवला पुस्तक 7 के अनुसार उदयावली को प्राप्त कर्मों में कोई ाी करण संभव नहीं है। वे तो नियम से उसी रूप में उदय आते हैं।

प्रश्न चारों कषायों में किस कषाय का अनुभाग सबसे महान् (बड़ा) है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 477)

उ ार- संज्वलन चतुष्क यथा यात संयम का घातक है जबकि प्रत्या यानावरण सरागसंयम का घातक है। इससे जाना जाता है कि प्रत्या यानावरण के अनुभाग से संज्वलन का अनुभाग अतिशय महान् है। प्रत्या यानावरण का उदय पंचम गुणस्थान तक होता है परन्तु संज्वलन का उदय दसवें गुणस्थान के अन्तिम समय तक रहता है। अर्थात् दसवें गुणस्थान के विशुद्ध परिणामों के द्वारा भी संज्वलन कषाय का घात नहीं हो पा रहा है। इससे भी जाना जाता है कि संज्वलन के अनुभागापेक्षया, प्रत्या यानावरण प्रकृति का अनुभाग अनन्तगुणा हीन है। अप्रत्या यानावरण संयमासंयम का घातक है जबकि प्रत्या यानावरण संयम का घातक है। इससे अप्रत्या यानावरण का अपेक्षा प्रत्या यानावरण की महानता जानी जाती है।

प्रश्न आबाधा किसे कहते हैं ? आयुकर्म की आबाधा में या विशेषता है ?

उ र- बाधा का नहीं होना ही आबाधा कहलाती है। बन्ध के समय से लेकर जितने काल तक उन परमाणुओं में निषेक रचना होती है उस काल को आबाधाकाल कहते हैं। जब तक आबाधाकाल रहता है तब तक कर्म उदय में नहीं आते हैं। जिस कर्म का स्थिति बन्ध एक कोडा-कोडी सागर का होता है उसकी आबाधा सौ वर्ष की होती है। इसी प्रकार अन्य स्थिति में भी लगाना चाहिये। जैसे- किसी कर्म का बन्ध दस कोडा-कोडी सागर हुआ हो तो उसकी आबाधा 1000 वर्ष की होगी अर्थात् वह बँधा हुआ कर्म एक हजार वर्ष बाद उदय में आना प्रार भ होगा। ज्ञानावरणादि कर्मों की आबाधा के भीतर अपकर्षण, उत्कर्षण और परप्रकृति रूप संक्रमण के द्वारा निषेकों के बाधा होती है। उस प्रकार आयुकर्म में नहीं होता। आयु कर्म की आबाधा शेष भुज्यमान आयु प्रमाण होती है। इसमें घटना-बढ़ना नहीं होता है और इसी कारण जिन जीवों की परभव स बन्धी आयु का बन्ध हो जाता है उनका अकालमरण नहीं होता है। ऐसा नियम है। ज्ञानावरणादि कर्मों को तप के द्वारा उदय काल के पूर्व निर्जरित कर दिया जाता है परन्तु आयुकर्म के साथ ऐसा स भव नहीं। जिन कर्मों का स्थिति बन्ध अन्त:कोडाकोडी सागर होता है उनकी आबाधा अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती है। स यग्दृष्टि जीव अन्त:कोडाकोडीसागर से अधिक स्थिति का कर्म नहीं बाँधते अत: उनके द्वारा बाँधा हुआ कर्म नियम से अन्तर्मुहूर्त बाद उदय में आ जाता है।

करण

प्रश्न कर्मों के दस करण में उपशम करण भी है। तो €या उपशम भाव और उपशम करण समान हैं या कुछ अन्तर है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 478)*

उ र- आत्म परिणामों की विशुद्धता के कारण जो कर्म प्रकृति उदीरणा के अयोग्य हो जाये वह उपशम भाव है। वह दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय इन दो ही प्रकृति का होता है। इसलिए औपशमिक भाव के दो ही भेद हैं। औपशमिक स य€त्व और औपशमिक चारित्र। यह उपशमभाव हुआ।

सं€लेश परिणामों से बन्ध के समय जिन कर्म प्रदेशों में ऐसा बन्ध हो जो कि उदयावली में प्राप्त नहीं किये जा सकें, उन्हें उपशम करण कहते हैं। उपशम करण आठों कर्मों में होता है जबकि उपशम भाव केवल मोहनीय कर्म का होता है। इस प्रकार दोनों में अन्तर है।

प्रश्न उद्वेलना संक्रमण किसे कहते हैं और यह कितनी प्रकृतियों में होता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 479)

उ र- तीन करण परिणामों के बिना रस्सी के उकेलने के समान कर्म प्रदेशों का पर-प्रकृतिरूप से संक्रान्त होना उद्वेलना संक्रमण है। जैसे- उपशम स यग्दृष्टि जीव की सžा में मिथ्यात्व, स यग्मिथ्यात्व और स यक् प्रकृति तीनों रहते हैं। वह यदि मिथ्यात्व में आ जाता है तो वह स यक्प्रकृति और स यग्मिथ्यात्व प्रकृति उद्वेलित होकर पल्य के असं यातवें भाग प्रमाण काल में पलट कर मिथ्यात्व रूप हो जाती है। यह उन दोनों प्रकृति की उद्वेलना हुई। यह उद्वेलना संक्रमण तेरह प्रकृतियों में होता है जो इस प्रकार हैं- 1. आहारक शरीर 2. आहारक

शरीराङ्गोपाङ्ग, 3. स यक्प्रकृति 4. स यग्मिथ्यात्व 5. देवगति 6. देवगत्यानुपूर्वी 7. नरकगति 8. नरकगत्यानुपूर्वी 9. वैक्रियिक शरीर 10. वैक्रियिक शरीराङ्गोपाङ्ग 11. मनुष्य गति 12. मनुष्य गत्यानुपूर्वी 13. उच्चगोत्र। इनके अलावा अन्य प्रकृतियों में उद्वेलना संक्रमण स भव नहीं होता। उद्वेलना में स्थिति कम होती जाती है। यह उद्वेलना परिणामों की विशुद्धि और सं€लेश के कारण नहीं है बल्कि मिथ्यात्वादि परिणामों के कारण होती है।

प्रश्न तेरह उद्वेलित प्रकृतियों की उद्वेलना कब और कौन जीव करता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 479)

उǍार- 1. कोई स यग्दृष्टि जीव जब मिथ्यात्व गुणस्थान में पहुँचता है तब फिर स यग्मिथ्यात्व और स यक् प्रकृति की उद्वेलना प्रार भ हो जाती है।

2. कोई संयत जीव यदि असंयत अवस्था को प्राप्त हो जाता है तो वह आहारकद्विक की उद्वेलना करने लगता है। जब तक वह असंयत रहता है तब तक उद्वेलना होती रहती है।

3. कोई पंचेन्द्रिय जीव एकेन्द्रिय अथवा विकलेन्द्रिय में जन्म लेता है तब वह शेष नौ प्रकृतियों की उद्वेलना करने लगता है।

प्रश्न स यग्दृष्टि जीव तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध करते हैं और उसकी स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागर से अधिक नहीं होती। अतः राजा श्रेणिक के तीर्थङ्कर प्रकृति का उदय आना चाहिये था जबकि तीर्थङ्कर प्रकृति का उदय तो 13 वें गुणस्थान में होता है। इसका कारण €या है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 481)

उ□ ार- यह कथन सत्य है कि राजा श्रेणिक को अन्तर्मुहूर्त बाद बाँधी जा रही तीर्थङ्कर प्रकृति का उदय आना चाहिये। उदय के लिए यह नियम है कि कर्म का उदय द्रव्य-क्षेत्र-काल-भव तथा ाव के निमिǍा पाकर होता है। नरक में तीर्थङ्कर प्रकृति के योग्य द्रव्य-क्षेत्र आदि न होने से तीर्थङ्कर प्रकृति का उदय, नामकर्म की अन्य प्रकृतिरूप स्तिवुक संक्रमण होकर, होता रहता है। अर्थात् नरकों में तीर्थङ्कर प्रकृति का स्वमुख उदय नहीं होता, परमुख उदय होता है।

प्रश्न अप्रशस्त उपशम और स्तिवुक संक्रमण में €या अन्तर है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 482)*

उ□ ार- जब कोई जीव उपशम स य€त्व को प्राप्त होता है तब दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों का प्रशस्त उपशम होता है अर्थात् वे अन्तर्मुहूर्त काल तक उदयावली में प्रवेश नहीं करती हैं। परन्तु अनन्तानुबन्धी का अप्रशस्त उपशम होता है। वह उपशम स य€त्व के काल में अप्रत्या यानावरण आदि रूप होकर उदय में आती रहती हैं। उसका उदयावली में आना नहीं रुकता तथा उसके वर्तमान समय से ऊपर के निषेकों की उदीरणा का अभाव रहता है। इसी को अप्रशस्त उपशम कहते हैं। स्तिवुक संक्रमण का अर्थ है कि उदयरूप निषेकों के अनन्तर ऊपर के निषेकों में, अनुदयरूप प्रकृति के द्रव्य का उदय प्रकृतिरूप संक्रमण हो जाना।

द्रव्य, क्षेत्र आदि की अनुकूलता के अनुसार वर्तमान में हमारे मनुष्य गति का तो स्वमुख उदय है और

अन्य तीन गतियों का मनुष्यगति रूप स्तिवुक संक्रमण होकर परमुख उदय हो रहा है। अत: अप्रशस्त उपशम और स्तिवुक संक्रमण भिन्न-भिन्न हैं।

प्रश्न आयु बन्ध के काल में समान स्थिति बन्ध होता है या अलग-अलग भी होता रहता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 483)

उ□ ार- किसी भी अपकर्ष के प्रथम समय में जो आयु का स्थिति बन्ध होता है वही स्थितिबन्ध उन अपकर्ष के अगले समयों में भी होता है, ऐसा नियम है। उससे अधिक व कम स्थिति बन्ध नहीं होता है। यह भी नियम है कि पूरे अपकर्ष काल में आयु के अनुसार ही गति बन्ध निरन्तर होता रहता है, बदलता नहीं है जबकि अन्य कालों में परिणामों के अनुसार गतिबन्ध बदलता रहता है।

प्रश्न परभव स बन्धी आयु के उत्कर्षण व अपकर्षण कब होते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 484)*

उǍार- परभव की आयु का अपकर्षण तो हर समय हो सकता है परन्तु उत्कर्षण तो नवीन बन्ध के समय ही होता है, अन्य समयों में नहीं। जैसे किसी जीव ने प्रथम अपकर्ष काल में एक सागर देवायु बाँधी, यदि वह सं€लेश को प्राप्त हो जाता है तो उसकी आयु कभी भी घट सकती है, परन्तु इसका उत्कर्षण तो अगले बंध काल में ही संभव है। यदि वह दूसरे बन्ध काल में तीन सागर की देवायु बाँधता है तो उसकी देवायु तीन सागर स्थिति वाली हो जायेगी। यदि वह तीसरे अपकर्षकाल में दो सागर की देवायु बाँधता है तो वह तीन सागर की देवायु स्थिति बन्ध वाला ही रहेगा, दो सागर वाला नहीं।

प्रश्न राजा श्रेणिक ने 33 सागर की आयु का अपकर्षण कब किया था ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 485)

उ□ ार- इस स बन्ध में तीन प्रमाण प्राप्त होते हैं -

1. मु तार जी के अनुसार सप्तम पृथ्वी की आयु को प्रथम पृथ्वी की आयु प्रमाण करना क्षायिक स य€त्व या कृतकृत्यवेदक के बिना संभव नहीं है। इसी कारण श्रीकृष्ण नारायण क्षायोपशमिक स य€त्व के बाद भी तीसरी पृथ्वी की आयु को छेदकर प्रथम पृथ्वी प्रमाण नहीं कर सके।

2. *हरिवंशपुराण* के अनुसार क्षायिक स य€त्व होने के बाद ही सप्तम नरक की आयु घटकर 84 हजार वर्ष हुई थी। (*हरि. 2/135*)

3. *आराधना कथा कोश* के अनुसार श्रेणिक ने उपशम स य€त्व के काल में ही श्रेष्ठ प्रायश्चिǍा तथा विशुद्धि द्वारा सप्तम नरक की आयु को छेदकर प्रथम नरक प्रमाण कर ली थी। (108/09)

उपर्युक्त तीनों प्रमाणानुसार यह स्पष्ट होता है कि नरकायु का घटना स य€त्व के बिना स ाव नहीं है।

प्रश्न उदय और उदीरणा में €या अन्तर है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 485)*

उ□ ार- जो कर्मस्कन्ध अपकर्षण, उत्कर्षण आदि के बिना स्थिति-क्षय को प्राप्त होकर अपना-अपना फल देते

हैं उन कर्मस्कन्धों की उदय संज्ञा है तथा जिनका स्थिति अनुभाग ज्यादा है अर्थात् जो कर्मस्कन्ध अभी उदय योग्य नहीं है उन कर्मों के विपाक को उदीरणा कहते हैं। सभी कर्मस्कन्धों में, उदय के साथ, कुछ विशेष नियमों को छोड़कर, उदीरणा सदैव पायी जाती है।

प्रश्न निधत्तिकरण और निकाचितकरण का क्या स्वरूप है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 485)*

उत्तर- जो कर्मप्रदेश संक्रमण एवं उदीरणा के लिए शक्य न हो परन्तु जिनका अपकर्षण व उत्कर्षण हो सके उनकी निधत्ति संज्ञा है और जो कर्म प्रदेश उदीरणा, संक्रमण, अपकर्षण तथा उत्कर्षण के योग्य नहीं होते उनकी निकाचित संज्ञा है।

प्रश्न गुणश्रेणी निर्जरा किसे कहते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 486)*

उत्तर- उदयावली के बाहर प्रथम निषेक में जितना द्रव्य दिया जाता है उससे असंख्यातगुणा द्रव्य दूसरे निषेक में दिया जाता है और उससे भी असंख्यातगुणा द्रव्य तीसरे निषेक में दिया जाता है। इस प्रकार गुणश्रेणी के सम्पूर्ण काल में असंख्यात-असंख्यात गुणा करते हुये द्रव्य को उदयावली में देना गुणश्रेणी निर्जरा कहलाती है।

प्रश्न आयु कर्म के अपकर्षण को अवलम्बनाकरण क्यों कहा जाता है ?

उत्तर- जब किसी कर्म का अपकर्षण होता है तब उसका द्रव्य उदयावली तक आता है परन्तु जब आयु कर्म का अपकर्षण होता है तब उसका द्रव्य आबाधाकाल के बाद तक ही आ पाता है, उदयावली तक नहीं आता। इसलिए आयु कर्म के अपकर्षण को आगम में अवलम्बनाकरण कहा गया है।

भाव

प्रश्न किसी एक जीव में कम से कम और अधिक से अधिक कितने भाव पाये जा सकते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 487)*

उत्तर- कोई क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव जब उपशान्त मोह गुणस्थान में चारित्रमोह का उपशम कर देता है तो चारित्र मोह की अपेक्षा औपशमिक भाव, दर्शनमोहनीय की अपेक्षा क्षायिक भाव, ज्ञानावरणी की अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव, मनुष्यगति आदि की अपेक्षा औदयिक भाव तथा जीवत्व और भव्यत्व की अपेक्षा पारिणामिक भाव। इस प्रकार एक जीव में अधिक से अधिक ये पाँचों भाव पाये जाते हैं। चौदहवें गुणस्थान में ज्ञान, दर्शन की अपेक्षा क्षायिकभाव, असिद्धत्व की अपेक्षा औदयिक भाव तथा जीवत्व और भव्यत्व की अपेक्षा पारिणामिक भाव। इस प्रकार एक जीव में कम से कम तीन भाव पाये जाते हैं। यह संसारी जीवों की अपेक्षा चर्चा हुई। मुक्त जीवों में क्षायिकभाव और जीवत्वरूप पारिणामिक भाव पाया जाता है।

प्रश्न पाँच भावों में कौन-कौन से भाव बन्ध और मोक्ष में कारण होते हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 104)

उत्तर- श्री धवलानुसार औदयिक भाव बन्ध के कारण हैं, औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव मोक्ष के कारण हैं तथा पारिणामिक भाव बन्ध व मोक्ष किसी में कारण नहीं हैं।

प्रश्न क्षयोपशम लब्धि और क्षयोपशम में क्या अन्तर है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 489)*

उत्तर- सर्वघाति स्पर्धकों के अनुदय तथा देशघाति स्पर्धकों के उदय से जो गुण का अंश प्रकट होता है उसे क्षयोपशम कहते हैं। यह प्रथम से बारहवें गुणस्थानवर्ती जीवों तक नियम से पाया जाता है जबकि क्षयोपशम लब्धि इससे भिन्न है अर्थात् पाप कर्मों का अनुभाग जिस काल में प्रतिसमय अनन्तगुणा घटता हुआ उदय में आता है उस समय क्षयोपशम लब्धि होती है। यह हर जीव के नहीं होती और सदा नहीं होती।

प्रश्न जीव के जो पाँच भाव कहे गये हैं, उनमें से कोई भाव अन्य द्रव्यों में भी पाये जाते हैं या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 489)

उत्तर- जीव में पाँचों भाव, पुद्गल में औदयिक तथा पारिणामिक भाव व शेष चार द्रव्यों में मात्र पारिणामिक भाव ही पाया जाता है। पारिणामिक भाव के सूत्र में '*जीव भव्याभव्यत्वानि च*'। जो 'च' शब्द दिया है उसके अनुसार अस्तित्व, वस्तुत्व आदि जो द्रव्य के सामान्य गुण हैं उनको भी पारिणामिक भाव माना गया है। तदनुसार धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य में पारिणामिक भाव पाया जाता है। पुद्गल द्रव्य में पारिणामिक भाव तो है ही, पुद्गल की कार्मण वर्गणा का कर्मरूप होकर उदय में आकर फल देना, यह पुद्गल द्रव्य का औदयिक भाव है। इस कार्मण वर्गणा की अपेक्षा पुद्गल वर्गणा में औदयिक और पारिणामिक दो भाव कहे गये हैं। कार्मण वर्गणा के अतिरिक्त अन्य 22 वर्गणाओं में औदयिक भाव नहीं पाया जाता है, केवल पारिणामिक भाव ही पाया जाता है।

प्रश्न औदयिक भाव तो कर्मोदय से होने वाले आत्मा के राग-द्वेष आदि परिणामों में माना जाना चाहिये था। गति तथा लिङ्ग रूप शरीर के चिह्नों में औदयिक भाव क्यों माना गया है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 490)

उत्तर- कर्मों के उदय से जो आत्मा में भाव होते हैं वे औदयिक भाव कहलाते हैं। आठों कर्मों के उदय से औदयिक भाव नाना प्रकार से होते हैं। गति नामकर्म के उदय से आत्मा में नारकादि भाव होते हैं अर्थात् 'मैं नारकी हूँ' ऐसा भाव होता है। अत: इस भाव के कारण गति नामकर्म के उदय से औदयिक भाव कहा गया है।

दूसरा लिंग का अर्थ शारीरिक चिह्न नहीं, परन्तु वेद से अभिप्राय है अर्थात् कामवासना रूप परिणामों को वेद कहा गया है। ये तीनों भाववेद हैं और वेद नोकषाय का उदय होने के कारण इनको औदयिक भाव कहा है।

अकलंक स्वामी ने *राजवार्तिक* में स्वयं प्रश्न उठाया है कि या औदयिक भावों में लिङ्ग से द्रव्य लिङ्ग कहा गया है या ाव लिङ्ग ? इसका उžार भी दिया है कि लिङ्ग औदयिक भाव से ाव लिङ्ग अर्थात् ाव वेद ही लेना चाहिये, द्रव्यलिङ्ग नहीं। अत: इन दोनों को औदयिक भाव कहना सर्वथा उचित है।

प्रश्न अहिंसादि व्रतों को औदयिक भाव मानें या क्षायोपशमिक भाव ? और यों ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 490)

उ ार- पापों से विरक्त होने का नाम व्रत है और ये व्रत तो *रत्नकरण्डकश्रावकाचार गाथा 49* के अनुसार चारित्र कहे गये हैं। तžवार्थसूत्र अध्याय-2 में स यक् चारित्र को औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक इन तीन भाव रूप बतलाया है। किसी भी आचार्य ने स यक्चारित्र को औदयिक ाव नहीं बतलाया है। औदयिक भाव संसार के कारण होते हैं जबकि स यक्चारित्र तो मोक्ष का कारण है। चारित्र के अभावरूप असंयम औदयिकभाव है। व्रत तो क्षायोपशमिक आदि तीन भावों में आते हैं। औदयिक भाव रूप नहीं है।

यदि कोई प्रश्न करे कि अनन्तानुबन्धी और अप्रत्या यानावरण के अनुदय तथा प्रत्या यानावरण के उदय से संयमासंयमरूप भाव होते हैं अत: प्रत्या यानावरण के उदय के कारण संयमासंयम को औदयिक भाव €यों न मान लिया जाये ? इसका उžार यह है कि अप्रत्या यानावरण कषाय का कार्य संयमासंयम का घात करना था परन्तु उसके अनुदय से होने वाले संयमासंयम को प्रत्या यानावरण के उदय से €यों माना जाए? यदि प्रत्या यानावरण के उदय से संयमासंयम होता है तो एकेन्द्रिय आदि जीवों के भी प्रत्या यानावरण का उदय होने से संयमासंयम मानना पड़ेगा जो कदापि उचित नहीं है। इसी प्रकार सकल संयम भी प्रत्या यानावरण के अनुदय से होने के कारण क्षायोपशमिक भाव है। संज्वलन के उदय से होने के कारण औदयिक भाव नहीं है।

प्रश्न द्विसंयोगी आदि सान्निपातिक भाव €या हैं और वे किस गुणस्थान में होते हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 491)

उ ार- दो भावों के संयोग से जो भाव बनता है उसे द्विसंयोगी सान्निपातिक भाव कहा गया है। जैसे- 'लोभी जीव'। इसमें लोभी औदयिक भाव तथा जीव पारिणामिक भाव है। यह द्विसंयोगी सान्निपातिक भाव एक से दस गुणस्थान तक स भव हैं। त्रिसंयोगी भाव- 'उपशान्तमोह क्षायिकस यग्दृष्टि मनुष्य'। यह भाव त्रिसंयोगी है अर्थात् औपशमिक भाव, क्षायिक ाव तथा औदयिक भाव। यह भाव ग्यारहवें गुणस्थान में संभव है। इसी प्रकार से अन्य ाव लगा लेने चाहिये। इसी प्रकार उपशान्तमोह + क्षायिकस यग्दृष्टि + मतिज्ञानी + जीव, यह चतु:संयोगी भाव हुआ। 'उपशान्तमोह + क्षायिकस यग्दृष्टि + मतिज्ञानी + मनुष्यगति + जीव' यह पंच संयोगी सान्निपातिक ाव हुआ।

प्रश्न पारिणामिक ावों में उत्पाद, व्यय होता है या नहीं ? अस्तित्व, वस्तुत्व आदि सामान्य गुणों में उत्पाद, व्यय होता है या नहीं ? बताइये। *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 492)*

उ ार- पारिणामिक भावों में जीवत्व भाव न तो द्रव्यरूप होता है, न गुणरूप होता है और न ही पर्याय रूप।

इसलिए मात्र ध्रौव्य होने के कारण तथा द्रव्यार्थिक नय का विषय होने से जीवत्व भाव अनादिअनन्त है, नित्य है अर्थात् कूटस्थ है। अस्तित्व, वस्तुत्व आदि सामान्य गुण द्रव्य के आश्रय हैं। द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य होता है अत: उस द्रव्य के आश्रित गुणों में ाी अर्थात् अस्तित्व-वस्तुत्व आदि में उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य स्वीकार कर लेने में कोई बाधा नहीं है।

प्रश्न €या सिद्धत्व पारिणामिक भाव है ?

उ□ ार- असिद्धत्व, औदयिक भाव है अर्थात् दसवें गुणस्थान तक आठों कर्मों के उदय से, ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में सात कर्मों के उदय से तथा तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में चार अघातिया कर्मों के उदय से असिद्धत्व भाव होता है। परन्तु सिद्धों में जो सिद्धत्व भाव है, वह समस्त कर्मों के क्षय होने से होता है अत: वह क्षायिक भाव है। समस्त संसारी जीवों के असिद्धत्व भाव ही है।

पुद्गल वर्गणा

प्रश्न पुद्गल वर्गणा कितने प्रकार की होती है ? उनमें से कितने प्रकार की वर्गणा हमारे उपयोग में आती है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 493)*

उ□ ार- पुद्गल वर्गणा 23 प्रकार की होती हैं। उनमें से आहार या नोकर्म वर्गणा से औदारिक, वैक्रियिक एवं आहारक शरीर बनता है। वचन वर्गणा से शŽद बनते हैं। मनोवर्गणा से द्रव्यमन बनता है। तैजस वर्गणा से तैजस शरीर और कार्मण वर्गणा से कार्मण शरीर बनता है। शेष वर्गणाओं का €या कार्य है ? यह पढ़ने में नहीं आया। प्रथम से तेरहवें गुणस्थान तक के सभी जीव यथायोग्य पाँचों प्रकार की वर्गणायें प्रतिसमय ग्रहण करते हैं।

प्रश्न धातु चार हैं - पृथ्वी, जल, अग्नि व वायु। इन चार धातुओं के परमाणु भिन्न-भिन्न होते हैं या एक ही प्रकार के ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 494)*

उ□ ार-*पंचास्तिकाय गाथा 78* के अनुसार चारों धातुओं के परमाणु भिन्न-भिन्न नहीं है। एक ही परमाणु को जैसा निमिŽा मिलता है उसी प्रकार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चार धातुरूप परिणमन कर जाता है। प्रत्येक परमाणु में चारों धातुरूप परिणमन करने की शक्ति है। आहार वर्गणा ही चारधातु रूप परिणमन करती है।

प्रश्न कौन-कौन सी वर्गणा चक्षु इन्द्रिय या अन्य इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 495)*

उ□ ार- शास्त्रों में इस स बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा मिलता है किन्तु स्वयं की बुद्धि के अनुसार चक्षु इन्द्रिय मात्र आहार वर्गणा से बने हुए पुद्गल स्कन्ध को जानती है। भाषा वर्गणा तथा निस्सरणात्मक तैजस वर्गणा भी इन्द्रिय ग्राह्य है। पुद्गल की सबसे बड़ी वर्गणा महास्कन्ध वर्गणा है। वह विशालतम होते हुए भी सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रिय ग्राह्य नहीं है।

प्रश्न मनोवर्गणा के द्वारा जो द्रव्य मन बनता है उसका स्वरूप व कार्य €या है ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 496)

उ ार- *श्लोकवार्तिक 5/19* की टीकानुसार हृदयस्थान में अष्टपंखुड़ी वाले कमल के समान बन रहा मनोवर्गणा नामक पुद्‌गलों से निर्मित द्रव्यमन है। ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से तथा अङ्गोपाङ्ग नामकर्म के निमिž ा से जो पुद्‌गल, गुण-दोष का विचार और स्मरणादि के उपयोग के सन्मुख हुये आत्मा के उपकारक हैं वे पुद्‌गल ही द्रव्यमन रूप परिणत होते हैं। अत: द्रव्यमन पौद्‌गलिक है। द्रव्यमन के अभाव में आत्मा शिक्षा या उपदेश ग्रहण नहीं कर सकता है। शिक्षा व उपदेश आदि का ग्रहण करना भावमन का कार्य है। उस भावमन की उत्पž ा में द्रव्यमन कारण है। भावमन की उत्पž ा नोइन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से होती है जो संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों में पाया जाता है। (अङ्गुल के असं यातवें भाग प्रमाण द्रव्यमन की संरचना होती है।)

प्रश्न कार्मण वर्गणा में पुद्‌गल के कौन-कौन से गुण पाये जाते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 497)*

उ ार- कर्मरूप होने योग्य कार्मण वर्गणा कठोर, मृदु, स्निग्ध व रूक्ष इन चार स्पर्श वाली, पाँच रस, दो गन्ध और पाँच वर्ण वाली होती हैं किन्तु ईर्यापथ आस्रव द्वारा जो कर्मस्कन्ध आते हैं वे मृदु व रूक्ष स्पर्श वाले, अच्छी गन्ध वाले, अच्छी कान्ति वाले, हंस के समान श्वेतवर्ण वाले और शक्कर से भी अधिक माधुर्य वाले होते हैं।

प्रश्न कार्मण वर्गणा मूल में एक प्रकार की होती है या आठ प्रकार की होती है ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 497)

उ ार- धवला पुस्तक 14 के अनुसार कार्मण वर्गणा मूल में ही आठ स्वभाव वाली होती है। उनमें वर्गणा की अपेक्षा भेद नहीं है। स्वभाव की अपेक्षा भेद है। जो कार्मण वर्गणा ज्ञानावरण रूप परिणमन करने की योग्यता रखती है वही ज्ञानावरण के बन्ध योग्य निमिžों के मिलने पर ज्ञानावरण रूप परिणमन कर जाती है। जैसे औदारिकरूप आहार वर्गणाओं से औदारिक शरीर बनता है उसी तरह ज्ञानावरण रूप परिणमन के योग्य वर्गणाओं से ज्ञानावरण कर्म बँधता है। यह आठों प्रकार की कार्मण वर्गणायें पृथक्-पृथक् नहीं रहती, मिश्रित होकर रहती हैं तथा स पूर्ण लोक में व्याप्त हैं। इनमें आयु कर्म रूप परिणमन करने वाली सबसे कम, उससे गोत्र और नामकर्म वाली अधिक हैं। उससे ज्ञानावरण-दर्शनावरण और अन्तराय रूप परिणमन करने वाली और अधिक हैं, उससे अधिक मोहनीय कर्म योग्य वर्गणायें हैं और सबसे अधिक वेदनीय कर्मयोग्य वर्गणायें हैं। जीव प्रति समय जो समयप्रबद्ध मात्र कर्मवर्गणायें ग्रहण करता है उसमें उपर्युक्त अनुपात सदैव पाया जाता है।

प्रश्न प्रत्येक समय में कोई जीव समान सं या में कर्म वर्गणा ग्रहण करता है या कम-ज्यादा ?
(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 497)

उ ार- यदि मन-वचन-काय की क्रिया के कारण आत्मप्रदेशों में परिस्पन्दनरूप योग अधिक होता है तो अधिक वर्गणायें ग्रहण होती हैं और जब योग कम होता है तब कम वर्गणायें ग्रहण होती हैं परन्तु दोनों ही परिस्थितियों में आने वाली वर्गणाओं की सं या समयप्रबद्ध कही जाती है। यह समयप्रबद्ध छोटा-बड़ा अनेक प्रकार का होता है परन्तु योग कम हो या ज्यादा, आने वाली वर्गणा में अनुपात उपर्युक्त प्रकार ही होता है।

प्रश्न महास्कन्ध □ या है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 498)*

उ□ ार- पुद्गल की 23 वर्गणाओं में अन्तिम वर्गणा महास्कन्ध वर्गणा हैं। लोक के सभी पुद्गलों का नाम महास्कन्ध नहीं है। परन्तु विशिष्ट पुद्गल परमाणुओं से महास्कन्ध बना है। यह अकृत्रिम और अनादिअनन्त है। इसका क्षेत्र कुछ कम स पूर्ण लोक है।

प्रश्न €या कार्मणवर्गणा आहारवर्गणा रूप हो सकती है अर्थात् एक वर्गणा अन्य वर्गणारूप परिणमन कर सकती है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 499)*

उ□ ार- 23 वर्गणाओं की सूची में उǯारोǯार वर्गणाओं में अधिक-अधिक अणु होते हैं। अनन्त अणु वर्गणा में एक अणु और मिल जाने पर जघन्य आहार वर्गणा बनती है। उसके योग्य अधिकतम वर्गणाओं में एक अणु और मिल जाने पर छठे न बर की अग्राह्य वर्गणा बन जाती है। उस अग्राह्य वर्गणा में और अणु मिलने पर जब उन अणुओं की सं या जघन्य तैजस वर्गणा प्रमाण हो जाती है तो वह वर्गणा तैजस वर्गणा कहलाती है और वही वर्गणा और अधिक अणु मिल जाने पर आगे जाकर भाषा वर्गणा बनती है। और अधिक अणु मिलने पर मनोवर्गणा बन जाती हैं। इन्हीं मनोवर्गणाओं में से जब वर्गों (अणु) की सं या घटने लग जाये तब यही वर्गणा भाषा वर्गणा बन जाती है और वर्गों की सं या घटने पर तैजस वर्गणा बन जाती है। और वर्गों के पृथक होने पर आहार वर्गणा बन जाती है। इस तरह एक वर्गणा अन्य वर्गणारूप परिणमन कर सकती है। आहार, तैजस, भाषा, मनो तथा कार्मण ये सभी उǯारोǯार अधिक-अधिक वर्ग वाली वर्गणायें हैं।

प्रश्न स्वर्ण चाँदी रूप हो सकता है या नहीं ?

उ□ ार- सोने के परमाणु स्वर्ण से पृथक् होकर चाँदी के स्कन्ध में मिल जाने पर चाँदीरूप परिणत हो सकते हैं। किमियागिरि द्वारा या पारस पत्थर द्वारा लोहे से सोना बनाया जाता है। *समयसार गाथा 232* के अनुसार नागफणी, थूहर की जड़, हथिनी का मूत्र, इनको गर्भनाग से मिश्रित करके लोहे की भस्त्रिका से धोंकने पर और अग्नि में तपाने पर शुद्ध स्वर्ण बन जाता है। इसी प्रकार विभिन्न निमिǯों के मिलने पर पुद्गलों में परिणमन होता है।

शरीर

प्रश्न आगमानुसार लोक में औदारिक शरीरों की सं या असं यात ही है जबकि जीवों की सं या अनन्तानन्त है। ऐसा □ यों ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 501)*

उ□ ार- स पूर्ण लोक में जितने भी जीव हैं उनमें साधारण अर्थात् निगोदिया जीवों को छोड़कर शेष जीवों की सं या असं यात है। ये निगोदिया जीव सं या में अनन्तानन्त होते हुये भी असं यात औदारिक शरीर में निवास करते हैं। एक साधारण शरीर में अनन्तानन्त निगोदिया जीव पाये जाते हैं। इस प्रकार अनन्तानन्त जीव असं यात शरीरों में रह जाते हैं।

प्रश्न या कोई ऐसे भी जीव हैं जो निरन्तर औदारिक शरीर नामकर्म का ही बन्ध करते हों ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 501)*

उ र- समस्त देव और नारकी तथा सभी पञ्चस्थावर और विकलेन्द्रिय जीव प्रतिसमय औदारिक शरीर नामकर्म का ही बन्ध करते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य, देवायु तथा नरकायु बाँधने में समर्थ हैं। इसलिए उनके जब-जब नरकगति और देवगति का बन्ध होता है, तब-तब वैक्रियिक शरीर नामकर्म का बन्ध होता है। तथा मनुष्य गति एवं तिर्यञ्चगति के बन्धकाल में औदारिक शरीर नामकर्म का बन्ध होता है।

प्रश्न तीर्थङ्कर भगवान् के शरीर में सप्त धातु होती है या नहीं ? क्योंकि उनके सन्तानोत्पत्ति तो देखी जाती है। अतः हमें या मानना चाहिये ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 501)*

उ र- तीर्थङ्करों के गृहस्थ अवस्था में औदारिक शरीर होता है। उनका नीहार नहीं होता परन्तु शरीर में सप्तधातु होती है। अन्यथा मोक्ष जाने हेतु वज्रर्षभनाराच संहनन के अभाव का प्रसङ्ग आ जायेगा। उनके शरीर में गृहस्थावस्था में सन्तानोत्पत्ति मानने में कोई बाधा नहीं आती। केवलज्ञान होने के बाद उनका शरीर परमौदारिक हो जाता है। यह शरीर सप्तधातुओं से रहित नहीं हो जाता, अपितु शरीर में निगोदिया जीव और अन्य जीवों का अभाव तथा सप्त कुधातु से रहित हो जाता है। ऐसे ही शरीर को परमौदारिक कहा जाता है।

प्रश्न किन शरीरों में सप्तधातु होती हैं और किनमें नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 502)*

उ र- एकेन्द्रिय जीवों के शरीर में धातु नहीं होती। द्वीन्द्रियादि तिर्यञ्चों तथा मनुष्य के शरीर में धातु पायी जाती हैं। देवों के वैक्रियिक शरीर में सप्तधातु नहीं होती जबकि नारकियों का शरीर वैक्रियिक होते हुये ी सड़े हुए पीप व हाड़, मांस आदि से भरा रहता है जिसके कारण वह अत्यन्त दुर्गन्धित होता है। निगोदिया जीवों के भी धातु नहीं होतीं। मनुष्य के द्वारा जो वैक्रियिक शरीर बनाये जाते हैं वह औदारिक वैक्रियिक हैं अतः उनमें सप्तधातु होती हैं और जो देवों द्वारा पृथक् वैक्रियिक शरीर बनाये जाते हैं उनमें धातु नहीं पायी जाती हैं।

प्रश्न जो नोकर्म वर्गणायें हम प्रतिसमय ग्रहण करते हैं, वह कितने समय तक हमारी आत्मा के साथ बन्धी रहती हैं ? और उनकी स्थिति कितनी है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 502)*

उ र- प्रत्येक जीव अपने शरीर योग्य समयप्रबद्ध मात्र नोकर्म वर्गणाओं को ग्रहण करता रहता है। उसमें से कुछ नोकर्म वर्गणायें दूसरे समय में ही और कुछ नोकर्म वर्गणायें जीवन के अगले समयों में निर्जीण होती हैं। उस जीव की आयु पर्यन्त उस ग्रहीत समयप्रबद्ध के निषेक बन जाते हैं। आयु पर्यन्त प्रतिसमय एक-एक निषेक की निर्जरा होती रहती है। आयु समाप्त होने पर समस्त ग्रहीत नोकर्म वर्गणा से स बन्ध छूट जाता है।

प्रश्न वैक्रियिक शरीर इन्द्रियों के द्वारा जाना जाता है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 502)*

उ र- औदारिक शरीर से वैक्रियिक शरीर सूक्ष्म है। सूक्ष्म होने के कारण मनुष्यों के द्वारा इन्द्रियगोचर होने का कोई नियम नहीं है। देवता चाहें तो अपने शरीर को मनुष्यों के देखने योग्य बना सकते हैं या नहीं देखने योग्य भी

रख सकते हैं। जैसे- मेंढ़क का जीव जब स्वर्ग में देव बना और तुरन्त ही भगवान् महावीर के समवसरण में आ गया था। उसको अपनी आँखों से देखकर ही तो राजा श्रेणिक ने गौतम स्वामी से प्रश्न किया था कि यह जो अभी-अभी देव आये हैं वे कौन हैं? इत्यादि।

प्रश्न विग्रहगति में तैजस शरीर नामकर्म का या कार्य है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 503)*

उ ार- विग्रहगति में प्रतिसमय जो तैजस वर्गणाएँ आती हैं उनको तैजस शरीररूप परिणमन करना तैजस शरीर नामकर्म का कार्य है योंकि *राजवार्तिक 8/22* के अनुसार जिसके उदय से शरीर की रचना होती है वह शरीर नामकर्म कहा जाता है। पर्याप्तावस्था में जिस कर्म के उदय से तैजस वर्गणा के स्कन्ध निस्सरणात्मक या अनिस्सरणात्मक अथवा प्रशस्त या अप्रशस्त तैजस शरीर के रूप में परिणत होते हैं वह तैजस शरीर नामकर्म का कार्य है।

प्रश्न शुभ तैजस और अशुभ तैजस शरीर में या अन्तर होता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 504)*

उ ार- तैजस शरीर दो प्रकार का है-

1. निस्सरणात्मक- जो शुभ और अशुभरूप से बाहर निकलता है।
2. अनिस्सरणात्मक- जो औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर में दीप्ति (चमक) का कारण होता है।

शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के शरीरों का विस्तार 12 योजन ल बा और 9 योजन चौड़ा है। अशुभ तैजस लाल वर्ण वाला, भूमि पर्वत आदि को जलाने में समर्थ, रुकावट रहित, रोषरूप ईधन वाला तथा बायें कन्धे से उत्पन्न होता है। इसका आकार बिलाव जैसा होता है। शुभ तैजस शरीर सफेद वर्ण वाला, प्राणियों की अनुक पा से उत्पन्न होने वाला, महामारी आदि रोग को शान्त करने वाला तथा दायें कन्धे से उत्पन्न होता है। दोनों का समय अन्तर्मुहूर्त मात्र है।

प्रश्न अशुभ तैजस का पुतला अग्नि जलाने के बाद जब लौटकर आता है तब उन मुनि को भी भस्म कर देता है या नहीं ?

उ ार- इस स बन्ध में लगभग सभी आचार्यों ने एक मत से लिखा है कि वह अशुभ तैजस का पुतला कार्य करने के उपरान्त उन मुनिराज को ी भस्म कर देता है। परन्तु *राजवार्तिककार* ने इस विषय में लिखा है कि यदि लौटकर अधिक समय रुक जाये तो उन मुनिराज को भी भस्म कर देता है। इससे यह अर्थ निकलता है कि इस परिस्थिति में यदि वह पुतला अधिक समय तक न रुके तो उन मुनिराज को भस्म नहीं करेगा। इस प्रकार इस स बन्ध में दो मत प्राप्त होते हैं।

प्रश्न कार्मण शरीर की उत्पZा में कारण €या है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 504)*

उ ार- कार्मण शरीर की उत्पZा में मिथ्यादर्शन, अविरति आदि कारण हैं। उनसे ही कार्मण शरीर बनता है। यह कहना उचित नहीं है कि कार्मण शरीर का कोई निमिŽा नहीं है। €योंकि जिसका कोई कारण नहीं होता वह

पदार्थ नित्य माना जाता है। यदि कार्मण शरीर को निष्कारण मान लिया जाये तो उसका कभी विनाश नहीं होगा और आत्मा की कभी मुक्ति नहीं होगी। अत: कार्मण शरीर की उत्पत्ति में मिथ्यादर्शन, अविरति आदि कारण कहे गये हैं।

प्रश्न €या पाँचों शरीर के योग्य वर्गणाओं को नोकर्म कहते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 504)*

उ□ ार– औदारिक, वैक्रियिक और आहारक शरीर से युक्त नोकर्मवर्गणाओं को नोकर्म कहते हैं। तैजस शरीर और कार्मण शरीर को नोकर्म नहीं कहते। €योंकि तैजस शरीर, तैजस वर्गणा से और कार्मण शरीर, कार्मण वर्गणा से बनता है। ये दोनों शरीर नोकर्म वर्गणा से नहीं बनते अत: इन दोनों को नोकर्म नहीं कहते हैं।

प्रश्न स्त्रियों में कितने संहनन पाये जाते हैं ?

उ□ ार– अढ़ाईद्वीप की समस्त कर्मभूमियों में जो स्त्रियाँ पायी जाती हैं, उनके अन्तिम तीन संहननों में से कोई एक संहनन पाया जाता है जबकि भोगभूमियों में स्त्रियों के मात्र प्रथम वज्रर्षभनाराचसंहनन ही होता है। चक्रवर्ती की पटरानी के भी वज्रर्षभनाराच संहनन नहीं होता है।

समुद्घात

प्रश्न शुभ लेश्याओं में भी वेदना, कषाय तथा मारणान्तिक समुद्घात संभव हैं या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 506)

उ□ ार– धवला पुस्तक 7 के अनुसार देवों में ये तीनों समुद्घात पाये जाते हैं। देवों के तीन शुभ लेश्या होती हैं अत: शुभ लेश्या में ये तीनों समुद्घात मानने में कोई आपि□ ा नहीं है।

प्रश्न मारणान्तिक समुद्घात €या है ? कितने जीव मारणान्तिक समुद्घात करते हैं और यह किन-किन गुणस्थानों में होता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 506)*

उ□ ार– वर्तमान शरीर को न छोड़कर, ऋजुगति अथवा विग्रहगति द्वारा, जीव को जहाँ उत्पन्न होना है उस क्षेत्र तक जाकर तिगुने विस्तार या अन्य प्रकार से अन्तर्मुहूर्त तक रहना मारणान्तिक समुद्घात है। इस समुद्घात में आकाश की श्रेणी के अनुसार ही आत्मप्रदेश गमन करते हैं और वे मूल शरीर व उत्पत्ति क्षेत्र तक बिछे रहते हैं। जीवों की सं या का बहुभाग मारणान्तिक समुद्घात करता है शेष नहीं करते। यह समुद्घात उन सभी गुणस्थानों में स भव है जिनमें मरण स भव होता है। अर्थात् 1 से 11 गुणस्थान तक (तीसरा गुणस्थान छोड़कर) सभी गुणस्थानों में मारणान्तिक समुद्घात हो सकता है। इस समुद्घात में आत्म प्रदेश एक ही दिशा में जाते हैं। जिन जीवों ने परभव की आयु का बन्ध कर लिया है उन्हीं जीवों के मारणान्तिक समुद्घात होता है। मरण से पूर्व आत्मा के समस्त प्रदेश मूल शरीर में लौटकर प्रवेश कर लें ऐसा नियम नहीं है €योंकि उत्पत्ति स्थान स्पर्श कर आत्मप्रदेशों के लौटकर आने से पूर्व भी मरण स भव है। ऐसी दशा में पहले गये हुये प्रदेश लौटकर नहीं आते। शेष बचे हुये प्रदेश उसी प्रकार उत्पत्तिस्थान पर पहुँच जाते हैं।

प्रश्न अशुभ तैजस समुद्घात में कषाय की तीव्रता होती है तो उन मुनिराज का गुणस्थान कौन सा होता होगा ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 509)*

उत्तर– तैजस समुद्घात चाहे शुभ हो या अशुभ, दोनों ही छठे गुणस्थान में होते हैं। ये मुनिराज भावलिङ्गी ही होते हैं, द्रव्यलिङ्गी नहीं। शुभ तैजस शरीर के लौटने पर मुनिराज का छठा गुणस्थान ही रहता है परन्तु अशुभ तैजस शरीर लौटे और उन मुनिराज के शरीर को भी भस्म कर दे, तो पुतले के लौटने तक उनका गुणस्थान छठा रहता है और पुतले के शरीर को भस्म कर देने के बाद पहला हो जाता है। प्रथमानुयोग के उदाहरणानुसार वे भस्म होने वाले मुनिराज नरक गति को ही जाते हैं।

प्रश्न मनुष्यों के द्वारा जब विक्रिया की जाती है तब उनके औदारिक शरीर नामकर्म का उदय है या वैक्रियिक शरीर नामकर्म का ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 510)*

उत्तर– *धवला पुस्तक 9* के अनुसार तिर्यञ्च व मनुष्यों के वैक्रियिक शरीर सम्भव नहीं क्योंकि इनके वैक्रियिक शरीर नामकर्म का उदय नहीं पाया जाता। किन्तु औदारिक शरीर विक्रियात्मक और अविक्रियात्मक के भेद से दो प्रकार का है। उनमें जो विक्रियात्मक औदारिक शरीर है उसी की विक्रिया देखी जाती है। *धवला पुस्तक 15* के अनुसार वैक्रियिक शरीर नामकर्म की उदीरणा (उदय) मनुष्य व तिर्यञ्चों के भी कही है। इन दोनों कथनों में यद्यपि कुछ विरोध दिखायी दे रहा है परन्तु ऐसा है नहीं। दोनों स्थानों पर अभिप्राय भिन्न–भिन्न है। जिस प्रकार देव और नारकियों के सदा वैक्रियिक शरीर रहता है उस तरह तिर्यञ्च और मनुष्य के नहीं होता। इसलिए तिर्यञ्च और मनुष्यों के वैक्रियिक शरीर का विधान नहीं किया है। किन्तु उसके द्वारा विक्रिया किये जाने पर वैक्रियिक शरीर नामकर्म की उदीरणा होने से उसका विधान कर दिया है। इसी अपेक्षा तत्त्वार्थसूत्र में **लब्धिप्रत्ययं च** के अनुसार मनुष्यों के भी वैक्रियिक शरीर कहा गया है। कोई भी पृथक विक्रिया अन्तर्मुहूर्त से ज्यादा नहीं रह पाती है। इस प्रकार मनुष्यों के द्वारा विक्रिया करते समय औदारिक शरीर नामकर्म का ही उदय रहता है।

प्रश्न सातों समुद्घातों में आत्मा के प्रदेश एक दिशा में जाते हैं या सर्वदिशाओं में ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 511)*

उत्तर– जैसे विग्रहगति में आत्मप्रदेश एक दिशा को ही जाते हैं उसी प्रकार आहारक और मारणान्तिक समुद्घात में तो आत्मप्रदेश एक ही दिशा में जाते हैं और वे मोड़ भी ले सकते हैं किन्तु अन्य पाँचों समुद्घातों में आत्मप्रदेशों का सब ओर प्रसार होता है।

प्रश्न किसी ग्रन्थ में केवली समुद्घात का काल आठ समय और किसी में सात समय बताया है। वास्तव में कितना समय लगता है? अन्य समुद्घातों का समय भी बतायें। *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 511)*

उत्तर– केवली समुद्घात में दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण = 4 समय। पाँचवें समय में पुनः प्रतर, छठवें में कपाट, तथा सातवें समय में दण्ड और आठवें समय में प्रवेश। इस तरह केवलीसमुद्घात में आठ समय लगते हैं।

जिन आचार्यों ने प्रवेश के समय को समुद्घात में नहीं माना, उनके अनुसार केवली समुद्घात का काल 7 समय माना है। सिर्फ इतना ही अन्तर है। अन्य सभी समुद्घातों में अन्तर्मुहूर्त काल लगता है।

प्रश्न तेरहवें गुणस्थान के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में तीन अघातिया कर्मों की स्थिति आयु कर्म के बराबर कब होती है तथा योग निरोध कब किया जाता है? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 511)*

उ□ ार- तेरहवें गुणस्थान के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में केवली समुद्घात के द्वारा तीन अघातिया कर्मों की स्थिति अन्तर्मुहूर्त हो जाती है (परन्तु आयु कर्म के बराबर नहीं)। केवली समुद्घात के अन्तर्मुहूर्त बाद योगनिरोध करते हैं। योगों का निरोध हो जाने पर और सूक्ष्म काययोग शेष रह जाने पर तीसरे शु□ लध्यान के द्वारा, आयु के अलावा तीन अघातिया कर्मों की स्थिति, आयु कर्म के समान हो जाती है और तदुपरान्त समस्त योगों का निरोध हो जाता है और वे अयोगकेवली हो जाते हैं। यदि कोई प्रश्न करे- तो फिर भगवान् आदिनाथ का योगनिरोधकाल 14 दिन □ यों कहा गया है ? इसका समाधान है कि जब स्थूलरूप से तीर्थङ्करों की दिव्यध्वनि बन्द हो जाती है और समवसरण को छोड़कर जहाँ से मोक्ष होना होता है वहाँ जाकर निश्चल-स्थिर हो जाते हैं। उस काल को योगनिरोध काल कहते हैं। यह स्थूल वर्णन है। सूक्ष्म वर्णन उपर्युक्त प्रकार है।

प्रश्न सभी केवली, केवलीसमुद्घात करते हैं या नहीं ? केवली समुद्घात किस कर्मोदय से होता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 512)*

उ□ ार- आगम में इस स बन्ध में दो मत हैं-

1. जिन जीवों को छह माह से अधिक आयु शेष रहने पर केवलज्ञान होता है उनके केवली समुद्घात होने का नियम नहीं है परन्तु जो जीव छह माह से कम आयु शेष रहने पर केवलज्ञान प्राप्त करते हैं उनके केवली समुद्घात होने का नियम है।
2. आचार्य वीरसेन महाराज उपर्युक्त नियम से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार सभी केवलियों के केवली समुद्घात होता है। केवली समुद्घात किस कर्म के उदय से होता है ? ऐसा किसी भी ग्रन्थ में देखने में नहीं आया।

प्रश्न केवली समुद्घात के समय आत्मप्रदेशों का शरीर से स बन्ध रहता है या नहीं? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 512)*

उ□ ार- धवला पुस्तक 2/660 के अनुसार केवली समुद्घात की लोकपूरण अवस्था में केवली के समस्त आत्मप्रदेश निकलकर सर्व लोकाकाश में फैल जाते हैं। इस समय आत्मा के मध्य के 8 प्रदेश भी सुमेरु की जड़ में जो स पूर्ण लोक के मध्य के आठ प्रदेश हैं उन पर जाकर स्थित हो जाते हैं। ऐसा स्थिरपना प्रतर समुद्घात में भी रहता है। अर्थात् प्रतर-लोकपूरण-प्रतर इन तीन समयों में आत्मा के मध्य के आठ प्रदेश वहाँ स्थिर होते हैं। लोकपूरण अवस्था में मूल शरीर से स बन्ध नहीं रहता है। यद्यपि केवली समुद्घात में लोकपूरण अवस्था में समस्त आत्मप्रदेश मूल शरीर से निकलकर स पूर्ण लोकाकाश में फैल जाते हैं तथापि वह मूलशरीर लोकाकाश के जितने प्रदेशों में स्थित है उतने आत्म प्रदेश उस शरीर के साथ एक क्षेत्रावगाहरूप होने के कारण उस शरीर में रहते हैं।

प्रश्न केवली समुद्घात के समय अपर्याप्त अवस्था में अथवा कार्मण काययोग अवस्था में मूलशरीर के साथ कोई स बन्ध नहीं रहता फिर कायबल प्राण कैसे बताया गया है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 513)

उ ार– केवली समुद्घात में योग इस प्रकार रहते हैं–

1. दण्ड समुद्घात में	–	औदारिककाय योग	–	पर्याप्तक
2. कपाट समुद्घात में	–	औदारिकमिश्रकाय योग	–	निवृत्यपर्याप्तक
3. प्रतर समुद्घात में	–	कार्मण काय योग	–	अपर्याप्तक
4. लोकपूरण समुद्घात में	–	कार्मण काय योग	–	अपर्याप्तक

कार्मण काययोग के समयों में केवली का कार्मण शरीर के साथ स बन्ध तो बना ही रहता है इसलिए कार्मण काययोग तथा कायबल और आयु ये दो प्राण कहे गये हैं। यदि कायबल प्राण केवली समुद्घात के समय न माना जाये तो समुद्घात काल में अयोगी बनने का प्रसङ्ग बन जायेगा, जो आगम विरुद्ध है। योंकि तेरहवें गुणस्थान के अन्तिम समय तक शरीर नामकर्म का उदय तथा वर्गणाओं का ग्रहण है अत: योग है। जैसे केवली समुद्घात के प्रथम चार समयों में योग कहे गये हैं उसी प्रकार अगले समयों में भी मान लेने चाहिये।

प्रश्न मनुष्यों के आत्मप्रदेश किन-किन अवस्थाओं में ढाई द्वीप से बाहर भी पाये जाते हैं ?

उ ार– मनुष्यों के आत्म प्रदेश मानुषोŽार पर्वत से बाहर निम्न अवस्थाओं में ही पाये जाते हैं–

1. मारणान्तिक समुद्घात करने पर अपने उत्पŽा स्थान को स्पर्श करते समय।
2. केवली समुद्घात के समय।
3. जब कोई तीनों लोकों में कहीं भी विद्यमान जीव मनुष्यों में उत्पन्न होने के लिए आ रहा होता हो तब उपपाद की अपेक्षा।

उपर्युक्त तीनों अवस्थाओं के अलावा कोई भी ऋद्धिधारी मुनिमहाराज, विद्याधर मनुष्य, कोई भी आहारक शरीर या मनुष्यकृत विक्रिया में, ढाई द्वीप के बाहर मनुष्य के आत्मप्रदेश गमन नहीं करते हैं।

अकालमरण

प्रश्न चरमशरीरी जीवों का अकालमरण होता है या नहीं? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 514)*

उ ार– चरमशरीरी जीवों के शरीर छोड़ने को पण्डित-पण्डित मरण कहते हैं। चरमशरीरी जीवों के अकालमरण के स बन्ध में विभिन्न आचार्यों के विभिन्न मत हैं जो इस प्रकार हैं–

1. **जयधवला पुस्तक** 1/361 पर कहा है कि चरमशरीरी जीव अपमृत्यु से रहित हैं।

2. **मोक्षशास्त्र** 2 / 53 में कहा है कि चरमोŽाम देह वाले जीव का अकाल मरण नहीं होता है। सर्वार्थसिद्धि में कहा है कि सूत्र में जो उŽाम विशेषण दिया गया है वह चरमशरीरियों के उत्कृष्टपने को दिखलाने के लिए दिया है। इसका और कोई विशेष अर्थ नहीं है। चरमो ाम देह के स्थान पर **चरमदेह** पाठ भी मिलता है। अर्थात्

पूज्यपाद महाराज के अनुसार चरमदेह पाठ स्वीकार होने से उनका अकाल मरण नहीं होता।

3. आचार्य प्रभाचन्द्र विरचित त वार्थवृ ा में इस सूत्र की टीकानुसार– चरमशरीरी के साथ उ ाम विशेषण लगने से तीर्थङ्कर का शरीर ग्रहण किया जाता है। €योंकि चरमशरीरी गुरुद ा, पाण्डव आदि का अग्नि आदि के द्वारा अकालमरण देखा जाता है।

4. श्रुतसागर रचित त वार्थवृ टीकानुसार– चरमशरीरी गुरुद ा तथा पाण्डव आदि का मोक्ष, उपसर्ग के समय होने से उनका अकालमरण स्वीकार किया है। उन्होंने मात्र तीर्थङ्कर की अपमृत्यु नहीं मानी है।

5. राजवार्तिककार के अनुसार– इन्होंने ी सर्वार्थसिद्धि के अनुसार ही कहा है।

उपर्युक्त सभी मतों में सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक तथा जयधवला जी में चरमशरीरियों का अकालमरण नहीं कहा गया है। ये तीनों ही प्राचीन तथा महान् आचार्य थे। अत: इनका कथन 'चरमशरीरियों का अकालमरण नहीं होता' विशेष माननीय है।

प्रश्न परभव की आयु का बन्ध होने पर अकालमरण होता है या नहीं ? कृष्ण और पाण्डवों का अकालमरण कहें या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 515)*

उ ार– श्री जयधवला पुस्तक 10 / 237 के अनुसार– परभव की आयु के बँधने के पश्चात् भुज्यमान आयु का कदलीघात (अकालमरण) नहीं होता है। किन्तु वह जितनी आयु थी उतनी का ही वेदन करता है। इस कथनानुसार परभव स बन्धी आयु बाँध लेने वाले जीवों का अकालमरण नहीं होता। इसलिए कृष्ण, श्रेणिक, पाण्डव आदि का अकालमरण नहीं माना जाता है। पाण्डवों की यद्यपि उपसर्ग में ही मुक्ति हो गयी थी अत: उनके पण्डित–पण्डित मरण को अकालमरण नहीं कहा जा सकता। €योंकि वे चरमशरीरी थे। किसी भी मुनि का यदि उपसर्ग के दौरान शरीर छूटता है तो हमें तो वह अकालमरण सा लगता है। परन्तु वह अकालमरण है या नहीं यह हमारे ज्ञान का विषय नहीं है।

प्रश्न आत्महत्या करने वालों को नरक ही मिलता है या स्वर्ग भी मिल सकता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 518)

उ ार– जिन जीवों का देवायु बन्ध पूर्व में हो चुका है और वे पहाड़ से गिरकर, फाँसी लगाकर, विष खाकर आदि मरण करते हैं तो उनके तीन अशुभ लेश्यायें होने से, पूर्वबध्य देवायु के कारण उनका भवनत्रिक में जन्म होता है। वराङ्गचरित्रानुसार यदि कोई महिला दुश्मनों के द्वारा युद्ध में पति का मरण होने पर यदि अपने शीलरक्षार्थ आत्महत्या करती है तो भी उसका जन्म देवों में स भव है। अत: आत्महत्या करने वालों का जन्म नरक में ही होता है ऐसा एकान्त मानना उचित नहीं है।

प्रश्न €या सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों का भी अकाल मरण होता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 519)*

उ ार– श्रीधवला पुस्तक 14/356 के अनुसार सूक्ष्म एकेन्द्रियों का भी अकालमरण स भव है। भावपाहुड गाथा 25 के अनुसार भय तथा सं€लेश से अकालमरण हो जाता है। त वार्थसूत्र 2/53 के अनुसार भी उपपाद

जन्म वाले, चरमशरीरी एवं भोगभूमियाँ जीवों का अकालमरण नहीं कहा है। शेष जीवों का अकालमरण संभव है। इससे भी ध्वनित होता है कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों का अकालमरण स भव है। उनका अकालमरण भय एवं सं□ लेश के द्वारा मानना चाहिये।

प्रश्न निश्चयनय से अकालमरण नहीं होता। फिर अकालमरण €यों कहा जाता है ? सभी जीवों का मरण भगवान् के ज्ञानानुसार ही तो होता होगा ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 519)*

उ□ ार- जन्म और मरण पर्यायापेक्षया होते हैं। निश्चय नय का विषय द्रव्य है न कि पर्याय। इसलिए कालमरण या अकालमरण निश्चयनय से नहीं होते। जिस जीव को आयु तो अधिक मिली हो और विभिन्न बाह्य निमिž। मिलने पर पूर्ण आयु भोगने से पूर्व ही मरण हो जाये उसे अकालमरण कहते हैं। इस परिभाषा के अनुसार अकालमरण को केवली भगवान् भी अकालमरण के रूप में जानते हैं। इसलिए केवली के द्वारा भी अकालमरण का अस्तित्व है।

कुल, योनि, जन्म

प्रश्न मनुष्यों के 14 लाख योनियाँ तथा 12 ला ा कोटि कुल बताये हैं। इनको विस्तार से समझायें।

उ□ ार- उत्पžि स्थान को योनि कहते हैं और उस जीव के योग्य नोकर्मवर्गणाओं के भेदों को कोटि कहते हैं। मनुष्यों के या अन्य जीवों के जितने कुलों के भेद बताये हैं उनका विवरण वर्तमान में उपलŽध नहीं है। अत: शास्त्रानुसार इनको मानना चाहिये।

प्रश्न तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म जरायुज होता है या पोत ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 540)*

उ□ ार- तीर्थङ्करों का जन्म जरायुज ही होता है न कि पोत। राजवार्तिक के अनुसार जरायुज जन्म वालों को ही मोक्ष की प्राप्ति स भव है। अत: वे नाल सहित ही जन्म लेते हैं परन्तु माता के गर्भ में वे अत्यन्त निर्मल रहते हैं। उत्पžि के समय भी वे निर्मल रहते हैं।

वे गर्भ में कैसे रहते हैं ? इस स बन्ध में कई मत हैं-

1. श्रुतसागर आचार्य द्वारा लिखित जिनसहस्रनाम की टीका में 'पदमभू' नाम की व्या या करते हुये कहा है कि गर्भकाल में आपके दिव्यपुण्य के प्रभाव से माता के उदर में एक कमल की रचना होती है। उसकी कर्णिका पर एक सिंहासन होता है। उस पर अवस्थित गर्भरूप भगवान् वृद्धि को प्राप्त होते हैं अत: आप पदमभू हैं।
2. महापुराण 12/264 में कहा गया है कि तीन ज्ञानों से विशुद्ध अन्त:करण धारण करने वाले तीर्थङ्कर ऋषभदेव माता के गर्भ में इस प्रकार सुशोभित होते थे जैसे स्फटिक मणि से बने हुये घर के बीच में रखा हुआ निश्चल दीपक सुशोभित होता है।
3. छप्पन कुमारी देवियों में से कुछ देवियाँ माता के गर्भ शोधन का कार्य करती हैं। शायद उसी कारण से वे गर्भ में निर्मल रहते हैं।

गत्यागति

प्रश्न सप्तम नरक से निकलकर, तिर्यञ्च बनकर पुन: सातवें नरक में जा सकता है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 541)

उ ार– सातवें नरक से निकला हुआ जीव कर्मभूमि का गर्भज तिर्यञ्च बनता है और वह मरण करके पाँचवें नरक तक जा सकता है, आगे नहीं। यदि कोई सप्तम नरक से निकलकर गर्भज संज्ञी पर्याप्तक तिर्यञ्च बने, वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहकर स मूर्च्छन मत्स्यों में उत्पन्न हो तो पर्याप्ति पूर्ण करके वह जीव अन्तर्मुहूर्त में मरण करके पुन: सातवें नरक में जा सकता है। इस प्रकार सातवें नरक से निकलकर एक जीव अन्तर्मुहूर्त पश्चात् पुन: सातवें नरक में पहुँच सकता है।

प्रश्न कौनसा जीव मरकर कहाँ उत्पन्न हो सकता है ? अर्थात् जीवों की गति अगति बतायें।

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 542)

उ ार–

1. सप्तम नरक के नारकी = मध्यलोक में कर्मभूमि स बन्धी पंचेन्द्रिय ग िज पर्याप्त तिर्यञ्च।
2. प्रथम से छठे नरक के नारकी = मध्यलोक के कर्मभूमि स बन्धी मनुष्य या संज्ञी गर्भज पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च
3. पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, विकलेन्द्रिय जीव एवं निगोदिया जीव = मनुष्य अथवा तिर्यञ्च
4. वायुकायिक और अग्निकायिक = मात्र तिर्यञ्च
5. असैनी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च = प्रथम नरक के प्रथम पटल में, भवनवासी, व्यन्तर तथा कर्मभूमिज मनुष्य एवं तिर्यञ्च
6. सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च = प्रथम संहनन वाला मच्छ सप्तम नरक तक, सिंह पंचम नरक, सर्प चौथे, पक्षी तीसरे, सरीसृप गिरगिट आदि दूसरे नरक तथा सभी तिर्यञ्च पहले नरक तक। सभी तिर्यञ्चों में (कर्मभूमि और भोगभूमि दोनों में) कर्मभूमि और भोगभूमि के मनुष्यों में, ऊपर 12 वें स्वर्ग तक। यदि स य€त्वी और व्रती हो तो 16 वें स्वर्ग तक।
7. मनुष्य = सभी नरकों, तिर्यञ्चों, मनुष्य और देवों में। मुक्ति भी प्राप्त कर सकते हैं।
8. भवनत्रिक व 1व2 स्वर्ग के देव = कर्मभूमिज मनुष्य एवं एकेन्द्रिय तक, सभी तिर्यञ्चों में (विकलेन्द्रिय में नहीं)
9. 3–12 स्वर्ग के देव = कर्मभूमिज मनुष्य एवं पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में
10. 13 वें स्वर्ग से सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त देव =कर्मभूमिज मनुष्य ही बनते हैं।
11. व्रती मनुष्य एवं तिर्यञ्च मात्र वैमानिक देव बनते हैं।

प्रश्न नरक से निकले हुए जीवों के कौन-कौन से गुणस्थान स भव हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 543)

उ ार-

1. सप्तम नरक से निकले हुये जीव पशु पर्याय में मात्र मिथ्यात्वी ही होते हैं परन्तु तिलोयपण्णZ्ा अनुसार किन्ही विरले जीवों के स य€त्व उत्पZ्ा सं ाव है।
2. छठवें नरक से निकले जीव स यग्दृष्टि बन सकते हैं।
3. पाँचवें नरक से निकले जीव संयम धारण कर सकते हैं।
4. चतुर्थ नरक से निकले जीव मुक्ति भी प्राप्त कर सकते हैं।
5. प्रथम से तृतीय नरक तक के जीव तीर्थङ्कर भी बन सकते हैं।
6. नरक या तिर्यञ्चगति से आया हुआ जीव चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण और बलभद्र नहीं बनता।

प्रश्न पञ्चमकाल में मनुष्य का गमन स्वर्ग और नरक में कहाँ तक स भव है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 545)

उ ार- पञ्चमकाल में मात्र तीन ही संहनन होते हैं। असंप्राप्तासृपाटिका संहनन वाला जीव आठवें स्वर्ग तक, कीलक वाला बारहवें स्वर्ग तक, अर्धनाराच संहनन वाला सोलहवें स्वर्ग तक उत्पन्न हो सकता है। छहों संहनन वाले जीव तीसरे नरक तक, सृपाटिका संहनन से रहित पाँचों संहनन वाले पञ्चम नरक तक तथा सृपाटिका व कीलक संहनन को छोड़कर शेष चार संहनन वाले छठे नरक तक और प्रथम संहनन वाले जीव सप्तम नरक तक जाते हैं। इस नियमानुसार तीन हीन संहनन वाले जीव छठे नरक तक और ऊपर सोलहवें स्वर्ग तक अपने-अपने संहनन के अनुसार जा सकते हैं।

प्रश्न स यग्दृष्टि जीव की उत्पZ्ा कहाँ-कहाँ होती है ? यदि उन्होंने स य€त्व होने से पूर्व आयुबन्ध न किया हो तो ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 546)

उ ार- 1. प्रथम नरक से षष्ठ नरक तक नारकी स य€त्व सहित मरण कर कर्मभूमि के मनुष्य ही बनते हैं। सप्तम नरक से जीव स य€त्व सहित नहीं निकलता।

2. सैनी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च स य€त्व सहित मरण कर वैमानिक देव ही बनते हैं। स यग्दृष्टि मनुष्य भी मरकर वैमानिक देव ही बनते हैं।

3. स यग्दृष्टि देव मरकर कर्मभूमि के मनुष्य ही बनते हैं।

प्रश्न €या नित्यनिगोद से निकलकर मनुष्य पर्याय प्राप्त कर जीव मोक्ष जा सकता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 546)

उŽार- नित्य निगोदिया जीवों में से सूक्ष्म निगोदिया जीव मरण करके मनुष्य बन सकता है और संयम तक धारण कर सकता है परन्तु उसी भव में मोक्ष नहीं जा सकता। बादर निगोदिया जीव मरण कर अगले भव में मनुष्य बनकर मोक्ष भी प्राप्त कर सकता है। जैसे भरत चक्रवर्ती के 923 पुत्र।

प्रश्न त्रेसठ शलाका पुरुष कौन होते हैं और ये मरकर कहाँ–कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 551)

उ ार– पूर्व भव में मनुष्य या तिर्यञ्च, नीचे की चार पृथ्वियों के नारकी तथा ावनत्रिक देव मरकर 63 शलाका पुरुष नहीं होते। प्रथम तीन पृथ्वियों के नारकी, तीर्थङ्कर तो बन सकते हैं परन्तु अन्य शलाका पुरुष नहीं हो सकते। वैमानिक देव 63 शलाका पुरुष हो सकते हैं।

सभी तीर्थङ्कर मोक्ष प्राप्त करते हैं। अन्य शलाका पुरुषों में कोई नरक या स्वर्ग जा सकते हैं। नारायण व प्रतिनारायण मरकर नियम से नरक में जाते हैं। बलभद्र व चक्रवर्ती मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हैं। बलभद्र नरक नहीं जाते।

प्रश्न भरतक्षेत्र का मनुष्य किस भाव से विदेह क्षेत्र में मनुष्य बन सकता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 552)

उ ार– स यग्दृष्टि मनुष्य मनुष्यायु का बन्ध नहीं करता है। मात्र देवायु का बन्ध करता है अत: भरत क्षेत्र का मनुष्य मिथ्यात्व के साथ ही अन्य कर्मभूमि का मनुष्य अर्थात् विदेहक्षेत्र का मनुष्य बन सकता है। यदि किसी जीव ने मिथ्यात्व अवस्था में मनुष्य आयु का बन्ध कर लिया हो और वह स य€त्व सहित मरण करे तो भोगभूमि में ही जन्म लेता है। इसी प्रकार विदेह क्षेत्र का स यग्दृष्टि मरण करके भरतक्षेत्र का मनुष्य नहीं बनता। पञ्चमकाल में उत्पन्न होने वाले सभी मनुष्य उत्पZ्ा के समय मिथ्यादृष्टि ही होते हैं।

प्रश्न अभव्य और द्रव्यलिङ्गी मुनि स्वर्गों में कहाँ तक उत्पन्न हो सकते हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 555)

उ ार– भव परिवर्तन के अनुसार प्रत्येक जीव को नौवें ग्रैवेयक की 31 सागर तक की आयु में जन्म लेना पड़ता है। तदनुसार अभव्य भी नौवें ग्रैवेयक में 31 सागर आयु वाला अहमिन्द्र बन सकता है। सामान्य मिथ्यादृष्टि मरकर बारहवें स्वर्ग से ऊपर उत्पन्न नहीं होते। किन्तु यदि वह मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिङ्गी मुनि है तो नौवें ग्रैवेयक तक उत्पन्न हो सकते हैं। असंयत स यग्दृष्टि जीव की उत्पZ्ा सोलहवें स्वर्ग तक और भावलिङ्गी साधुओं की उत्पZ्ा सर्वार्थसिद्धि विमान तक संभव है। इनको संहनन के अनुसार लगा लेना चाहिये।

प्रश्न लौकान्तिक देवों में कौन जीव जन्म ले सकते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 556)*

उ ार– तिलोयपण्णZ्ा 8/ 646/ 47 के अनुसार अत्यन्त वैरागी संयमी मुनिमहाराज, जो परम समता परिणामी हों वे ही लौकान्तिक देव बनते हैं। परन्तु द्रव्यसंग्रह और उZ्ारपुराण के अनुसार श्रावक ी लौकान्तिक देव बन सकता है।

प्रश्न या चक्रवर्ती की पटरानी नियम से नरक जाती है ? ऐसा सुनने में आता है।

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 556)

उ ार- चक्रवर्ती की पटरानी, नरक में ही जाये ऐसा कोई नियम नहीं है। अपने परिणामों के अनुसार वह चारों गतियों में जा सकती है। किसी ी शास्त्र में चक्रवर्ती की पटरानी को नरकगामिनी नहीं कहा है। सिद्धान्त तो यह है कि दुर्गति को जाने वाले चक्रवर्ती की पटरानी दुर्गति को जाती है तथा स्वर्ग व मोक्ष को जाने वाले चक्रवर्ती की पटरानी स्वर्ग ही जाती है। यदि नरक जाने का नियम मान लें तो चक्रवर्ती तीर्थङ्कर की पटरानी को भी नरक जाना होगा जो सर्वथा अनुचित ही है।

प्रश्न लेच्छखण्ड में उत्पन्न मनुष्य मुनि बन सकता है या नहीं ? मोक्ष जा सकता है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 557)

उ ार- लZिधसार गाथा 249 के अनुसार लेच्छखण्ड में उत्पन्न मनुष्य, जिनका नियम से प्रथम गुणस्थान ही होता है, यदि आर्यखण्ड में आ जाये तो सकल संयम धारण कर सकते हैं अर्थात् मुनिपद धारण कर सकते हैं। परन्तु उनके परिणामों में इतनी विशुद्धता नहीं आ पाती कि वह उसी भव में मोक्ष जा सकें। किन्तु लेच्छखण्ड में उत्पन्न किसी कन्या का चक्रवर्ती से विवाह हो जाये तो उससे उत्पन्न संतान को मोक्ष जाने में कोई बाधा नहीं है €योंकि वह आर्यखण्ड में उत्पन्न होने से आर्य है न कि लेच्छ।

प्रश्न किसी जीव ने ल ध्यपर्याप्तक मनुष्य की आयु का बन्ध किया। या बाद में दान देने के प्रभाव से वह भोगभूमि में जा सकता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 559)*

उ ार- ल ध्यपर्याप्तक मनुष्य की आयु का बन्ध करके दान देने पर वह अन्य अपकर्ष में एक पूर्वकोटि अधिक की आयु का बन्ध करके भोगभूमि में उत्पन्न हो सकता है अथवा असंक्षेपाद्धा काल में अधिक मनुष्यस्थिति की आयु का बन्ध करके ोगभूमि में जा सकता है।

प्रश्न नरकायु का बन्ध करके जिस जीव ने सोलहकारण भावना भाकर तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध कर लिया हो, वह कौन से नरक तक जा सकता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 559)*

उ ार- नरकगति में एक जीव की अपेक्षा तीर्थङ्कर प्रकृति का जघन्य बन्धकाल 84 हजार वर्ष और उत्कृष्ट साधिक तीन सागर आयु प्राप्त होती है अर्थात् तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध करने वाले जीव को कम से कम 84 हजार वर्ष और अधिक से अधिक साधिक तीन सागर आयु प्राप्त होती है। साधिक तीन सागर आयु तीसरे नरक में ही स भव है, वह भी ऊपर के पटलों में, जहाँ तक कापोत लेश्या पायी जाती है। इस प्रकार तीर्थङ्कर प्रकृति का बन्ध करने वाले जीव तीसरे नरक तक जन्म लेते हैं जैसे श्रीकृष्ण ने तीसरे नरक में जन्म लिया।

प्रश्न सर्वार्थसिद्धि से आकर मनुष्य जन्म लेने वाले जीवों के अवधिज्ञान साथ आने का नियम है या नहीं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 560)*

उ ार- सर्वार्थसिद्धि से मनुष्य पर्याय में उत्पन्न होने वाले जीवों के श्री धवला पुस्तक 6/ 500 के अनुसार अवधिज्ञान नियम से पाया जाता है। जैसे भरत और बाहुबली सर्वार्थसिद्धि से आये थे। उनके जन्म से ही अवधिज्ञान था।

प्रश्न जीवों का उत्पZा स्थान कैसे और कब नियत होता है अर्थात् मरने के बाद या आयुबन्ध के समय ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 560)

उ ार- अगले भव स बन्धी उत्पZा स्थान के नियत होने के विषय में आगम में कोई स्पष्ट निर्देश नहीं मिलता। घातायुष्क वाले जीव ाी आयुबन्ध किसी अन्य स्वर्ग का करते हैं और मरकर अन्य स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं इसलिए आयुबन्ध के समय उत्पZास्थान नियत होने का कोई नियम नहीं है। दूसरी बात, आयु बन्ध के समय आयु का बन्ध होता है, स्थान का नहीं। जो मारणान्तिक समुद्घात करने वाले जीव हैं उनका मरण से अन्तर्मुहूर्त पूर्व उत्पZा स्थान नियत हो जाता है। तीर्थङ्कर आदि का उत्पZास्थान बहुत पहले नियत हो जाता है। यह भी जानने योग्य है कि यदि मनुष्यायु का बन्ध करने वाले जीव के अन्तिम समय मायाचारी रूप परिणाम हों तो वह स्त्री पर्याय में उत्पन्न होता है।

लोकरचना

प्रश्न चित्रा आदि 16 पृथ्वियाँ कहाँ है? मध्यलोक में या अधोलोक में ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 561)

उ ार- रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन भाग है। 1. ारभाग 2. पङ्कप्रभा 3. अZबहुलभाग। जिनकी मोटाई क्रमशः 16 हजार, 84 हजार और 80 हजार योजन है। इनमें से 16 हजार योजन मोटे खरभाग में 16 पृथ्वियाँ हैं, जो एक के नीचे एक हैं। बीच में कोई भी स्थान रिक्त नहीं है। इनमें से सबसे पहले ऊपर की पृथ्वी का नाम चित्रा और दूसरी पृथ्वी का नाम वज्रा है। जहाँ तक चित्रा पृथ्वी है वहाँ तक सुदर्शन मेरु की जड़ है। मेरु की जड़ में लोक के मध्य स्वरूप गोस्तनाकार आठ प्रदेशों में से ऊपर के चार प्रदेश चित्रा पृथ्वी में हैं और नीचे के चार प्रदेश वज्रा पृथ्वी में हैं। मेरु की जड़ तक अर्थात् खरभाग की चित्रा पृथ्वी मध्यलोक में आती है। शेष 15 भाग अधोलोक में आते हैं। अर्थात् रत्नप्रभा पृथ्वी का ऊपर का एक हजार योजन का भाग मध्यलोक में है और एक लाख उन्यासी हजार योजन का भाग अधोलोक में है। स पूर्ण समुद्र वज्रा पृथ्वी के ऊपर हैं। एवं सभी द्वीप चित्रा पृथ्वी के ऊपर हैं जहाँ हम सभी निवास करते हैं।

प्रश्न भोगभूमि में भोजनसामग्री सचि ा होती है या अचि ा एवं अन्य व्यवस्थायें कैसी हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 562)

उ ार- कल्पवृक्षों से प्राप्त भोज्यसामग्री अचिZा (अचेतन) होती है। वह वनस्पति की श्रेणी में नहीं आती। वहाँ वस्त्राङ्ग जाति के कल्पवृक्ष विभिन्न प्रकार के वस्त्रों को और भूषणाङ्ग जाति के कल्पवृक्ष विभिन्न प्रकार के आभूषणों को प्रदान करते हैं। ऐसा लगता है कि भोगभूमियाँ जीव सिले वस्त्र न पहनकर, धोती दुपट्टे में रहते हों। इसलिए सिले हुए कपड़ों का प्रसङ्ग नहीं आता है।

स्वर्ग में देवता भोजनपान नहीं करते। क्षुधा की वेदना होने पर स्वयमेव अमृत झर जाता है। इसलिए स्वर्ग में भोजनाङ्ग व पानाङ्ग जाति के कल्पवृक्ष न होकर मात्र 8 प्रकार के ही कल्पवृक्ष होते हैं जबकि भोगभूमि

में दस प्रकार के कल्पवृक्ष होते हैं। मद्याङ्ग जाति के कल्पवृक्ष शराब नहीं देते। वह उžोजनात्मक पदार्थ देते हैं। तीर्थङ्कर गृहस्थ अवस्था में कर्मभूमियाँ होते हुये भी पुण्य के प्र ाव से देवों द्वारा लाये गये कल्पवृक्षों से प्रदž भोजनपान, वस्त्र, मुकुट आदि का प्रयोग करते हैं।

प्रश्न ढाई द्वीप से बाहर के सूर्य चन्द्रमा स्थिर रहते हैं। तो कहीं रात्रि ही रहती होगी और कहीं दिन ही रहता होगा। सही स्थिति या है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 562)*

उ ार- एक सूर्य का प्रकाश 50,000 योजन तक जाता है। ढाईद्वीप के बाहर एक सूर्य से दूसरे सूर्य की दूरी एक लाख योजन है। अत: वहाँ सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश है।

प्रश्न लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र की बनावट में €या अन्तर है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 563)

उ ार- लवण समुद्र की गहराई अर्धचन्द्राकार है अत: जैसे-जैसे अन्दर जाते हैं, गहराई बढ़ती जाती है। अर्थात् कढाई की तरह है। जबकि कालोदधि समुद्र किनारे से ही पूर्ण गहराई वाला है। अर्थात् भगौने के समान है।

प्रश्न नन्दीश्वर द्वीप की रचना किस प्रकार है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 563)*

उ ार- नन्दीश्वर द्वीप की चौड़ाई अर्थात् प्रत्येक दिशा में समान चौड़ाई 163 करोड़ 84 लाख महायोजन है। उसकी प्रत्येक दिशा में एक-एक अंजनगिरी है, जिसका रंग काला और ऊँचाई 84 हजार योजन है तथा इसकी नींव एक हजार योजन है। अंजनगिरी की चारों दिशाओं में एक-एक ला । योजन ल बी-चौड़ी चार वापिकाएँ हैं। चारों दिशा में 16 वापिकाएँ हैं। प्रत्येक वापिका के मध्य में एक-एक दधिमुख नाम का पर्वत है जो 10 हजार योजन ऊँचा तथा सफेद रङ्ग का है। इस प्रकार 16 दधिमुख पर्वत हुये। प्रत्येक वापिका की चारों दिशाओं में एक-एक रतिकर पर्वत है। उनमें से बाहर की दिशाओं के दो रतिकर पर्वतों पर ही जिनालय हैं अत: एक दिशा में आठ रतिकर पर्वत हुये जिनकी ऊँचाई 1000 योजन है। ये लालवर्ण के हैं। ये सभी पर्वत मिलाकर 4 अंजनगिरी + 16 दधिमुख + 32 रतिकर = 52 पर्वत हुये। प्रत्येक पर्वत पर एक-एक जिनालय होने से स पूर्ण नन्दीश्वर द्वीप में 52 जिनालय हैं। प्रत्येक जिनालय में पद्मासन से विराजमान रत्नमणियों से निर्मित 108-108 जिनबि ब हैं। कुल मिलाकर 5616 जिनबि ब हुये। सभी पर्वत गोल हैं और उनकी जितनी ऊँचाई है उतनी ही चौड़ाई और मोटाई है। अष्टाह्निका पर्व के दिनों में चारों निकायों के देव एक-एक दिशा में छ:-छ: घण्टे पूजा करते हैं और स्थान बदलते रहते हैं। वहाँ के सभी जिनालय 100 योजन ल बे, 50 योजन चौड़े और 75 योजन ऊँचे होते हैं।

प्रश्न ज बूवृक्ष और शाल्मलि वृक्ष कहाँ पर हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 564)*

उ ार- सुदर्शन मेरु के उžार में ज बूवृक्ष और दक्षिण में शाल्मलि वृक्ष है। ये वृक्ष पृथ्वीकाय हैं, अनादि से बने हुये अकृत्रिम हैं। प्रत्येक वृक्ष पर एक-एक अकृत्रिम जिनालय है। प्रत्येक अकृत्रिम जिनालय में पद्मासनाकार 108-108 जिनबि ब होते हैं।

प्रश्न ढाईद्वीप में कितने सूर्य एवं कितने चन्द्रमा हैं और उनका गमन किस प्रकार होता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 565)

उ ार- ज बूद्वीप में दो सूर्य-दो चन्द्रमा, लवण समुद्र में चार-चार, धातकीखण्ड में बारह-बारह, कालोदधि समुद्र में 42-42 तथा पुष्करार्ध में 72-72 सूर्य-चन्द्रमा हैं। ज बूद्वीप के सूर्य-चन्द्रमा, ज बूद्वीप की परिधि से 180 योजन भीतर तक ज बूद्वीप में और 330 योजन लवणसमुद्र में गमन करते हैं। इनके गमनक्षेत्र की ज बूद्वीप और उसके बाहर कुल 183 गलियाँ हैं। एक दिन में एक सूर्य एक गली पार करता है। इस प्रकार समस्त गलियाँ पार करने में छः माह लग जाते हैं। जब सूर्य उžार की ओर आता है तब उžारायण और जब दक्षिण की ओर आता है तो दक्षिणायन कहलाता है। जब सूर्य हमारे सबसे निकट होता है तो दिन बड़े और गर्मी बहुत होती है और जब सूर्य सबसे दूर होता है तो दिन छोटा और अधिक सर्दी होती है। चन्द्रमा की कुल 15 गलियाँ होती हैं। इन 15 गलियों को पार करने में चन्द्रमा को पन्द्रह दिन लगते हैं।

प्रश्न पंचमेरु की रचना किस प्रकार है ?

उ ार- ढाई द्वीप के मध्य ज बूद्वीप के बीचोंबीच में सुदर्शन मेरु है। पूर्व धातकीखण्ड में विजय मेरु और पश्चिम धातकीखण्ड में अचल मेरु है। पूर्व पुष्करार्ध द्वीप में मन्दर मेरु और पश्चिम पुष्करार्ध में विद्युन्माली मेरु है। इनमें से प्रथम सुदर्शन मेरु की ऊँचाई एक लाख योजन और उसकी चूलिका 40 योजन है। शेष चारों मेरुपर्वतों की ऊँचाई समान है जो 85000 योजन है और उन सब पर 40 योजन की चूलिका है। सभी मेरु एक हजार योजन चित्रा पृथ्वी में नींव रूप हैं। प्रत्येक मेरु में चार-चार वन हैं। सुदर्शन मेरु में नीचे जमीन पर भद्रशालवन है, उससे पाँच सौ योजन ऊपर नन्दनवन है। उससे 62500 योजन ऊपर सौमनस वन है और उससे 36000 योजन ऊपर पाण्डुकवन है जो मेरु के शीर्ष पर है। अन्य सभी मेरुओं के वनों में जमीन पर भद्रशाल वन, उससे 500 योजन ऊपर नन्दनवन और उससे 55,500 योजन ऊपर सौमनस वन और 28,000 योजन ऊपर पाण्डुकवन है। प्रत्येक वन में मेरु की चारों दिशाओं में एक-एक जिनालय है। अर्थात् प्रत्येक मेरु में चार वन × प्रत्येक दिशा में एक-एकानुसार चार = 16। कुल पंचमेरु के 80 जिनालय हुये तथा प्रत्येक जिनालय में 108 जिनबि ब होने से 80 × 108 = 8640 जिनबि ब हुये। इन्हीं पंचमेरु के पाण्डुक वनों में तीर्थङ्कर भगवान्ों का जन्माभिषेक होता है जिसको देखने के लिए देवता, चारण ऋद्धिधारी मुनिराज तथा विद्याधर लोग भी जाते हैं।

प्रश्न स्वर्गों में दक्षिणेन्द्र और उžारेन्द्र का अथवा पहले और दूसरे स्वर्गों का विभाजन किस प्रकार है ?

उ ार- स्वर्गों में विमानों की रचना इस प्रकार होती है-

मध्य में इन्द्रक विमान। उसकी चारों दिशाओं में श्रेणीबद्ध विमानों की पंक्तियाँ और खाली स्थानों में प्रकीर्णक विमान होते हैं। इन विमानों में से कुछ सं यात योजन और कुछ असं यात योजन विस्तार वाले हैं। सं यात योजन विस्तार वाले विमानों में सं यात देव तथा असं यात योजन विस्तार वाले विमानों में असं यात देव रहते हैं। प्रथम कल्प में 31 पटल हैं। उनमें से 31 वें पटल के दक्षिण श्रेणीबद्ध विमानों की पंक्ति स बन्धी अठारहवें विमान में सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र रहता है। सौधर्म दक्षिणेन्द्र कहा जाता है और वह पूर्व, पश्चिम एवं

दक्षिण दिशा स बन्धी श्रेणीबद्ध विमानों का तथा इनके अन्तर्गत आये हुये दो विदिशाओं में आये हुए प्रकीर्णक विमानों का स्वामी होता है। ऐशान स्वर्ग का इन्द्र उऍरेन्द्र होता है और वह उऍार दिशा स बन्धी श्रेणीबद्ध विमानों का तथा शेष दो विदिशा स बन्धी प्रकीर्णक विमानों का स्वामी होता है। इसी प्रकार ऊपर के स्वर्गों में भी समझ लेना चाहिये।

प्रश्न सोलहवें स्वर्ग तक की देवियों की आयु कितनी-कितनी होती है?

उ ार- पहले, दूसरे स्वर्ग की देवियों की आयु पाँच तथा सात पल्य है। तृतीय व चतुर्थ स्वर्ग की देवियों की आयु नौ व ग्यारह पल्य है। पञ्चम तथा षष्ठ स्वर्ग की देवियों की आयु तेरह व पन्द्रह पल्य होती है। सप्तम व अष्टम स्वर्ग की देवियों की आयु सत्रह व उन्नीस पल्य है। नवम व दसवें स्वर्ग की देवियों की आयु इक्कीस व तेईस पल्य है। ग्यारहवें व बारहवें स्वर्ग की देवियों की आयु क्रमश: पच्चीस व स ाईस पल्य है। तेरहवें व चौदहवें स्वर्ग की देवियों की आयु चौंतीस व इकतालीस पल्य है। पन्द्रहवें व सोलहवें स्वर्ग की देवियों की आयु अड़तालीस व पचपन पल्य प्रमाण होती है।

प्रश्न लौकान्तिक देव कहाँ रहते हैं, उनकी आयु, अवगाहना तथा सं या कितनी है?

उ ार- सभी लौकान्तिक देव ब्रह्मकल्प के अन्त के विमानों में रहते हैं। इनके सारस्वत आदि आठ विमान हैं और प्रत्येक दो विमानों के बीच में दो-दो विमान और होने से कुल विमानों की सं या 24 हो जाती है। इनके निवास स्थानों पर देवियों का प्रवेश नहीं होता। ये अखण्ड ब्रह्मचारी होते हैं। इनकी लेश्या शु€ल होती है। सभी लौकान्तिक देवों की आयु 8 सागर प्रमाण होती है, न कम न ज्यादा। इनकी कुल सं या 407806 है। ये सभी देव एक भवावतारी होते हैं अर्थात् अगले ाव में मनुष्य बनकर मोक्ष जाते हैं। सभी की अवगाहना पाँच हाथ प्रमाण होती है।

प्रश्न चारों गतियों के जीवों की अवगाहना कैसे नापी जाती है ?

उ ार- एक धनुष ल बे मनुष्य के हाथ के प्रमाण से तीनों लोक के जीवों के शरीर की अवगाहना नापी जाती है।

प्रश्न कुभोगभूमियाँ कितनी हैं ? उनमें जीवों की आयु तथा आहारव्यवस्था कैसी है ?

उ ार- लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र में 96 अन्तर्द्वीप हैं। उनमें 96 कुभोगभूमियाँ हैं। उन कुभोगभूमियों में मनुष्य और तिर्यञ्चों के युगल रहते हैं। जो मनुष्य रहते हैं उनका शरीर तो मनुष्य जैसा है, परन्तु मुख तिर्यञ्चों जैसा होता है। कुछ एक पैर वाले होते हैं और कुछ पूँछ वाले इत्यादि। इन सबकी आयु एक पल्य होती है। इनका निवास गुफा एवं पेड़ों पर होता है तथा ये वहाँ के फल-फूल (मनुष्य) तथा पशु वहाँ की अमृतमय मिट्टी का आहार करते हैं। इन सबका जन्म के समय पहला गुणस्थान होता है परन्तु ये परोपदेशादि के कारण स य€त्वी बन सकते हैं। सभी मिथ्यादृष्टि कुभोगभूमियाँ मरकर भवनत्रिकों में तथा स यग्दृष्टि कुभोगभूमियाँ मरकर वैमानिकों में जन्म लेते हैं। इनको अन्तर्द्वीपज लेच्छ भी कहा जाता है। सबका जीवन अत्यन्त सुखमय होता है।

प्रश्न देवों का आहार व श्वासोच्छ्वास कब होता है ?

उ ार- जिस देव की जितने सागर आयु होती है उतने हजार वर्ष बाद वे आहार लेते हैं तथा जितने सागर आयु है उतने पक्ष बाद श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

प्रश्न विजयार्ध पर्वत पर, लेच्छखण्डों में, कुभोगभूमियों में तथा अर्ध स्वय भूरमण द्वीप एवं स्वय भूरमण समुद्र में काल परिवर्तन कैसा होता है ?

उ ार- विजयार्ध पर्वत एवं लेच्छ खण्डों में घटता-बढ़ता हुआ चतुर्थ काल रहता है अर्थात् यहाँ जब अवसर्पिणी का प्रथम, द्वितीय व तृतीय काल रहता है तब वहाँ 500 धनुष की अवगाहना तथा 1 पूर्वकोटि की आयु होती है। जब यहाँ चतुर्थ काल प्रवर्तता है तब वहाँ चतुर्थकालानुसार आयु और अवगाहना घटने लगती है। चतुर्थकाल के अन्त में जब यहाँ सात हाथ प्रमाण शरीर रह जाता है तब वहाँ भी सात हाथ प्रमाण शरीर रह जाता है। पञ्चम काल एवं छठे काल में यहाँ की आयु और अवगाहना घटने लगती है परन्तु वहाँ नहीं घटती अर्थात् अवसर्पिणी के पञ्चम तथा छठे काल में तथा उत्सर्पिणी के पहले तथा दूसरे काल के अन्त तक वहाँ सात हाथ का शरीर और 120 वर्ष की आयु रहती है। तदुपरान्त उत्सर्पिणी के तृतीय काल में सात हाथ तथा 120 वर्ष से बढ़ती हुई जब तीसरे काल के अन्त में पाँचसौ धनुष और एक पूर्व कोटि हो जाती है तब फिर उन दोनों स्थानों में आयु और शरीर बढ़ता जाता है। यहाँ उत्सर्पिणी के तृतीय काल के अन्त में 500 धनुष और एक पूर्व कोटि की आयु रहती है। यहाँ फिर भोगभूमि प्रार भ होने पर आयु एवं अवगाहना आदि बढ़ने लगती है जो उत्सर्पिणी के चौथे, पाँचवें तथा छठे काल में बढ़ती जाती है और उसके बाद अवसर्पिणी के प्रथम, द्वितीय व तृतीय काल में घटती जाती है और घटते-घटते अवसर्पिणी के तृतीय काल के अन्त में पाँच सौ धनुष तथा एक पूर्व कोटि रह जाती है। जब यहाँ उत्सर्पिणी का चौथा, पाँचवां, छठा एवं अवसर्पिणी का पहला, दूसरा व तीसरा काल प्रवर्तता है तब लेच्छखण्ड एवं विजयार्ध पर्वतों पर 500 धनुष का शरीर और एक पूर्व कोटि की आयु बनी रहती है।

कुभोगभूमियों में सदा जघन्य भोगभूमि वर्तती है। अत: एक पल्य की आयु वाले जीव होते हैं। मानुषोŽार के बाहर और स्वय प्रभ पर्वत के पहले तक असं यात द्वीप और असं यात समुद्रों में जघन्य भोगभूमि है जिनमें पशु युगल रहते हैं। उनकी आयु एक पल्य प्रमाण होती है। स्वयंप्रभ पर्वत के बाद अर्धस्वयंभूरमण द्वीप तथा स्वयंभूरमण समुद्र में पञ्चमकालवत् दु:खमा काल वर्तता है, कोई परिवर्तन नहीं होता।

प्रश्न भगवान् ऋषभदेव का निर्वाण कैलाश पर्वत से हुआ। वह कैलाश पर्वत कहाँ है ? बताइये।

उ ार- भगवान् ऋष देव को मोक्ष गये लगभग एक कोडाकोडी सागर काल हो गया है। उस समय से अब तक पृथ्वी में अनेक परिवर्तन हो गये। जहाँ पहले पर्वत थे वहाँ आज समुद्र हैं और जहाँ समुद्र थे वहाँ पर्वत हैं। इसलिए सही बात का निर्णय करना स भव नहीं है। किन्हीं विद्वानों के अनुसार कैलाश पर्वत तिŽबत में है। पण्डित बलभद्र जी के अनुसार कैलाश पर्वत हिमालय में है। उन्हीं के अनुसार भरत चक्रवर्ती ने जिन 24 या 72 जिनालयों का निर्माण कराया था वे कैलाश पर्वत पर ही नहीं बने थे बल्कि स पूर्ण हिमालय के सारे स्थानों पर बनाये गये थे परन्तु वर्तमान में उनका कोई स्थान निर्णय नहीं हो पाता। हमारे श्री गणेश जी राणा के पास कैलाश

पर्वत का एक चित्र है जिसमें एक स्थान पर उल्टी विशाल चरणपादुका बनी हुयी है। चरणपादुका की पर परा जैनपर परा है। कहते हैं स पूर्ण पर्वत पर बर्फ जम जाने पर भी उस पादुका के ऊपर कभी भी बर्फ नहीं जमती। अर्थात् कुछ अतिशय प्रतीत होता है। परन्तु सत्य €या है ? मालूम नहीं।

एक ब्रह्मचारी लामचीदास जी ने कैलाशपर्वत के दर्शन का नियम लेकर ति बत की ओर प्रस्थान किया और अन्त में जाकर दर्शन न होने के कारण आमरण-अनशन का संकल्प ले लिया था। सुनते हैं उनको एक व्यन्तर देव ने कैलाश पर्वत के जिनालयों की वन्दना करायी थी। उन्होंने यात्रा के बाद मुनि अवस्था धारण कर ली थी और आज से लगभग चारसौ वर्ष पूर्व, मुनि बनने पर अपनी यात्रा का जो वर्णन लिखा वह वर्तमान में उपलŽध है। वह सत्य होना चाहिये €योंकि उन्होंने मुनि बनने के बाद लिखा था।

प्रश्न नारकियों के शरीर की ऊँचाई कितनी होती है और उनकी लेश्यायें कौन-कौन सी होती हैं ?

उ ार-

नरकों के नाम	**लेश्यायें**	**शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना**
प्रथम नरक	जघन्य कापोत	7 धनुष, 3 हाथ, 6 अङ्गुल
द्वितीय नरक	मध्यम कापोत	15 धनुष, 2 हाथ, 12अङ्गुल
तृतीय नरक	उत्कृष्ट कापोत, जघन्य नील	31 धनुष, 1 हाथ
चतुर्थ नरक	मध्यम नील	62 धनुष, 2 हाथ
पञ्चम नरक	उत्कृष्ट नील, जघन्य कृष्ण	125 धनुष
षष्ठ नरक	मध्यम कृष्ण	250 धनुष
सप्तम नरक	उत्कृष्ट कृष्ण	500 धनुष

प्रश्न सातों पृथ्वियों की मोटाई, बिलों की सं या एवं पटलों की सं या बतलायें।

उ ार-

पृथ्वी का नाम	**मोटाई**	**बिल सं या**	**पटल**
रत्नप्रभा	एक लाख 80 हजार योजन	30 लाख	13
शर्कराप्रभा	32 हजार योजन	25 लाख	11
बालुकाप्रभा	28 हजार योजन	15 लाख	9
पङ्कप्रभा	24 हजार योजन	10 लाख	7
धूमप्रभा	20 हजार योजन	3 लाख	5
तम:प्रभा	16 हजार योजन	5 कम 1 लाख	3
महातम:प्रभा	8 हजार योजन	5	1

प्रश्न नरकों के पटलों में बिलों की रचना किस प्रकार है ?

उ र- नरकों में मध्य में इन्द्रक बिल हैं। उसकी चारों दिशाओं और विदिशाओं में श्रेणीबद्ध बिल हैं। बीच के खाली स्थानों में प्रकीर्णक बिल हैं। प्रथम नरक के प्रथम पटल में बीच का इन्द्रक बिल तथा दिशाओं और विदिशाओं के श्रेणीबद्ध बिल हैं। दिशाओं के श्रेणीबद्धों की सं या 49 और विदिशाओं के श्रेणीबद्धों की सं या 48 है।

द्वितीय पटल में दिशाओं और विदिशाओं के श्रेणीबद्ध बिलों की एवं पटलों की सं या एक-एक कम है अर्थात् श्रेणिबद्ध दिशाओं के 48 - 48 तथा विदिशाओं के 47-47 हैं। इसी तरह नीचे के बिलों में भी समझना चाहिये। सप्तम नरक में, मध्य में एक इन्द्रक बिल है तथा चारों दिशाओं में चार बिल और हैं। कुल 5 बिल ही हैं।

प्रश्न लोक का घनफल कितना है और तीनों लोकों का घनफल अलग-अलग कितना है ?

उ र- स पूर्ण लोक का घनफल 343 घनराजु है। उसमें से अधोलोक का घनफल 196 घनराजु तथा ऊध्वलोक का घनफल 147 घनराजु है जिसमें मध्यलोक भी शामिल है।

प्रश्न चन्द्रमा के विमान में जिनबि ब विराजमान हैं तो अमावस्या के दिन या ग्रहण समय में वे जिनबि ब कहाँ रहते हैं ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 566)*

उ र- चाहे अमावस्या हो या प्रतिपदा अथवा चन्द्रग्रहण का अवसर हो, चन्द्रमा का विमान ज्यों का त्यों रहता है। घटता-बढ़ता नहीं है। चन्द्र विमान के नीचे कृष्ण वर्ण वाले राहु विमान के आ जाने पर चन्द्रविमान पूर्ण नहीं दिखायी देता है। उसके जिनबि ब उसमें यथास्थान विराजमान होते हैं।

तिलोयपण्णि 7 / 205 में दो प्रकार के राहु का कथन है-दिन राहु और पर्व राहु। दिन राहु तो प्रतिदिन चन्द्रमा की एक-एक कला को आच्छादित करता है और पर्व राहु के कारण चन्द्रग्रहण होता है। पर्व राहु के चन्द्रबि ब के नीचे आ जाने पर चन्द्रग्रहण पड़ता है, कोई विशेष बात नहीं है। हिन्दू धर्मानुसार कोई आपसी युद्ध या मारकाट का यहाँ प्रसङ्ग नहीं है। इस कारण हम लोग ग्रहण का कोई सूतक नहीं मानते हैं तथा ग्रहणावसर पर पूजादि का निषेध भी जैन शास्त्रों में नहीं पाया जाता है।

प्रश्न सुमेरु पर्वत के ठीक ऊपर पहला इन्द्रक विमान है। उस विमान के ध्वजदण्ड का शिखर, सुमेरु पर्वत के शिखर से कितनी दूरी पर है अर्थात् प्रथम इन्द्रक विमान की कितनी ऊँचाई है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 567)*

उ र- प्रथम इन्द्रक विमान का तल 1121 योजन मोटा है और उस पर देवों के प्रासाद 600 योजन ऊपर हैं। इस प्रकार प्रथम इन्द्रक बिल की कुल ऊँचाई 1721 योजन हुई अर्थात् सुदर्शन मेरु की चोटी से एक बालाग्र दूरी पर प्रथम इन्द्रक विमान है। अत: सुमेरु पर्वत की चोटी से प्रथम इन्द्रक विमान का ध्वजदण्ड एक बालाग्र सहित 1721 योजन दूरी पर है।

प्रश्न तम:स्कन्ध कहाँ है और उसके कारण किन-किन स्वर्गों में अन्धकार पाया जाता है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 567)

उ॰ र- नन्दीश्वर समुद्र के बाद अरुणवर द्वीप है और उसके बाद अरुणवर समुद्र है। अरुणवर द्वीप की बाह्य परिधि से सं यात योजन जाकर अरुणवर समुद्र में 1721 योजन आकाश में जाकर चूडी रूप से वलय आकार में तमस्काय स्थित है। यह तमस्काय आदि के चार कल्पों में कहीं-कहीं अन्धकार उत्पन्न करके ब्रह्मकल्प स बन्धि प्रथम इन्द्रक तक गया है। इसका विस्तार परिधि रूप सं यात योजन, मध्य में असं यात योजन और ऊपर भी असं यात योजन है। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्मस्वर्ग से नीचे चार स्वर्गों में कहीं-कहीं अन्धकार है।

प्रश्न पाण्डुकशिला का आकार कैसा है और एक मेरु के पाण्डुकवन में कितनी शिलायें हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 567)

उ॰र- पाँच मेरु पर 5 × 4 = 20 पाण्डुकशिलाएँ हैं जो अर्धचन्द्राकार हैं। इन्हीं पर भगवान् का जन्माभिषेक होता है।

प्रश्न सिद्धशिला कहाँ पर है और उसका आकार कितना बड़ा है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 568)*

उ॰ र- सर्वार्थसिद्धि विमान के ध्वजदण्ड से 12 योजन ऊपर ईषत्प्राग्भार नाम की अष्टम पृथ्वी है जो एक राजु चौड़ी, सात राजु ल बी तथा आठ योजन मोटी है। इसके मध्य में स्फटिक, चाँदी एवं स्वर्ण के सदृश और नाना रत्नों से परिपूर्ण उ॰ानश्वेतछत्राकार सिद्धशिला है जो मध्य में आठ योजन और अन्त में एक अङ्गुल मात्र मोटी है। इसका विस्तार 45 लाख योजन गोल है। इसे सिद्धशिला कहते हैं परन्तु इस पर सिद्धों का निवास नहीं होता। इस अष्टम पृथ्वी के नीचे 20-20 हजार योजन मोटे घनोदधि, घनवात तथा तनुवातवलय हैं तथा इस पृथ्वी के ऊपर दो कोश, एक कोश तथा 1575 धनुष मोटे घनोदधि, घनवात और तनुवातवलय हैं। तनुवातवलय का अन्त ही लोक का अन्त है। इस तनुवातवलय के अन्तिम 525 धनुष में समस्त मुक्त जीव विराजमान रहते हैं। उन समस्त मुक्त जीवों के सिर लोकान्त तक हैं। सिद्धों का निवास 45 लाख योजन गोल तथा 525 धनुष मोटे सिद्धालय में है। अनन्तानन्त सिद्ध भगवान् यहीं पर एक में अनेक होकर बाधारहित, निश्चल रूप से विराजमान रहते हैं।

ईषत्प्राग्भार पृथ्वी में पाँचों प्रकार के बादर एकेन्द्रिय जीव पाये जाते हैं। तथा उसके ऊपर वातवलयों में बादर जलकायिक एवं वायुकायिक जीव पाये जाते हैं। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव तो स पूर्ण लोक में ठसाठस भरे हुये हैं। जहाँ अनन्तानन्त सिद्ध आत्माओं का निवास है वहाँ भी सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव ठसाठस भरे हुए हैं।

प्रश्न सिद्धक्षेत्र तनुवातवलय के कितने भाग में है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 568)*

उ॰ र- सिद्धालय का बाहुल्य 525 धनुष प्रमाण है और तनुवातवलय की मोटाई 1575 धनुष है परन्तु 525 धनुष वाला प्रमाण लघु योजन का है और तनुवातवलय की मोटाई महा योजन से है। इन दोनों में 500 गुणे का अन्तर होता है अर्थात् तनुवातवलय के 1500 वें भाग में समस्त सिद्धों का निवास है।

प्रश्न ऊर्ध्वलोक तथा अधोलोक सिद्ध कौन होते हैं और उनके सिद्धक्षेत्र कौन से होते हैं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 569)

उ र- चित्रा पृथ्वी के ऊपरी तल से ऊपर का भाग ऊर्ध्वलोक और नीचे का क्षेत्र जैसे कुआँ, खाई आदि अधोलोक कहलाता है। जैसे किसी देव ने पूर्व वैर वशात् किन्हीं मुनिराज को ऊपर आकाश से छोड़ दिया। वे पृथ्वी पर आने से पूर्व अधर से ही मोक्ष को प्राप्त हो गये। ये ऊर्ध्वलोक सिद्ध कहलाते हैं। इसी प्रकार किसी देव ने किन्हीं मुनिराज को किसी कुएँ में या खाई में डाल दिया और वे वहाँ से मोक्ष को प्राप्त हुये। अत: वे अधोलोक सिद्ध कहलाते हैं। वे जिस स्थान से मोक्ष गये वही उनका सिद्ध क्षेत्र होता है। मध्यलोक के किसी भी स्थान से या पर्वतादि के ऊपर से मोक्ष प्राप्त करने वाले जीव मध्यलोक सिद्ध कहलाते हैं।

प्रश्न स मेदशिखर की एक-एक टोंक से करोड़ों-अरबों मुनिराज मोक्ष पधारे। इससे हमें €या तात्पर्य लेना चाहिये।

उ र- किसी टोंक पर अर्घ्य चढ़ाते समय हम ऐसा बोलते हैं कि इस टोंक से अमुक तीर्थङ्कर और इतने करोड़ मुनि मोक्ष पधारे। इसका तात्पर्य है कि पिछले चतुर्थकाल में (पूरे एक कोडा-कोडी सागर में 42000 वर्ष कम) इस टोंक से अमुक तीर्थङ्कर और पूरे काल में इतने मुनि मोक्ष पधारे हैं। ये सारे मुनिराज एक साथ मोक्ष नहीं पधारे, योंकि 6 माह 8 समय में 608 से ज्यादा सिद्ध पूरे मनुष्य लोक से नहीं हो सकते हैं।

प्रश्न लोक का आकार गोल है या चौकोर ?

उ र- *श्री धवला पुस्तक-4* के अनुसार लोक का आकार आयत चतुष्कोण है, मृदङ्ग के आकार का गोल नहीं। बारसाणुवे€खा में आचार्य कुन्दकुन्द ने तथा कार्तिकेयानुप्रेक्षा में कुमारस्वामी महाराज ने लोक का घनफल 343 घन राजु कहा है। जिन आचार्यों ने लोक का आकार मृदङ्गवत् कहा है उनके अनुसार यदि लोक का घनफल निकाला जाये तो 200 राजु से भी कम आता है। यदि लोक को आयत चतुष्कोण मानकर घनफल निकाला जाता है तो पूरे लोक का घनफल 343 राजु आता है जिससे आचार्य कुन्दकुन्द आदि के मत का समर्थन होता है।

श्री धवलाकार के अनुसार स्व भूरमण समुद्र के बाद लोक का अन्त नहीं है अर्थात् उसके बाद भी असं यात योजन खाली भूमि है। तदुपरान्त लोक समाप्त होता है। उनके मतानुसार इस खाली भूमि के ऊपर सूर्य-चन्द्रमा का अस्तित्व नहीं है। सूर्य और चन्द्रमा स्वय भूरमण समुद्र के अन्त तक ही पाये जाते हैं।

प्रश्न त्रस नाडी की ऊँचाई कितनी है ?

उ र- त्रस नाडी की ऊँचाई 13 राजु से कुछ कम है। कुछ कम का अर्थ इस प्रकार लगाना चाहिये- ऊर्ध्व लोक के सात राजु में से सर्वार्थसिद्धि के ध्वजदण्ड से ऊपर 12 योजन तक + 8 योजन मोटी ईषत्प्राग्भार पृथ्वी में + 2 कोश घनोदधि वलय + 1 कोश घनवातवलय + 1575 धनुष तनुवातवलय। (ये सब धनुष / योजन प्रमाणाङ्गुल वाले हैं।) अर्थात् ऊर्ध्वलोक के 7 राजु में से 20 योजन, 3कोश, 1575 धनुष क्षेत्र में त्रस जीव

नहीं है। अर्थात् 21 योजन में 425 धनुष कम। अधोलोक की अपेक्षा नीचे के एक राजु में मात्र स्थावर जीव हैं। उनको त्रस नाडी में नहीं गिना जाता। त्रस नाडी में सबसे नीचे जो महातम:प्रभा नाम की सप्तम पृथ्वी है वह आठ हजार योजन मोटी है। उसके बीच में सिर्फ नरक का एक पटल है। उस पटल तक ही त्रस जीव पाये जाते हैं। उसके नीचे 3999 सहित 1/3 योजन में त्रस जीव नहीं है अत: 3999 सहित 1/3 योजन भी 13 राजु में से घटाना चाहिये। इस प्रकार नीचे और ऊपर की 3999 सहित 1/3 + 20 योजन, 3 कोश, 1575 धनुष कम 13 राजु ऊँची त्रस नाडी है।

काल

प्रश्न अर्धपुद्गलपरावर्तन काल किसे कहते हैं ? या अवधिज्ञानी इसको जानता है ?

उ र- पञ्चपरावर्तन में सर्वप्रथम द्रव्यपरावर्तन का वर्णन आता है। उसके पूर्ण करने में जितना काल लगता है उसको एक पुद्गल परावर्तन काल कहते हैं। और इससे आधे काल को अर्धपुद्गलपरावर्तन काल कहा जाता है। यह इतना बड़ा काल है कि अवधिज्ञान और मन:पर्यय ज्ञान के द्वारा नहीं जाना जा सकता है। इसलिए असं यातासं यात होते हुए भी इस काल को अनन्तकाल कहा जाता है। परन्तु यह काल सक्षय है अक्षय अनन्त नहीं है। जितना काल मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का विषय हो उसे सं यात, जो अवधि व मन:पर्ययज्ञान का विषय हो वहाँ तक असं यात और जो इससे अधिक अर्थात् केवलज्ञान का विषय है उसे अनन्त कालरूप कहा गया है।

प्रश्न हुण्डावसर्पिणी काल की तरह हुण्डोत्सर्पिणी काल ी होता है या नहीं ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 569)

उ र- असं यात कल्पकाल बीत जाने पर हुण्डावसर्पिणी काल आता है परन्तु हुण्डोत्सर्पिणी काल का कोई वर्णन शास्त्रों में नहीं मिलता। हुण्डावसर्पिणी काल के सभी दोष अवसर्पिणी काल में ही पाये जाते हैं, उत्सर्पिणी में नहीं। जहाँ तक नारद और रुद्र का प्रश्न है, *तिलोयपण्णत्ति* के अनुसार ये दोनों हुण्डावसर्पिणी काल में ही होते हैं जबकि हरिवंशपुराण 60/571-72 के अनुसार उत्सर्पिणी काल में भी 11 रुद्र होने का प्रसङ्ग पाया जाता है।

प्रश्न कल्की और उपकल्की कौन होते हैं ? वे कब और कहाँ होते हैं ?

उ र- अवसर्पिणी काल के पञ्चम काल में हर 500 वर्ष बाद एक उपकल्की राजा तथा हर एक हजार वर्ष बाद एक कल्की राजा होता है। इस तरह पञ्चम काल में 21 उपकल्की तथा 21 कल्की राजा भरत क्षेत्र में होते हैं। ये जैन मुनियों पर कर (Tax) के रुप में ग्रास लेकर उपसर्ग करने पर असुरकुमार देवों द्वारा मार दिये जाते हैं और नरक जाते हैं। अब तक बीते हुये पञ्चम काल के 2500-2600 वर्षों में कौन उपकल्की और कौन कल्की राजा हुआ, यह उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

प्रश्न प्रलय का होना किन क्षेत्रों में होता है ? प्रलय किस दिन से प्रार भ होती है इत्याादि विषय विस्तार से समझाइये।

उ□ ार– प्रत्येक काल का प्रार भ श्रावण वदी एकम् से होता है। पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्र में (इनके आर्यखण्डों में सिर्फ) अवसर्पिणी के छठे काल के अन्त में प्रलय होती है। यह प्रलय ज्येष्ठ वदी द्वादशी को प्रार भ होती है और इसमें सात–सात दिन तक सात प्रकार की भयङ्कर आपZ़ियाँ आती हैं। वे इस प्रकार हैं– 1. तेज हवा 2. अत्यन्त शीत 3. क्षार रस 4. विष 5. कठोर अग्नि 6. धूल 7. धुआँ। ये सात वर्षायें 49 दिन तक अर्थात् आषाढ शु€ला पूर्णिमा तक होती हैं। इन वर्षाओं से पूर्व बहुत से तिर्यञ्च और मनुष्य तो विजयार्ध पर्वत, गंगा–सिन्धु नदी की वेदियों, बिलों आदि में प्रवेश करके बच जाते हैं। दयावान विद्याधर तथा देव लोग भी बहुत से मनुष्य और पशुओं के युगलों को बाधा रहित स्थान पर ले जाते हैं। शेष मनुष्य पशु आदि नष्ट हो जाते हैं। विष और अग्नि आदि की वर्षा से समस्त आर्यखण्डों की कृत्रिम रचनायें नष्ट हो जाती हैं और चित्रा पृथ्वी के ऊपर एक योजन प्रमाण जो अन्य द्रव्यों का समूह एकत्र हो जाता है, वह नष्ट हो जाता है। चित्रा पृथ्वी दृष्टिगोचर हो जाती है। तदुपरान्त श्रावण वदी एकम् से उत्सर्पिणी काल का प्रथमकाल (अतिदुखमा) प्रार भ होता है। उसमें प्रलय की बाधा को सामान्य करने के लिए सात शुभ वर्षायें सात–सात दिन तक होती हैं जो इस प्रकार हैं– 1. जल 2. दूध 3. घी 4. अमृत 5. रस 6. औषधि 7. सुगन्धित पवन। इन सात वर्षाओं से वातावरण में सामान्यता आने पर, जो जीव विजयार्ध पर्वत आदि में प्रवेश कर गये थे वे सब बाहर निकल आते हैं।

अन्तिम कल्की के द्वारा उपसर्ग करने के पश्चात् उस समय मौजूद एक मुनि, एक आर्यिका, एक श्रावक, एक श्राविका संन्यासमरण कर सौधर्मस्वर्ग में उत्पन्न होते हैं। उनके मरणोपरान्त धर्म की व्युच्छिZ़ि हो जाती है और पञ्चम काल के शेष भाग (3 वर्ष साढ़े आठ माह) में, छठे काल में उत्सर्पिणी के प्रथम व द्वितीय काल में न तो धर्म होता है और न ही धर्मात्मा होते हैं। उत्सर्पिणी के दूसरे काल के एक हजार वर्ष शेष रहने पर चौदह कुलकर उत्पन्न होते हैं। अन्तिम कुलकर के समय से विवाह आदि की व्यवस्था शुरु हो जाती है और उनके यहाँ उत्सर्पिणी के प्रथम तीर्थङ्कर का जन्म होता है।

प्रश्न विजयार्ध पर्वत पर जो विद्याधर लोकों के निवास हैं, □ या वहाँ से जीव निरन्तर मोक्ष जाते रहते हैं ?

उ□ ार– विजयार्ध पर्वत की नगरियों में हमेशा चतुर्थ काल जैसा वर्तता है। चतुर्थ काल में उत्पन्न जीव के मोक्ष जाने में कोई आपZ़ि नहीं। यदि वे विद्याधर विद्याओं का त्याग न करें तो पञ्चम गुणस्थान तक ही जा सकते हैं और विद्याओं का त्याग कर जिन दीक्षा धारण कर केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में क्षायिक स य€त्व प्राप्त कर लें तो मोक्ष भी जा सकते हैं। वर्तमान में भी वहाँ से मोक्षगमन निरन्तर जारी है। विजयार्ध पर्वत पर कर्मभूमि है और वहाँ के लोग व्यापार, खेती आदि के द्वारा आजीविका करते हैं।

प्रश्न मुहूर्त, अन्तर्मुहूर्त, आवली आदि की परिभाषा बताइये ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 573)*

उ□ ार– आवली का काल इतना छोटा होता है कि उसको सैकण्ड या मिनट में कहना अस भव है। 48 मिनट का एक मुहूर्त होता है। एक समय कम 48 मिनट का भिन्नमुहूर्त होता है और दो समय कम 48 मिनट से एक

समय अधिक आवली तक अन्तर्मुहूर्त होता है अर्थात् जघन्य अन्तर्मुहूर्त = एक समय + आवली तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त = 48 मिनट – 2 समय। कार्तिकेयानुप्रेक्षा की टीका में आवली के असं यातवें भाग को भी जघन्य अन्तर्मुहूर्त कहा है। एक निगोदिया जीव के जन्म–मरण में 1/24 सैकण्ड लगते हैं। अर्थात् वह एक सैकण्ड में 24 बार जन्म–मरण करता है। घडी = 24 मिनट। 2 घडी = मुहूर्त। 1 पहर = तीन घण्टे।

धवलाकार ने अन्त: शŽद का अर्थ समीपवर्ती करके मुहूर्त के समीपवर्ती काल से असं यात आवली काल का भी ग्रहण कर लिया है अर्थात् मुहूर्त से असं यात आवली काल अधिक को भी अन्तर्मुहूर्त में गर्भित कर लिया है। यदि वीरसेन महाराज इस प्रकार अर्थ न करते तो सूत्र के अभिप्राय का यथार्थ ग्रहण नहीं होता।

प्रश्न जो जीव नित्य निगोद में हैं, €या उनका अभी तक एक बार भी पञ्चपरावर्तन नहीं हुआ ?

उ ार– पञ्चपरावर्तन करने वाले जीव को पञ्चपरावर्तन पूर्ण करने में जितना काल लगता है उतना काल एक नित्यनिगोदिया जीव का निगोद में पूरा हो जाने पर उसके पञ्चपरावर्तन मान लिये जाते हैं। इस तरह नित्यनिगोदिया जीव के पञ्चपरावर्तन पाये जाते हैं।

श्रेणी, मान

प्रश्न आकाश की श्रेणी से €या अभिप्राय है ? अनुश्रेणी गति किस प्रकार होती है ?

(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 574)

उ ार– अनन्त आकाश के समस्त प्रदेश नीचे–ऊपर और तिरछे, एक पङ्क्ति में खीचें गये बिन्दु के अनुसार सीधे–सीधे होते हैं। उनमें परस्पर कोई अन्तर नहीं होता। आकाश द्रव्य का प्रत्येक प्रदेश इस श्रेणी के अन्तर्गत आता है। जैसे– दीवार पर लगे हुये कपडे में सब तरफ धागे सीधे चलते हैं उसी प्रकार आकाश के प्रदेश समझना चाहिये।

जब कोई जीव विग्रह गति में गमन करता है, कोई देव ऊर्ध्वलोक से मध्यलोक में या अधोलोक में गमन करता है या मुक्त जीव मध्यलोक से लोकान्त तक गमन करते हैं तब उनका गमन आकाश के प्रदेशों की पंक्ति के अनुसार कपड़े के धागे की तरह बिल्कुल सीधा होता है, टेड़ा नहीं। यही ***'अनुश्रेणी गति:'*** सूत्र का अर्थ है।

प्रश्न सं यात, असं यात और अनन्त से €या तात्पर्य है ? €या उत्कृष्ट सं यात 150 अङ्क प्रमाण होता है ? *(व्यक्तित्व कृतित्व पृ.क्र. 575)*

उ ार– उत्कृष्ट सं यात 150 अङ्क से बहुत बड़ा है। असं यात के तीन भेद होते हैं– 1. परीतासं यात 2. युक्तासं यात 3. असं यातासं यात। इनमें से जघन्य परीतासं यात में से एक कम कर देने पर उत्कृष्ट सं यात का प्रमाण आता है जो तीन प्रकार का है अर्थात् दो की सं या जघन्य सं यात है। दो से अधिक और उत्कृष्ट से एक कम को मध्यम सं यात कहते हैं। तथा जघन्य परीतासं यात से एक कम कर देने पर उत्कृष्ट सं यात हो

जाता है। प्रत्येक असं यात भी तीन प्रकार का होता है। 1. जघन्य परीतासं यात 2. मध्यम परीता सं यात 3. उत्कृष्ट परीतासं यात। उत्कृष्ट परीतासं यात में एक बढ़ाने पर जघन्य युक्तासं यात होता है। इसी तरह युक्तासं यात और असं यातासं यात को समझ लेना चाहिये।

इसी प्रकार अनन्त ाी तीन प्रकार का होता है– 1.परीतानन्त 2. युक्तानन्त 3. अनन्तानन्त। इन तीनों में भी प्रत्येक के जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट ये तीन–तीन भेद होते हैं।

सामान्य परिभाषा तो वही है अर्थात् जो मतिज्ञान का विषय है वह सं यात है। उससे ऊपर जिसे अवधिज्ञान और मन:पर्यय ज्ञान जानता है वह असं यात और जो मात्र केवलज्ञान का विषय है वह अनन्त है। सभी अनन्त अक्षय नहीं होते। परीतानन्त, युक्तानन्त तथा जघन्य अनन्तानन्त तो सक्षय ही हैं। मध्यम अनन्तानन्त के कुछ प्रार□ भक भेदों तक सक्षयपना है। तदुपरान्त जीवादिक 6 राशि और मिला देने पर मध्यम अनन्तानन्त का क्षय स भव नहीं। उत्कृष्ट अनन्तानन्त प्रमाण तो मात्र केवलज्ञान के अविभागी प्रतिच्छेदों की सं या है।

प्रश्न पल्य के असं यातवें भाग में तथा पल्य में कितने वर्ष होते हैं ?

उ□ ाः– एक पल्य में असं यात वर्ष होते हैं और पल्य के असं यातवें भाग में भी असं यात वर्ष होते हैं। परन्तु दोनों समान नहीं है। पल्य के असं यातवें भाग के असं यात वर्षों से पल्य के असं यात वर्ष, असं यातगुणे होते हैं €योंकि असं यात भी असं यात प्रकार का और अनन्त भी अनन्त प्रकार का होता है। एक सागर में असं यात वर्ष और असं यात समय होते हैं, अनन्त नहीं €योंकि ये अवधिज्ञान के विषय हैं तथा अन्त सहित भी हैं।

PDFaid.com
#1 pdf solutions online

प्रश्न स्वर्गों में कितने पटल, कितने विमान, कितना क्षेत्र, कौनसी लेश्या और शरीर की ऊँचाई कितनी है ?

उ र-

इन्द्रसं या	नाम	क्षेत्र	पटल	विमान सं या	लेश्या	ऊँचाई
2 इन्द्र	सौधर्म-ऐशान	1½ राजु	31 पटल	60 लाख	मध्यम पीत	7 हाथ
2 इन्द्र	सानत्कुमार-माहेन्द्र	1½ राजु	7 पटल	20 लाख उत्कृष्ट	पीत, जघन्य पद्म	6 हाथ
1 इन्द्र	ब्रह्म-ब्रह्मो र	½ राजु	4 पटल	4 लाख	मध्यम पद्म	5 हाथ
1 इन्द्र	लान्तव-कापिष्ठ	½ राजु	2 पटल	50 हजार	मध्यम पद्म	5 हाथ
1 इन्द्र	शुक्र-महाशुक्र	½ राजु	1 पटल	40 हजार उत्कृष्ट	पद्म, जघन्य शु€ल	4 हाथ
1 इन्द्र	शतार-सहस्रार	½ राजु	1 पटल	6 हजार उत्कृष्ट	पद्म, जघन्य शु€ल	4 हाथ
2 इन्द्र	आनत-प्राणत	½ राजु	**छह**	**सात सौ**	मध्यम शु ल	3½ हाथ
2 इन्द्र	आरण-अच्युत	½ राजु	**पटल**	**विमान**	मध्यम शु ल	3 हाथ
अहमिन्द्र	अधोग्रैवेयक-3	**ए**	3 पटल	111	शु ल	2½ हाथ
	मध्यम ग्रैवेयक-3	**क**	3 पटल	107	शु ल	2 हाथ
	उपरिम ग्रैवेयक-3		3 पटल	91	शु ल	1½हाथ
अहमिन्द्र	नव अनुदिश	**रा**	1 पटल	9	परमशु ल	1 हाथ
अहमिन्द्र	पाँच अनु र	**जु**	1 पटल	5	परम शु ल	1 हाथ